एमएएचडी-01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

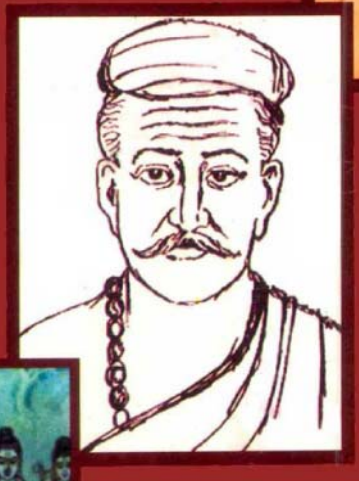

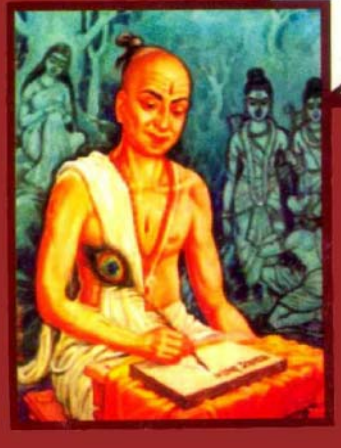

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य

1

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य 1

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक एवं समन्वयक

संयोजक

प्रो. (डॉ.) कुमार कृष्ण
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
हिमांचल विश्वविद्यालय, शिमला

समन्वयक

डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. (डॉ.) जवरीमल पारख**
  अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- **प्रो. (डॉ.) नन्दलाल कल्ला**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
- **डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा**
  पूर्व प्राचार्य
  राजकीय महाविद्यालय, सरदारशहर (चुरू)
- **प्रो. (डॉ.) सुदेश बत्रा**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **डॉ. नवलकिशोर भाभड़ा**
  प्राचार्य
  राज. कन्या महाविद्यालय, अजमेर

संपादन एवं पाठ्यक्रम-लेखन

संपादक मण्डल

प्रो. (डॉ.) चन्द्रकला पाण्डेय
हिन्दी विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

पाठ लेखक		**इकाई संख्या**
• **प्रो. (डॉ.) चन्द्रकला पाण्डेय** हिन्दी विभाग **कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता**	-	**1, 2, 3, 4**
• **प्रो. (डॉ.) दयाशंकर त्रिपाठी** हिन्दी विभाग **सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, गुजरात**	-	**5, 6**
• **प्रो.(डॉ.) जगमलसिंह** पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग **असम विश्वविद्यालय, सिलचर**	-	**7, 8, 13, 14, 17, 18**
• **प्रो.(डॉ.) योगेन्द्र प्रताप सिंह** पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग **इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद**	-	**9, 10**
• **डॉ. टी.सी. गुप्ता** पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग **राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा**	-	**11, 12**
• **प्रो.(डॉ.) लल्लन राय** पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग **हिमांचल विश्वविद्यालय, शिमला**	-	**15, 19, 20**
• **डॉ. मीता शर्मा** सहायक आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	-	**16**

- **प्रो.(डॉ.) विष्णु विराट** - **21**
  अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  महाराजा सयाजी विश्वविद्यालय, बड़ौदा
- **डॉ. हेतु भारद्वाज** - **22**
  पूर्व प्राचार्य, हिन्दी विभाग
  पारीक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन : अगस्त-2012 ISBN-13/978-81-8496-114-0

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खण्ड - 1 **13–106**

प्राचीन (आदि) काव्य

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	चन्दवरदाई का काव्य	13
इकाई - 2	चन्दवरदाई के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष	37
इकाई - 3	विद्यापति का काव्य	65
इकाई - 4	विद्यापति के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष	87

खण्ड - 2 **107–190**

भक्तिकालीन काव्य भाग -I

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 5	कबीर का काव्य	107
इकाई - 6	कबीर के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष	126
इकाई - 7	जायसी का काव्य	149
इकाई - 8	जायसी के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष	171

पाठ्यक्रम-परिचय

साहित्य का अध्ययन मनुष्य के भावों एवं विचारों के परिष्करण, विकसन और उन्नयन का महत्वपूर्ण माध्यम है । युग विशेष की सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और वैचारिक पृष्ठभूमि के साथ उसके संघ के, परिवर्तनों तथा महत्वपूर्ण मोड़ों की छाया साहित्य के आइने में यथावत देखी जा सकती है । इसी कारण साहित्य को मानवीय सत्ता के अध्ययन की सज्ञा दी जाती है । साहित्यकार हमे युग के चरित्र का साक्षात्कार कराता है । हिन्दी के आदिकालीन साहित्य से लेकर आज तक के साहित्य में हम तत्सामयिक युग का प्रतिबिंब पाते हैं । युग साहित्य की विविध विधाओं में स्पंदित होता है । एमए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध) का पाठ्यक्रम बनाते समय इस बात को विशेष रूप से ध्यान में रखा गया है जिससे इसका अध्ययन आपको पूरे युग को समझने में मदद दे सके और आपकी एक समग्र दृष्टि तथा स्पष्ट समझ (युग विशेष के विषय में) विकसित हो सके ।

यह पूरा पाठ्यक्रम चार खण्डों में विभाजित है किन्तु इस विभाजन में काव्य-विकास परम्परा की कड़ियों को अविच्छिन्न रखने की चेष्टा की गई है । खण्डों का अध्ययन आरम्भ करते ही अध्ययनकर्त्ता यह महसूस करेंगे जैसे कि वे हिन्दी काव्य की परम्परा और प्रवृतियों से तार्किक और अंतरंग वार्तालाप कर रहे हों । हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते समय आप आदिकाल अथवा वीरगाथाकाल की सामान्य प्रवृत्तियों से अवगत हो चुके हैं । इस पृष्ठभूमि को दृष्टि में रखते हुए **प्राचीन (आदि) काव्य** शीर्षक से प्रथम खण्ड तैयार किया गया है जिसमें आदिकाल के दो विशिष्ट कवियों चंदवरदायी तथा विद्यापति के कवि व्यक्तित्व, कवि-दृष्टि, अनुभूति तथा अभिव्यंजना पक्ष पर विस्तृत विवेचन किया गया है । इस खण्ड में चार इकाइयाँ हैं । इकाई- 1 तथा 2 आदि काल के सबसे विवादास्पद किन्तु श्रेष्ठता में अग्रणी कवि चंदवरदायी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से संबंधित है और इकाई- 3 एव 4 लोकभाषा को काव्य भाषा का गौरव देने वाले मैथिल कोकिल कवि विद्यापति का अध्ययन प्रस्तुत करती है । इन दोनों की काव्य यात्रा में सहभागी होते हुए आप आदिकाल की दो प्रमुख विशेषताओं वीरगाथापरकता और शृंगार प्रियता से तो परिचित होंगे ही, इन कवियों के विशद ज्ञान, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, उद्भावना कौशल तथा भाषा प्रयोग से भी वाकिफ हो सकेंगे ।

द्वितीय खण्ड **भक्तिकालीन काव्य भाग- I** शीर्षक से लिखा गया है । इसमें भक्तिकालीन काव्य से संत और सूफी काव्य के प्रवर्तकों कबीर और जायसी का चयन करते हुए अध्ययन सामग्री तैयार की गई है । दोनों के अध्ययन से स्पष्ट होगा कि हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल देशव्यापी भक्ति आन्दोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि है । मूलत: यह भक्ति आन्दोलन-सामंतवाद, पुरोहितवाद, शास्त्र ज्ञान के अभिमान, अंधविश्वासों का प्रतिवाद, लोक भाषाओं के उदय एवं तत्कालीन समाज व्यवस्था में जनता का सामंतवाद विरोधी सांस्कृतिक आदोलन था । इस आदोलन ने समाज को दिशा-दृष्टि देने वाले ज्ञानी संत कवि दिये । निर्गुण शाखा की ज्ञानमार्गी धारा के संत कबीर ही या प्रेममार्गी के संत जायसी, दोनों की सामाजिक भूमिका लोकहितकारी थी । यह खण्ड इन दोनों कवियों के व्यक्तित्व एवं काव्य के अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष पर

विस्तृत विचार प्रस्तुत करता है । इस खण्ड में पहली दो इकाइयाँ संत कबीर और दूसरी दो सूफी कवि जायसी पर अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करती हैं । खण्ड में कुल चार इकाइयाँ हैं ।

तीसरा खण्ड **भक्तिकालीन काव्य भाग- II** शीर्षक से तैयार किया गया है । इसमें सगुण भक्तिधारा के रामभक्त कवि तुलसीदास, कृष्णभक्त कवि सूरदास तथा प्रेम और वेदना की अनन्य गायिका, भक्त साधिका मीरा पर अध्ययन सामग्री प्रस्तुत की गई है । खण्ड में कुल छः इकाइयाँ हैं । पहली दो तुलसी, दूसरी दो सूरदास तथा तीसरी दो मीराबाई के व्यक्तित्व तथा रचना के अनुभूति और अभिव्यंजना पक्ष का अध्ययन प्रस्तुत करती है । इनकी कविताओं का अध्ययन स्पष्ट करता है कि भक्ति काव्य, लोक भाषाओं, लोक- काव्य रूपों, लोक आस्थाओं तथा लोक रंजक प्रवृतियों के विकास का काव्य है ।

चौथा खण्ड रीतिकालीन काव्य अंतिम खण्ड है । इसमें आठ इकाइयाँ है । इसमें रीति सिद्ध काव्य के प्रतिनिधि कवि बिहारी, रीतिबद्ध काव्य के पदमाकर और रीतिमुक्त काव्य के प्रतिनिधि घनानन्द के साथ रीतिकाल के वीरता और शौर्य के प्रतिनिधि कवि भूषण के कवि व्यक्तित्व, कवि दृष्टि और काव्य कौशल पर विचार किया गया है । क्रमानुसार बिहारी, पदमाकर, घनानन्द तथा भूषण पर दो- दो इकाइयाँ अध्ययन सामग्री के रूप में लिखी गई है ।

ज्ञातव्य है कि प्रत्येक खण्ड की इकाई के अंत में महत्वपूर्ण पुस्तकों की सूची भी दी जा रही है जिसका विशेष अध्ययन कर आप अपने ज्ञान में अपेक्षित वृद्धि कर सकेंगे ।

खण्ड-परिचय

खण्ड 1 का परिचय

३ एमए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध) पाठ्यक्रम का खण्ड- 1 प्राचीन (आदि) काव्य शीर्षक से लिखा गया है । इस खण्ड में चार इकाइयाँ हैं जिनमें निम्नलिखित रूपों में अध्ययन सामग्री प्रस्तुत की गई है-

इकाई 1 वीरगाथा काल अथवा आदिकाल की पृष्ठभूमि में इस काल के सर्वाधिक विवादास्पद किन्तु विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न कवि चंदवरदाई के कवि परिचय एवं रचनाकार व्यक्तित्व के बुनियादी सरोकारों से साक्षात्कार कराया गया है । कवि की रचना के प्रयोजन एवं उसकी प्रामाणिकता की विवेचना प्रस्तुत की गई है ।
इसी इकाई में चन्दवरदायी की कविता का रसास्वादन कराने के लिए मूल कविताओं का चयन कर उनकी प्रसंग सहित व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है । चयनित काव्य खण्ड की विशेषता बतलाते हुए व्याख्याओं के साथ जो टिप्पणियाँ दी गई है उनसे आप कवि के भाव पक्ष और कला पक्ष संबंधी सुस्पष्ट समझ बना पाने में सक्षम होंगे । अर्थ संप्रेषण की सुविधा हेतु कुछ कठिन शब्दों के अर्थ भी दिये गये हैं ।

इकाई 2 : इस इकाई में चन्दवरदायी के काव्य अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष पर तर्क संगत विचार किया गया है । इस इकाई में चंद की रचना के काव्य प्रयोजन उनकी काव्य संवेदना, काव्यानुभूति, मूल्य बोध एवं जीवन दर्शन के साथ पृथ्वीराज रासो में युद्ध, शृंगार, प्रकृति, चरित्र योजना, कथानक कढ़ियों की विवेचना की गई है । चंदवरदायी के काव्य शिल्प पर विचार करते हुए पृथ्वीराज रासो के काव्य रूप, काव्य भाषा और सर्जनात्मकता, पृथ्वीराज रासो में लय, छंद, अलंकार एवं रस योजना पर विचार किया गया है । दोनों इकाइयों के अंत में शब्दावली, अभ्यास प्रश्न (निबंधात्मक एवं लघुत्तरात्मक) तथा विस्तृत अध्ययन और स्वाध्याय के लिए संदर्भ ग्रंथ सूची दी गई है । आप इनका भी अध्ययन करें ।

इकाई 3. इस इकाई में मैथिल कोकिल कवि विद्यापति के रचनाकार व्यक्तित्व एवं उनकी कृतित्व पर विचार करते हुए उनकी पदावली से चयन किये गये छः प्रतिनिधि पदों की सप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत की गई है । व्याख्या के लिए पद चयन करते समय इस बात को ध्यान में रखा गया है कि इनसे विद्यापति के विषय वैविध्य से आपका परिचय हो सके ।

इकाई 4 : इस इकाई में विद्यापति के काव्य के अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष को उजागर किया गया है । इस संदर्भ में विद्यापति की काव्य संवेदना, काव्यानुभूति, कविता की मूल दृष्टि, विद्यापति के काव्य में प्रकृति, कवि की सौन्दर्य साधना और कवि के काव्य सृजन से जुड़े विशेष चर्चित प्रश्न विद्यापति साधक अथवा शृंगारिक पर तर्क सम्मत सामग्री प्रस्तुत की

गई है । कवि की काव्य भाषा और सर्जनात्मकता उनके काव्य रूप कविता में गूँथे हुए छंदों, अलंकारों एवं लय तथा गीति काव्य परम्परा में कवि के योगदान पर विचार किया गया है । दोनों इकाइयों के अंत में पादय अंश से संबंधित निबंधात्मक एवं लघुतरात्मक प्रश्नों के साथ कुछ बोध मूलक प्रश्न भी दिये गये हैं । इसी प्रकार इकाइयों के अंत में विस्तृत अध्ययन एवं स्वाध्याय के लिए जिन पुस्तकों की सूची दी गई है आप उनका भी अध्ययन करें ।

खण्ड -परिचय

खण्ड 2 का परिचय

एमए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध) पाठ्यक्रम का खण्ड- 2 भक्तिकालीन काव्य भाग- 1 शीर्षक से लिखा गया है । हिन्दी काव्य को उसकी निरंतरता और समग्र विकास में देखने और अध्ययन करने की जरूरत को दृष्टि में रखते हुए आदि, भक्ति और रीतिकाल विषयक खण्ड लिखे गए हैं । हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. राम विलास शर्मा ने वीरगाथा काल से रीतिकाल तक की समस्त कृतियों को मुख्यत: दो धाराओं में रख कर देखा है- लोकवादी धारा और रीतिवादी धारा । लोकवादी से उनका तात्पर्य उन कृतियों से है जिनमें लोक जागरण का स्वर है तथा रीतिवादी से अभिप्राय उन कृतियों से है जो चमत्कारवादी है । तकरीबन एक हजार साल के इस सम्पूर्ण काव्य परिदृश्य के संदर्भ में उनका कहना है, "रीतिवादी धारा से टकराती हुई, उसका निरंतर विरोध करती हुई, जब तक उसे प्रभावित भी करती हुई लोकवादी साहित्य की धारा विकसित होती है । "इस तरह वीरगाथा काल और रीतिकाल उनकी दृष्टि में रीतिवाद का क्रमश: प्रथम और द्वितीय उत्थान है जबकि भक्तिकाल लोक जागरण का काल है । भक्ति-काव्य एक प्रकार से धर्म, दर्शन एवं भक्ति की ओट में सम्पूर्ण समाज के नवनिर्माण का ही एक सामूहिक संकल्प था । प्राय: सभी कवियों ने अपने स्तर से इस दिशा में आवाज उठाई । यह अलग बात है कि लोक जागरण का स्वर कहीं ऊंचा था कहीं मंद । किसी भक्त कवि का तेवर विद्रोही था, किसी का समन्वयवादी । कोई निवृत्तिमूलक पथ के पथिक थे तो कोई प्रवृत्तिमूलक । किन्तु सभी के बुनियादी उद्देश्यों में समानता थी- उनके लोक वर्णनों में भी समानता है । अंतर है तो मार्गोपदेश में । इस बिन्दु को दृष्टिकेन्द्र में रख यदि पूरे भक्तिकाल का अध्ययन किया जाए तो एक सुस्पष्ट समझ बनाने में सहूलियत होगी ।

खण्ड- 2 में कुल चार इकाइयाँ है जिनमें निम्नलिखित रूपों में अध्ययन सामग्री प्रस्तुत की गई है : -

इकाई 5 : कबीर का काव्य भक्ति और दर्शन के स्वर में लोक जागरण का आहवान और मानवता का संदेश है । प्रस्तुत इकाई में कवि के जीवन परिचय, रचनाकार, व्यक्तित्व एवं कृतियों के परिचय के साथ कबीर- वाणी से चुने गए उनके दस पदों/सखियों की प्रसंग सहित व्याख्या दी गई है । इससे अध्ययनकर्त्ता कबीर की कविता का रसास्वादन कर उसमें निहित

विश्व प्रेम, मानवता, भक्ति-दर्शन एवं लोक व्यवहार को हृदयगम कर सकेंगे । व्याख्याओं के साथ जो टिप्पणियाँ दी गई है उनसे आप कवि के भाव पक्ष एवं कला पक्ष संबंधी स्पष्ट समझ बना पाने में सक्षम होंगे । अर्थ-संप्रेषण की सुविधा हेतु कुछ कठिन शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं ।

इकाई 6 इस इकाई में कबीर के काव्य के अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष पर तर्क संगत विचार किया गया है । इस इकाई में कबीर की रचना के प्रयोजन तथा सामाजिक सरोकारों के साथ उनकी काव्य परंपरा, कविता के वैचारिक पक्ष, काव्य रूप, भाषा शैली, अलंकारों तथा 'छंदों का विश्लेषण किया गया है । इस तथ्य को उभारने का प्रयास किया गया है कि चूंकि उस युग में धर्म ही युग चेतना का रूप और माध्यम था । मध्ययुगीन सामंती परिवेश में ईश्वरोपासना के अधिकार की माँग भी आर्थिक, सामाजिक न्याय की मांग थी । ऊपर से थोपी गई उन बनावटी मर्यादाओं को तोड़ने की मांग थी जो विशाल जनसमूह को उसके अधिकारों से वंचित किए हुए थी । धर्म के माध्यम से नवीन मानव मूल्यों का निर्माण ही कबीर साहित्य का केन्द्रीय पक्ष है।

इकाई 7 इस इकाई में सूफी साधक जायसी के कवि व्यक्तित्व एवं काव्य का विश्लेषण किया गया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- "कबीर ने भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था । प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी रही थी । वह जायसी द्वारा पूरी हुई । "कथात्मक काव्य के जरिए जायसी ने किस प्रकार प्रेम का शुद्ध एवं सहज मार्ग दिखाते हुए सामान्य जीवन की उन दशाओं को सामने रखा, जिनका मानव मात्र के हृदय पर एक-सा प्रभाव पड़ता है, का विश्लेषण जायसी के पदमावत से चुने गए काव्य खण्ड की ससन्दर्भ व्याख्या के माध्यम से किया गया है ।

इकाई 8 : इस इकाई में जायसी के काव्य के अनुभूति और अभिव्यंजना पक्ष का अध्ययन किया गया है । इस सन्दर्भ में उनके मुख्यात ग्रंथ पदमावत की कथा की रूपकात्मकता, प्रबन्धात्मकता, प्रकृति चित्रण रहस्यवाद, लोकतत्व, प्रेम पद्धति के साथ उनकी काव्य भाषा एवं शैली का भी विवेचन किया गया है । अपने युग की सांस्कृतिक टकराहट में मानवीयता को जिस रूप में रचनात्मक स्तर पर पूरे रचना विधान के भीतर से जायसी ने अभिव्यक्त किया, वह आज के भारतीय समाज के लिए महत्वपूर्ण है ।
इस खण्ड की चारों इकाइयों के अंत में पाद्य अंश से संबंधित निबंधात्मक एवं लघुतरात्मक प्रश्नों के हैं । इसी प्रकार इकाइयों के अंत में विस्तृत अध्ययन एवं स्वाध्याय के लिए संदर्भ ग्रन्धों की सूची दी गई है । आप उनका भी अध्ययन करें ।

इकाई-1 चन्दवरदायी का काव्य

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 कवि-परिचय

1.2.1 जीवन-परिचय

1.2.2 रचनाकार-व्यक्तित्व

1.2.3 कृतियां

1.3 काव्यवाचन एवं संदर्भ सहित व्याख्या

1.3.1 ग्यारह से एकानवें ..... दिपति दीप दिवलोक पति।

1.3.2 कनवज्जह जयचंद ..... सथ्थ रजपूत सौ।

1.3.3 जिहि उदद्धि..... धनुष सज्जी नए।

1.3.4 छिन्न वासुर ..... निरालंबनं।

1.3.5 देह धरे..... सुर असुर अती।

1.3.6 समुद रूप..... समुदं

1.4 मूल्यांकन

1.5 विचार संदर्भ और शब्दावली

1.6 सारांश अभ्यासार्थ प्रश्न

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.8 संदर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- वीरगाथा काल अथवा आदिकाल की पृष्ठभूमि में इस युग के सर्वाधिक विवादास्पद किन्तु सर्वोत्तम रचनाकार चन्दवरदायी के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- कवि परिचय और उसके रचनाकार व्यक्तित्व के बुनियादी सरोकारों से साक्षात्कार कर सकेंगे।
- कवि की रचना के प्रयोजन और उसकी प्रामाणिकता संबंधी विवेचनाओं को देख एक निजी अवधारणा बना सकेंगे।
- रासो के कुछ छन्दों के वाचन एवं व्याख्या विश्लेषण से कवि की अभिव्यक्ति सम्पदा के सहज सौन्दर्य का व्यावहारिक रसास्वादन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

हिन्दी के सर्वाधिक विलक्षण कवि चंदवरदायी जिसके ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो को लेकर तो मत-मतांतरों की दीर्घ श्रृंखला है ही, उनके अस्तित्व तक पर संदिग्ध प्रकट की गई है, इस इकाई में आपके सामने उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व एवं कुछ चुने हुए उदाहरणों की व्याख्या विवेचना का निदर्शन किया जाएगा। व्याख्या के लिए ऐसे छन्द चुने गए हैं जो पृथ्वीराज रासो के काव्य सौष्ठव और वर्णन तथा विषय वैविध्य का अच्छा परिचय दे सकें। ग्रंथ का परिचय प्राप्त कराने के लिए संक्षेप में प्रामाणिकता, अप्रामाणिकता, ऐतिहासिकता, अनैतिहासिकता आदि के द्वन्दों पर भी टिप्पणी की जाएगी। इस इकाई का अध्ययन पृथ्वीराज रासो संबंधी अनेक जानकारियाँ दिलाने में सहायक होगा।

1.2 कवि-परिचय

1.2.1 जीवन-परिचय

हिन्दी के सबसे अधिक विलक्षण कवि जिसका अस्तित्व ही संदिग्ध है - महाकवि चंद हैं। उनकी कृति पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता और ऐतिहासिकता के संबंध में आलोचकों में गहन मतभेद है। ऐसी स्थिति में उसके रचयिता का अस्तित्व भी मलिन हो जाए तो विस्मय की बात नहीं। परम्परा के अनुसार चन्दवरदायी हिन्दु कुल के अन्तिम सम्राट पृथ्वीराज चौहान के सखा, मंत्री, सेनापति, सलाहकार एवं परम हितैषी राजकवि थे। यद्पि इतिहास उनके बारे में चुप है तथापि ग्रंथ में आए हुए विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका जन्म पृथ्वीराज के साथ ही सम्वत् 1151 में लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ। वे बचपन से ही सम्राट के साथ रहे, खेले और पढ़े-लिखे। संस्कृत में लिखित एक श्लोक इस संबंध में उल्लेख्य है -

जयन्ति से सुकृतिनो रस सिद्धा: कवीश्वरा
नास्ति येशां यश: काये जरा-मरण जं भयम्।।

(नीतिशतकम् - भर्तृहरि)

अर्थात् रससिद्ध महाकवियों की कृतियां उन्हें जीवित रखती हैं उनके यशरूपी शरीर में जरा-मरण का भय नहीं व्यापता।

प्राचीन काल में भारतीय परंपरा कुछ ऐसी ही थी कि महान कवियों ने अपने संबंध में कोई विश्वसनीय जानकारी नहीं दी। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भारवि जैसे महान कवियों ने अपने संबंध में कुछ नहीं लिखा। यह भी अनुमान है कि ये सब के सब नाम उपनाम ही रहे हैं। इन महाकवियों के वास्तविक नाम क्या थे? उन्होंने अपने जन्म से भारत के किस भू-भाग को गौरवान्वित किया? कवियों ने नहीं बताया। संभवत: इन्होंने आत्म प्रचार की जरूरत ही नहीं समझी। फूल की तरह खुशबू फैलाना ही इनका कवि कर्म था। चन्दवरदायी के बारे में भी इसी तथ्य को देखा जा सकता है। एक और बात गौरतलब है उनके विपुलकाय महाकाव्य में उनकी पत्नी का उल्लेख अवश्य है जो कथा

को आगे बढ़ाने में प्रश्नोंत्तरों का माध्यम ग्रहण करती है और समय-समय पर चंद को सत्परामर्श भी देती है। चंद के काव्य में आए वर्णनों से यह भी स्पष्ट होता है कि वे षड्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छंदशास्त्र, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, पुराण, नाटक आदि में पूर्णत: दीक्षित ही नहीं आधिकारिक विद्वान थे। सभा, युद्ध, मृगया, विवाह, यात्रा, यहां तक कि यदाकदा अंतरमहल तक में चंद पृथ्वीराज के साथ बैठ मंत्रणा दिया करते थे। जब शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज चौहान को कैद कर गजनी ले गया तब चंद भी वहां पहुंचे। अब तक के रासो का प्रणयन वे स्वयं कर रहे थे (इस विषय की विस्तृत जानकारी पृथ्वीराज रासो के वस्तु वर्णन में दी गई है) किन्तु गजनी जाने के पूर्व उन्होंने यह कार्य अपने पुत्र जल्हण को सौंप दिया, जिसने उनके अधूरे ग्रन्थ को अपने ढंग से पूरा किया। गजनी पहुंचकर चंद ने बड़े कौशल से अपने सम्राट को मुक्त करवाने की योजना बनाई। एक दिन शहाबुद्दीन की सभा में उन्होंने पृथ्वीराज के लक्ष्यबेध की तारीफ इस ढंग से की कि गौरी के मन में पृथ्वीराज की बाण चलाने की कुशलता देखने की जिज्ञासा उत्पन्न हो गई। चन्द के परामर्श के अनुसार सारा आयोजन किया गया। पृथ्वीराज ने चंद के संकेत पर बाण चलाकर गोरी का वध कर दिया, इसके बाद चन्द और पृथ्वीराज ने भी आत्मोत्सर्ग कर दिया। संक्षेप में चन्द के जीवन परिचय की यही रूपरेखा है जो रासो के आधार पर तैयार की जा सकती है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें भी अनेक असंगतियां हैं, जिन्हें हम रासो की प्रामाणिकता के संबंध में लिखते समय देंगे। नीचे उनके व्यक्तित्व और चारित्रिक वैशिष्ट्य के कुछ प्रसंग दिए जा रहे हैं जिन्हें रासो से ही उद्धृत किया गया है।

1.2.2 रचनाकार व्यक्तित्व

ऐतिहासिक दृष्टि को परे रख काव्यत्व की दृष्टि से रासो के इतिवृत्त की समीक्षा करें तो हमें चंदवरदायी की अनुपम-अपूर्व कल्पना शक्ति का कायल होना ही होगा। जिन प्रसंगों की उद्भावना को लेकर इतिहासकार रासो पर आरोप लगाते हैं, वस्तुत: वे ही कवि की काव्यकुशलता के परिचायक हैं। पृथ्वीराज और जयचंद के विरोध का कारण भले ही संयोगिता का अपहरण न रहा हो किन्तु कवि ने रसराज श्रंगार की अभिव्यक्ति के लिए इस बहाने सुंदर प्रसंग ढूंढ निकाला है। युद्धों के कारण के रूप में किसी प्रेमप्रसंग की कल्पना करते हुए इसे उन्होंने विशुद्ध ईर्ष्या द्वेष की अभिव्यक्ति होने से बचा लिया है। पृथ्वीराज द्वारा बार-बार गोरी को क्षमा करते हुए अभय दान देना भले ही ऐतिहासिक तथ्य न हो किन्तु इससे कवि के आदर्श नायक के चरित्र की उदारता का प्रभाव पाठकों के हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता। जब गोरी इस क्षमादान का प्रतिकार पृथ्वीराज को जंजीरों में बंदी बना कर लेता है तो पाठक का मन तिलमिला उठता है और उसकी समस्त सहानुभूति विजयी गोरी के साथ न रह पराजित पृथ्वीराज के साथ हो जाती है। इसी प्रकार पृथ्वीराज का शब्दबेधी बाण द्वारा गोरी का वध करके आत्मोत्सर्ग कर देना नायक के चरित्र को बहुत ऊंचा उठा देता है और कवि के भारतीय महाकाव्य परंपरा के ज्ञान का उदभवन भी करता है।

प्राप्त वृहद् महाकाव्य को देखें तो रचना के पीछे छिपे कवि के महत प्रयोजन की झलक मिलती है। कवि ने अपने समस्त पूर्ववर्ती महाकवियों का उल्लेख किया है। इनमें सर्वप्रथम भुजंगिनी धारक (विष्णु या शिव) को स्मरण किया है जो एक होते हुए भी अनेक नाम धारण किए हुए हैं। फिर जीवितेसं देवतं (ब्रह्मा या यम) को, इस श्रृंखला में तीसरे हैं महाभारतकार वेदव्यास, चौथे शुकदेव (जिन्होंने कुरूवंशीय राजा परीक्षित को सांपों से बचाया) पांचवें श्रेष्ठ कवि हर्ष हैं, जिनके कंठ में राजा नल का चरित्र नैषध काव्य हार के समान है। छः भाषाओं के सागर रूपी छठे कवि कालिदास हैं, जिन्होंने भोज प्रबंध से भी उत्तम "सेतुबन्ध" काव्य लिखा। सातवें कवि दण्डमाली (दण्डी) को कवि ने स्मरण किया है और अंतिम तथा आठवें कवि का नाम जयदेव है, जिन्होंने 'गीत गोविन्द' रचा। उदाहरण (मध्यम संस्करण) नीचे दिया जा रहा है -

प्रथंम भुजंगी सुधारी गहनं। जिनै नाम एकं अनेक कहनं।
दुती लभ्ययं देवतं जीवितेसं। जिनै विश्व राख्यो बली मंत्र सेमं।
तिती भारती व्यास भारत्थ भास्यो। जिनै उत्थ पारत्थ सारथ्य साष्यो।
चरं सुक्कदेवं परीच्छत रायं। जिनै उद्धर्र्यो सुप्प कुर्वसरायं।
नर रूप पंचम्म श्री हर्ष सार। नलेराइ कंठादि नैषद्ध - हार।
छठ कालिदास छ भाषा समुददं। जिनै सेत बंध्यो नि भोज प्रबंध।
सत दण्डमाली उलाली कवित्त। जिने बुद्धि तारंग गंगा सरित्र।
जयद्देव अट्ठं कवि कव्विरायं। जिनै केवलं कित्ति गोविंद गाय।

इन वरिष्ठ कवियों के नामोल्लेख के बाद कवि का यह कहना 'गिरा सेस बानी कवि नाऽव बंदे।।
तिनै सेस उचिष्ट कविचंद छंदे।।

अर्थात् उक्त कवियों की कौन-सी ऐसी बात बाकी रह गई है जिसका वह वर्णन करे। चंद इन्हीं की शिष्ट और उचिष्ट (छोड़ी हुई) उक्ति को पद्य में वर्णित करना चाहता है। ये पंक्तियां जहां एक ओर कवि की अध्ययनशीलता और बहुपठ होने का प्रमाण देती हैं वहीं उनकी निराभिमानता सबके प्रति आदर भाव और उदार हृदयता का भी परिचय देती हैं। एक अन्य स्थान पर वे गोरी जो कि घोर शत्रु है उसे भी श्रेष्ठ वीर का संबोधन देते हैं। (उदाहरण व्याख्या के संदर्भ में दिया गया है)। कवि का काव्य प्रयोजन महत् है। कवि ने आरंभ में ही कहा है।

आसा महीव कवि। नव नव कित्तीय संगह ग्रन्थं।।
सागर सरिस तरंगी। बोहथ्ययं उक्तिय चलयं।।
काव्य समुद्र कवि चंद कृत। मुगति समप्पयन प्लान।।
राजनीति वो हित सुफल। पार उतारन यान।।
छंद प्रबंध कवित्त जाति। साटक गाह दुहथ्थ।।
लहु गुर मंडित खंडियहि। पिंगल अमर भरथ्थ।।

मध्यम तथा वृहद् दोनों संस्करणों में पाई जाने वाली ये पंक्तियां काव्य के प्रति कवि दृष्टि का बोध कराती हैं। कवि की आशा पृथ्वी के समान है और पृथ्वीराज की नित

नवीन कीर्ति संग्रह रूपी ग्रंथ तरंगोन्मत्त सागर की तरह। कवि की उक्तियां वायु द्वारा चलने वाले जल जहाज की तरह हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे जहाज द्वारा मनुष्य सागर पार पहुंचता है, उसी तरह जहाज रूपी प्रतिभा द्वारा (चंद की प्रतिभा) समुद्र रूपी कीर्तिवर्णन (पृथ्वीराज की कीर्ति) के पार पहुंचने का प्रयास कवि करना चाह रहा है। कवि चंद ने समुद्र रूपी जो काव्य लिखा है, वह मोती रूपी ज्ञान को प्रदान करने वाला है। सुफल राजनीति जहाज है, जो छिद्रादि दोषों से मुक्त है तथा पार उतरने की उत्तम सवारी है।

छंद, प्रबंध..... अमर भरथ्थ पंक्तियां लघुतम, लघु, मध्यम तथा वृहत संस्करण में पाई जाती हैं। अर्थात् कविता में जितने प्रकार के छंद-प्रबंध आदि हैं - साटक गाहा दूहा आदि, उन सबमें लघु-गुरू का भरत के पिंगल के अनुसार खंड करते हुए मंडन किया है।

ऊपर दिए गए उदाहरणों में कवि के आत्मविश्वास और राजनीतिविद्ता का परिचय मिलता है। कवि का विजन (Vision) बिल्कुल स्पष्ट है। रासो की उपयोगिता वह इन शब्दों में वर्णित करता है-

रासौ बर बुद्धि सिद्धि। सुद्धि जो सब प्रमानिय।।
राजनीति पाइयै। ग्यान पाइयै सुजानिय।।
उकति जुगति पाइयै। अरथ घटि बंढ़ि उनमानिय।।
या समान गुन आप। देव, नर, नाग, बरखानिय।।
भविछह भूत व्रतह गुनित। गुन त्रिकाल सरसइय।।
जो पढ़य तत्र रासौ मुगुर। घुमति मति नहिं दरसइय।।

रासो से श्रेष्ठ बुद्धि की प्राप्ति होती है। रासो सब प्रकार से शुद्ध एवं प्रमाणित है (शास्त्रानुमोदित तथा व्याकरणसम्मत है)। रासो से मनुष्य राजनीति में निपुण होता है तथा उत्तम ज्ञान और मान पाता है; कथन की भंगिमाओं को समझकर जोड़ घटाव की तकनीक जान लेता है। इस तरह गुणवान बन जाने पर स्वयं देवता, मनुष्य और नाग आकर उसकी प्रशंसा करते हैं। भूत भविष्य तथा वर्तमान त्रिकाल के गुणी लोगों में उसके गुण सदा उत्कृष्ट रहते हैं। रासो के तत्व को विद्वान अच्छी तरह बतला सकता है। कुबुद्धिग्रस्त मनुष्य इसमें बुद्धि का दर्शन नहीं करता। ऐसा कहते हुए चंद राजनीतिक रणनीति एवं व्यवहारिक जीवन को भी नजदीक से देखने परखने और परामर्श देने वाले शुभेच्छु की भूमिका में दिखाई पड़ते हैं।

इतिहासोदभव कथानक को काव्य का विषय चुनते समय आरंभ मे ही कवि अपनी योजना स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

फूलि कित्ति चहुआन की - जुग्गनि जुग्ग निवास
अप्प मत्ति सरसें सबल। मति करो कवि हास।

'अर्थात पृथ्वीराज चौहान की पुष्पित कीर्ति को देखकर (ख्याति को देखकर) जो युग युग में स्वयं प्रकाशमान है, (इस संबंध में कवि को अधिक कुछ लिखने की जरूरत नहीं)

स्वत: सरस और सबल है। कवि कुछ भी बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कह रहा। अत: कवि का परिहास न किया जाए। विनम्रता के साथ कवि का यह दर्प 'विद्यापति की तरह है, उसे भी दुर्जनों के परिहास की कोई परवाह नहीं। वह अपना काव्य सहृदय पाठकों के लिए सुजनों के लिए लिख रहा है, दुर्जनों की निन्दा का उसे कोई भय नहीं। राजाश्रय के उस युग में इस प्रकार की दर्पोक्ति विरल है

सरस काव्य रचना रची, खल जन सुनि न हसंत।

जैसे सिंधुर देखि मग, स्वान सुभाव भुसंत।

लोक प्रचलित मुहावरे हाथी को रास्ते पर देख स्वभावत: कुत्तों के भौंकने का कवि ने अत्यंत सार्थक प्रयोग किया है।

चंद का परिचय देते समय यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि भले ही काव्य के नायक पृथ्वीराज हैं किन्तु व्यक्तित्व की गंभीरता एवं चारित्रिक गरिमा की दृष्टि से चंद अधिक प्रभावशाली प्रतीत होते हैं। वे सम्राट के अधीन हैं किन्तु ऐसा औपचारिक रूप में ही है। सामान्यत: तो वे एक ऐसे फक्कड़, ओजस्वी, स्पष्टवक्ता, गंभीर, दूरदर्शी एवं कल्पनाशील कवि के रूप में परिलक्षित होते हैं, जिनका मन मस्तिष्क किसी भी स्थिति में परतंत्रता और पराधीनता नहीं स्वीकार करता। कैमास वध के बाद वह मृत्युदंड की परवाह न कर पृथ्वीराज की आखों में उंगली डालकर उसकी गलती उसे दिखा देते हैं। यह कह कर कि कईबास, बिआस, विसट्ट विणु मच्छि दधि बद्धओ मरिसि अर्थात् व्यास और वशिष्ठ की तरह कैमास के बिना तुम मछली की तरह जाल में फंसकर मरोगे। संयोगिता से विवाह कर राजकार्य से विरत, वैभव, विलास में आकंठ डूबे पृथ्वीराज को चेतावनी देते हुए चंद कहते हैं - गौरी रत्तउ तुअ धरा तू गोरी-अनुरक्त' - काश वे चेतावनी सुन पाए होते। उन्हें वैभव विलास से सम्मान कहीं अधिक प्रिय है। कन्नौज नगरी के चाकचिक्य की अपेक्षा वे जयचंद के दरबार में पहुंचकर अधिक आनंद अनुभव करते हैं क्योंकि वहां सच्चे काव्य मर्मज्ञ हैं। कन्नौज के कवि समाज में सम्मान पाकर वे कदाचित जीवन में पहली बार कवि जीवन को सार्थक महसूस करते हैं और सोचते हैं-

"कवि देषत कवि कउ मन रतो।

न्याय नयर कनवज्जि पहुत्तो

कवि अभहि अंगीक्रित हिनउ

हेम बिना जिम भयउ दीनउ

अर्थात् यदि उन्हें यहां आने का अवसर न मिलता तो उनकी स्थिति स्वर्ण के अभाव में दीन नग (रत्न) की होती। जयचंद के दरबार में पृथ्वीराज को चंद ताम्बूल वाहक के वेष में ले जाते हैं और चेष्टा करते हैं कि राजा संयमित रहें। हठात् जब एक ऐसी स्थिति आ जाती है कि जयचंद को पान देने का कार्य पृथ्वीराज को करना पड़ता है तो कहीं कोई गड़बड़ न हो जाय सोच चंद संकेत में कहते हैं -

थिरू रहहि थवाइत वज्र कर छंडि सकारह शिनुक रहि।

जिहि असी लश्श पल्लाणिहि तिहि पान देहि दिठ हथ्थ गहि।।

अर्थात् हे! ताम्बूल वाहक स्थिर रह। अपने वज्र हाथों को सत्कार में लगा, जिसके यहां अस्सी लाख घोड़े पाले जाते हैं, उसे तू दृढ़ हाथों से पान दे। लेकिन इस संकेत के बावजूद पृथ्वीराज की चेष्टाएं रहस्य उद्घाटित कर देती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि समय-समय पर चंद ने अपनी संयम, शक्ति प्रत्युत्पन्नमति एवं दूरगामिता का परिचय सम्यक रूप से दिया है। भले ही कथा नायक इसका लाभ न उठा पाया हो।

चंद में व्यंग्यों के माध्यम से जटिल से जटिल उक्तियों को सहज ढंग से उकेर देने की अद्भुत क्षमता है। जो उसके व्यक्तित्व की परिहास प्रियता और जीवंतता को प्रदर्शित करती है। जयचंद के दरबार में जब जयचंद चंद को उसकी तुलना में पृथ्वीराज को श्रेष्ठ पराक्रमी कहकर छंद रचते देखते हैं, तो चंद से श्लेष वक्रोक्ति में प्रश्न करते हैं - "मुंह का दरिद्र, तुच्छ जीव जंगल राव (पृथ्वीराज; भील की सीमा में रहने वाला) वरद (चंदवरदाई बैल) दुबला क्यों हो गया?

मुंह दरिद्र अरू तुच्छ तन, जंगल राव सुहद्द।

बन उजार पसु तन चरन, क्यों दुबरौ वरह।।

कवि उत्तर देता है, पृथ्वीराज ने अपने घोड़े पर चढ़कर चारों ओर दुहाई फेर दी। अपने से अधिक बलवानों के साथ युद्ध किया। दुश्मनों ने जान बचाने के लिए पत्ते, जड़ें और तिनके बटोरे और भयभीत होकर भाग खड़े हुए इस प्रकार सारे तिनके शत्रु खा गये और बैल दुबला हो गया।

चढ़ि तुरंग चहुआन आन फेरीत परद्धर।

तास जुद्ध मंडयौ जास जानयौ सबर बर।।

केइक गहि तकि पात, केइ गहि डार मूर तर।

केइक दंत तुछ त्रिन्न गए दस दिसनि भाजि डर।।

भुअ लोकत दिन अचिरजं भयौ, मान सबर बर मरदिया।

प्रथिराज शलन शद्धौ जुषर, सु यौ दुब्बरो बरद्दिया।

कुछ लोग चन्दवरदायी पर यह आरोप लगाते हैं कि कवि अपने युग को कोई संदेश नहीं देता लेकिन रासो में कवि का यह रूप भी दिखाई पड़ता है। पृथ्वीराज के समृद्ध समय में उसे सुमार्ग पर चलाने की कवि ने भरसक कोशिश की, उसके कैद हो जाने पर वे समस्त क्षत्रियों को तलवार उठाने के लिए आमंत्रित करते हुए कहते हैं - 'प्रथिराज देव दूवन रे छत्रिय कर शग्ग गहु न।'

क्षत्रियगण सुनो! महाराज पृथ्वीराज को दुर्जनों ने कैद कर लिया है - अब तो तलवार उठाओ, शायद यह पुकार चंद की अंतिम पंक्ति है। इसके बाद का अध्याय संभवत: परवर्ती कवि द्वारा लिखा गया था, (कवि पुत्र द्वारा क्षेपक के रूप में लिखा गया है।) अंतत: चंद के व्यक्तित्व का परीक्षण उसके काव्य की कसौटी पर किया जाना चाहिये जिसपर वह शत-प्रतिशत खरा है, न कि इतिहास की शुष्क, नीरसता और अंक गणित के मूल आकड़ों पर।

1.2.3 कृतियां

हिन्दी के आदि अथवा उत्तर कालीन अपभ्रंश के अंतिम महाकवि चंदवरदायी की एकमात्र कृति 'पृथ्वीराज रासो' 12वीं शती के दिल्ली और अजमेर के महाबली सम्राट पृथ्वीराज चौहान तृतीय तथा उनके महान प्रतिद्वन्द्वी जयचंद. गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य, गजनी तथा लाहौर के शासक शहाबुद्दीन गोरी के राज्य, रीति नीति, शासन व्यवस्था, सैनिक-सेना-सेनापति, युद्धशैली, गुप्तचर, व्यापार मार्ग आदि का एक प्रमाण तथा मानवीय चित्तवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषक अपने ढंग का अनूठा महाकाव्य है लेकिन संभवत: सर्वाधिक विवादास्पद भी है।

विवाद का मुख्य कारण इसमें ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा तथा प्रामाणिक साक्ष्यों के अभाव का होना है। सर्वप्रथम जोधपुर के मुरारिदान (चारण) और फिर उदयपुर के कवि राजा श्यामलदास (चारण) ने चंद (भट्ट) के रासो पर शंका उठाई परन्तु चारणों और भाटों के जातीय द्वेष की दुर्गन्ध का आरोप लगने के कारण इनके तर्को को अधिक बल नहीं मिला। इसके बाद प्रो. वूलर के अध्ययनों का सार निकालते हुए उनके शिष्य हर्बट मोरिसन ने उसे (पृथ्वीराज विजय नामक ग्रंथ को) वंशावली, शिलालेख, घटनाओं आदि के आधार पर ऐतिहासिक तथा पृथ्वीराज रासो को इन्हीं आधारों तथा बड़ी संख्या में फारसी के शब्दों को देखते हुए अनैतिहासिक घोषित किया। फिर तो रासो की प्रामाणिकता का विवाद गंभीर होता गया और विद्वानों के समूहों ने अपने अपने मत के समर्थन में तर्क देने शुरू किए। इसके पहले कि हम संक्षेप में इस विवाद को आपके सामने रखें हमें यह समझना चाहिए कि रासो एक काव्य-ग्रंथ है, इतिहास ग्रंथ नहीं। ऐतिहासिक वाद-विवादों के कोलाहल से दूर, ताम्रपत्रों की शुष्क जांच से परे, वंश-वंशावलियों, पट्टे परवानों, शिलालेखों के द्वन्द से अलग यह हिन्दी साहित्य की अनमोल विरासत है। नीचे हम उसके प्रकाशित संस्करणों के नाम दे रहे हैं -

पृथ्वीराज रासो, चन्दवरदायी की सुकीर्ति का अनश्वर आधार है। इसके कई संस्करण मिलते हैं, जिन्हें मुख्यत: चार वर्गो में विभाजित किया जा सकता है -

(1) वृहद् रूपान्तर - इसकी कई प्रतियां उदयपुर राज्य के पुस्तकालय में संरक्षित हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रतियों के आधार पर प्रकाशन के लिए संस्करण तैयार किया। इसकी उपलब्ध प्रतियां सं. 1750 के बाद की हैं। कुछ आलोचक इस संस्करण का आधार 1642 की प्रति को मानते हैं। इस संस्करण में 69 समयों (सर्ग) तथा 16306 छंद हैं।

(2) मध्यम रूपांतर - इसकी कुछ प्रतियां अबोहर के साहित्य सदन, बीकानेर के जैन ज्ञान भण्डार और श्री अगर चंद नाहटा के व्यक्तिगत पुस्तकालय में संरक्षित है। पं. मथुरा प्रसाद दीक्षित ने इसी संस्करण को प्रामाणिक माना था। इसकी सभी उपलब्ध प्रतियां सं. 1700 के बाद की हैं। इसमें सात हजार छंद हैं।

(3) लघु रूपांतर - इसकी तीन प्रतियां बीकानेर राज्य के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में संरक्षित हैं। यह उन्नीस सर्गों में विभाजित है और इसमें 3500 छंद हैं। इनमें से कुछ प्रतियों के अंत में निम्नलिखित पंक्तियां मिलती हैं, जिससे ज्ञात होता है इस संस्करण का संकलन किसी चन्द्रसिंह नामक व्यक्ति द्वारा किया गया था। पंक्तियां नीचे दी जा रही हैं -

रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथीराय सुजसु कवि चन्दकृत, चन्द्रसिंह उद्धरिय इमि।।

यह संस्करण डा. पी. शर्मा द्वारा संपादित और प्रकाशित हो चुका है।

(4) लघुतम रूपान्तर - इस संस्करण की खोज श्री अगरचंद नाहटा ने की। इनमें अध्यायों का विभाजन नहीं है। कुल छंदों की संख्या 1300 है। प्रो. दशरथ शर्मा ने इसी संस्करण को प्रामाणिक माना है। अगली उप इकाई में पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता विषयक विचार दिए जा रहे हैं।

<u>रासो की प्रामाणिकता</u> - आरम्भिक दिनों में रासो को प्रामाणिक माना गया था। सर्वप्रथम इसे प्रामाणिक समझकर ही कर्नल टॉड ने तीस हजार छंदों का अंग्रेजी में अनुवाद किया था। फ्रांसीसी विद्वान गार्सा द तांसी ने भी इसे प्रामाणिक माना था। बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी ने तो इसका प्रकाशन भी शुरू कर दिया था। किंतु इसी समय 1895 ई. में डॉ. वूलर का कश्मीर में संस्कृत में लिखा गया पृथ्वीराज विजय महाकाव्य शीर्षक ग्रंथ मिल गया। इस ग्रंथ में वर्णित घटनाएं ऐतिहासिकता की दृष्टि से शुद्ध हैं। जबकि रासो का वर्णन इसके विपरीत है। इन हालातों में रासो की प्रामाणिकता पर संदेह करते हुए प्रकाशन कार्य रोक दिया गया। देश के कुछ अन्य विद्वानों को डॉ. वूलर के कारण सोचने की नई दिशा मिली। पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने ऐतिहासिकता की दृष्टि से रासो पर अनेक आक्षेप किये जिनमें से प्रमुख हैं :- (1) रासो में चौहान वंश की उत्पत्ति उनके कुल और वंश परम्परा का वर्णन अशुद्ध रूप में है। (2) पृथ्वीराज के सगे-संबंधियों का वर्णन इतिहास से मेल नहीं खाता। (3) गुजरात के राजा भीम ने पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का वध किया था, जो रासो में वर्णित है लेकिन इतिहास के अनुसार ठीक उस समय भीमदेव बच्चा ही था। (4) इतिहास के अनुसार पृथ्वीराज की मृत्यु तीस वर्ष की उस के पहले ही हो गई थी। जबकि रासो में 11 वर्ष से लेकर 36 वर्ष की आयु तक पृथ्वीराज के चौदह विवाहों का वर्णन है। इतिहास में इनके इतने विवाहों का कहीं उल्लेख नहीं है। (5) रासो में दिये गये सभी संवत् अशुद्ध हैं। (6) रासो के अनुसार पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य अपने नाना अनंगपाल के द्वारा प्राप्त हुआ जबकि इतिहास के अनुसार बीसलदेव ने बहुत पहले ही दिल्ली को अपने राज्य में मिला लिया था। (7) रासो में दी हुई संयोगिता स्वयंवर की कथा का इतिहास से कोई संबंध नहीं। (8) शहाबुद्दीन गोरी की मृत्यु से संबंधित कथा पूर्णत: कल्पना प्रसूत है। क्योंकि गोरी की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथों नहीं गोरखों के द्वारा हुई थी।

हिन्दी के अनेक विद्वानों ने इन आक्षेपों का समाधान करते हुए रासो को प्रामाणिक सिद्ध करने की कोशिश की है। इनमें श्री मोहनलाल, विष्णुलाल पांड्या, मुनि जिन विजय और डॉ. दशरथ शर्मा के नाम उल्लेख्य हैं। श्री पांड्या जी ने सन्, संवतों संबंधी आक्षेप के समाधान में "अनंद" संवत की कल्पना की और माना रासो में विक्रम संवत की जगह जो अनंद संवत दिये गये हैं वे करीब नब्बे वर्ष पीछे हैं। मुनि जिन विजय जी ने पुरातन प्रबंध संग्रह की विक्रमी संवत 1528 की प्रति में से एक प्रबंध खोजा है जिसे रासो का सारांश कहा जा सकता है, इसकी घटनाएं रासो के इतिवृत से काफी कुछ मिलती-जुलती हैं। इस प्रबंध में चार छंदों को भी उद्धृत किया गया है जो थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में रासो के अलग-अलग संस्करणों में मिलते हैं। मुनि जिन विजय ने इस प्रबंध की मूल रचना तिथि 1290 तय की है। और इसे रासो के आधार पर उचित माना है। ऐसी स्थिति में रासो का रचनाकाल 13वीं सदी के पहले ही होना चाहिये।

रासो की प्रामाणिकता के बारे में सर्वाधिक सराहनीय प्रयास डॉ. दशरथ शर्मा का है। उन्होंने लघुतम संस्करण को ही मूल रासो प्रमाणित किया है। श्री गौरी चंद हीराचंद ओझा के आक्षेप वृहद् संस्करण पर ही लागू होते हैं। इस संस्करण में मिलने वाली अनैतिहासिक घटनाएं लघुतम संस्करण में नहीं है। कुछ घटनाएं जैसे संयोगिता स्वयंवर, अनंगपाल द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली का राज दिया जाना और गोरीवध वाली घटनाएं लघु संस्करण में भी मिलती हैं किन्तु इन्होंने इन्हें ऐतिहासिक प्रमाणित किया है - "सुरजन चरित" एवं 'पृथ्वीराज विजय' में भी क्रमश: कांतिमती और तिलोत्तमा नामक राजकुमारियों का वर्णन मिलता है जो संयोगिता के वर्णन से मिलता जुलता है। "इस संदर्भ में डॉ. शर्मा कहते हैं- जिसकी ऐतिहासिकता के विरूद्ध सब युक्तियां हेत्वाभास मात्र हैं, उस कांतिमति संयोगिता को हम पृथ्वीराज की प्रेयसी रानी ही मानें तो दोष क्या है? गोरी वध वाली घटना का समर्थन भी 'सुरजन चरित' ग्रंथ से होता है। साथ ही शर्मा ने यह सिद्ध किया है कि मूल रासो अपभ्रंश में लिखा गया था। उन्होंने लघु संस्करण के कुछ हिस्सों को किंचित परिवर्तन के साथ विशुद्ध अपभ्रंश में रूपांतरित करके दिखाया है।

डॉ. शर्मा की खोज के बाद रासो की प्रामाणिकता का विवाद कुछ धूमिल हो गया था। किंतु कुछ वर्ष पहले डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पुन: इस प्रश्न को उठाया। डॉ. द्विवेदी का कहना है - रासो की रचना शुक-शुकी संवाद के रूप में हुई थी। अत: उन्हीं सर्गों को प्रामाणिक माना जाना चाहिये जो शुक-शुकी संवाद से आरम्भ होते हैं। इस आधार पर उन्होंने केवल सात सर्गों को प्रामाणिक माना -

(1) आरम्भिक अंश

(2) इच्छिनी का विवाह

(3) शशिव्रता का गंधर्व विवाह

(4) तोमर पहार का शहाबुद्दीन गोरी को पकड़ना

(5) संयोगिता का विवाह

(6) कयमास वध

(7) गोरी वध संबंधी इतिवृत्त

डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने द्विवेदी जी के मतों की आलोचना करते हुए इससे असहमति जतायी। उनका तर्क है कि प्रक्षेपकारी ने भी शुक-शुकी संवाद में प्रक्षिप्त सर्गों की रचना नहीं की होगी, इसका क्या प्रमाण है। द्विवेदी जी द्वारा प्रामाणिक माने गये सर्गों में भी प्रक्षिप्त अंशों के होने की संभावना है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त का मानना है, रासो को सर्वथा अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। इसके मूल रूप की खोज अभी भी बाकी है। हमारे कविगण जान-बूझकर चरित्र नायक के गौरव की गाथा के लिए ऐतिहासिक तथ्यों में परिवर्तन करते रहे हैं। अत: चंद का भी ऐसा कर देना आश्चर्य की बात नहीं। साथ ही यह भी मानना होगा कि 12वीं सदी तक हिंदी का विकास इतना अधिक नहीं हुआ था कि वह साहित्य में प्रयुक्त होती। अत: रासो का मूलत: अपभ्रंश में रचा जाना ही अधिक संभव है। इस दिशा में एकमात्र ठोस प्रयत्न डॉ. विपिन बिहारी त्रिवेदी ने अपने शोध प्रबंध में किया है - यह लिखते हुए कि भले ही कुछ अंशों में अथवा सम्पूर्ण रूप में रासो जाली सिद्ध हो परन्तु प्रकाशित रूप में यह जैसा जो कुछ है हमारे सामने है, उसकी साहित्यिकता की परख अक्षुण्ण रहेगी।

<u>रासो की मूल कथा -</u> इसका उल्लेख हम अन्यत्र कर चुके हैं यहां यही बताना आवश्यक है कि रासो की मुख्य घटनाएं कौन-कौन सी हैं? कुछ घटनाएं नीचे दी जा रही हैं -

(1) दिल्ली के तोमर राजा अनंगपाल की पुत्री का अजमेर नरेश सोमेश्वर से विवाह

(2) पृथ्वीराज के नाना द्वारा उन्हें गोद लिया जाना

(3) राजा समरसिंह का पृथ्वीराज का समकालीन होना और उनके पक्ष में युद्ध करना।

(4) संयोगिता हरण।

(5) पृथ्वीराज और गोरी के बीच युद्ध

(6) पृथ्वीराज के शब्दवेधी बाण द्वारा मुहम्मद गोरी का वध।

पृथ्वीराज रासो के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म 1058 ई. में हुआ। सं. 1065 में उनके नाना ने इन्हें गोद ले लिया। 1087 ई0 में पृथ्वीराज कन्नौज गए और 1094 ई0 में इनका गोरी से युद्ध हुआ। रासो के अनुसार सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के तोमर राजा अनंगपाल की कन्या से हुआ। पृथ्वीराज सोमेश्वर के पुत्र थे। अनंगपाल की दो कन्याएं थीं सुंदरी और कमला। सुंदरी का विवाह कन्नौज के राजा विजयपाल से हुआ। इन दोनों के पुत्र थे जयचंद। कमला का विवाह अजमेर के राजा सोमेश्वर से हुआ, जिनके पुत्र थे पृथ्वीराज। इस प्रकार पृथ्वीराज और जयचंद दोनों मौसेरे भाई हुए। जब अनंगपाल ने पृथ्वीराज को गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया तो जयचंद को बहुत क्रोध आया। उन्होंने राजसूय यज्ञ किया और देशभर के राजाओं को निमंत्रित किया। यज्ञ के साथ ही अपनी अपूर्व सुन्दरी पुत्री संयोगिता का स्वयंवर रचा। पृथ्वीराज के न आने पर जयचंद ने उनका अपमान करने के लिए उनकी स्वर्णमूर्ति बनवाकर द्वारपाल

के स्थान पर खड़ी करवा दी। संयोगिता पहले से ही पृथ्वीराज पर अनुरक्त थी। उसने इस मूर्ति को ही वरमाला पहना दी। क्रुद्ध होकर जयचंद ने उसे घर से निकाल गंगा किनारे के महल पर भेज दिया। खोजते-खोजते पृथ्वीराज चौहान यहीं पहुंच गये। इसी महल में संयोगिता से गंधर्व विवाह किया। इसी कारण जयचंद से युद्ध छिड़ा। अपने पराक्रम के बल पर पृथ्वीराज संयोगिता को लेकर सकुशल दिल्ली पहुंच गये। पृथ्वीराज की मूल कथा यही है। पृथ्वीराज का गोरी द्वारा बंदी दिया जाना, पृथ्वीराज के बाण से गोरी का वध, चंद और पृथ्वीराज के आत्मोत्सर्ग की कथा भी समानान्तर चलती है। गोरी और पृथ्वीराज के वैर का कारण यह लिखा गया है कि शहाबुद्दीन अपने यहां की एक सुंदरी पर आसक्त था और वह दूसरे पठान सरदार हुसैन शाह को चाहती थी। गोरी से तंग आकर वे दोनों पृथ्वीराज की शरण में चले गये, गोरी ने उन दोनों को लौटाने की जिद की पर पृथ्वीराज ने शरणार्थियों की रक्षा की क्षात्र परंपरा को निभाते हुए उन्हें लौटाने से इंकार कर दिया। इसी बैर से शहाबुद्दीन ने दिल्ली पर हमले किये। इन मुख्य कथाओं के साथ अनेक राजाओं से पृथ्वीराज के युद्ध तथा अनेक राजकन्याओं से विवाह की कथाओं के साथ कई पौराणिक आख्यान-उपाख्यान भी अपने ढंग से वर्णित हुए हैं। अगली इकाई में रासो के कुछ चुने हुए छन्दों की प्रसंग सहित व्याख्या दी जा रही है। इनके वाचन और अर्थ को हृदयंगम कर आप पृथ्वीराज रासो के काव्य सौष्ठव का आनंद ले सकेंगे सौष्ठव ही रासो की विविध विशिष्टताओं का दर्शन कर सकेंगे। इन छंदों को आप रासो के विविध भावों के प्रतिनिधि छंदों के रूप में पढ़िए -

1.3 काव्यवाचन एवं संदर्भ सहित व्याख्या

1.3.1 ग्यारह से एकानवें.....दिपति दीप दिवलोक पति।

दूहा - ग्यारह से एकानवै। चैत तीज रविवार।।
कनवज देशन करने। चल्यौ सु संभरिवार।।
कवित्त- ग्यारह से असवार। लश्श लीने मधि लेशैं।।
इसे सूर सामंत। एक अरि दल बल भष्षे।।
तनु तुरंग बर वज्र। वज्र ठेलै वज्रासन।।
वर भारथ सम सूर। देव दानव मानव नन।।
नर जीव नाम भंजन अरिय। रूद्र भेस दरसन न्रपति
भेट्यो सु यह भर सभ्भई। दिपति दीप दिवलोकपति

रचना का नाम .....
रचनाकार का नाम .....
रचनाकार के बारे में .....

प्रसंग- प्रस्तुत दूहा और कवित्त पृथ्वीराज रासो के कनवज्ज समयो से लिए गए हैं। पृथ्वीराज ने अपने कवि-मित्र सामंत चंद से कन्नौज जाने के विषय में चर्चा की। चंद ने छदमवेश में जाने का सुझाव दिया लेकिन उनके राजमंत्री जैतराव ने कहा तेजस्वी

वेश बदलकर भी छिप नहीं सकते, गोयंदराव ने कहा कुछ भी करें ऐसा कुछ न हो जिससे घात लगाए बैठे गोरी को लाभ हो। अन्त में पूरी सेना सहित रघुवंश राय को दिल्ली के गढ़ की रक्षा का भार सौंप, शेष सौ सामंतों सहित कन्नौज जाने का निश्चय किया गया।

अर्थ- चैत्र महीने की तृतीया के दिन संवत व 1151 को सांभल नरेश पृथ्वीराज ने कन्नौज दर्शन के लक्ष्य से प्रस्थान किया। पृथ्वीराज के साथ ग्यारह सौ चुने हुए घुड़सवार और सौ सामंत भी चले। कवि ने सभी साथी सामंतों के ओज का वर्णन किया है, राजा स्वयं कद के वेश में दिखाई दे रहे थे। समस्त सामंत पराक्रम की जीवंत प्रतिमा थे जो दुश्मनों को सदल बल निगल लेने की क्षमता रखते थे। दुश्मनों के समूह को मोक्ष दिलाने वाले ये एक-एक सामंत लाखों की ताकत रखने वाले थे। अपने वज्र शरीर को घोड़ों की पीठ पर कसे ये ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे वज्र सिंहासन ले जाया जा रहा हो। इन सामंतों में भारत जैसा पराक्रमी था जिसका नाम सुन मनुष्य तो क्या देव और दानव भी विचलित हो जाते थे। पृथ्वीराज सभी के बीच दिशाओं को दीपित करने वाले सूर्य की तरह प्रतीत हो रहे थे।

विशेष-

(1) पृथ्वीराज के सामंतों की वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन

(2) सूर सामंत, तनु तुरंग, देव-दानव, में अनुप्रास अलंकार

(3) भावानुकूल शब्द चयन एवं लय ने कवित्त द्वारा वीर रस के उद्भावन में मदद दी है।

शब्दार्थ-

तुरंग	–	घोड़ा
असवार	–	घुड़सवार
दिवलोकपति	–	दिशाओं को आलोकित करने वाला सूर्य
अरिय	–	शत्रु
भजन	–	नष्ट करना
नृपति	–	राजा
भारथ	–	पृथ्वीराज का एक वीर सामंत

1.3.2 कनवज्जह जयचंद..... सथ्थ रजपूत सौ।

कनवज्जह जयचंद। चल्यो दिल्लीपति पिष्षन।।
चंद वरद्दिय तथ्य। सथ्थ सामंत सूर धन।।
चाहु आन कुरंभ। गौर गाजी बड़ गुज्जर।।
जादव रा रघुवंस। पार पूंडीरति पष्षर।।
इतने सहित भूपति छड्यो। उड़ी रेनु छीनो नभो।।
इक लष्ष लष्ष वर लेशिए। चले सथ्थ रजपूत सौ।।

रचना का नाम .....

रचनाकार का नाम .....

रचनाकार के बारे में.....

प्रसंग- पूर्व पद के क्रम में इस कवित्त के लिए भी समान प्रसंग देखें।

अर्थ- दिल्लीपति पृथ्वीराज कन्नौज के जयचंद से मिलने चले। चंदवरदायी तो साथ चले ही अन्य कई शूरवीर पराक्रमी योद्धा भी इस दल में शामिल हो कन्नौज की ओर बड़े। इन वीरों में चौहान कुरंभ, बड़े गुर्जर राज, गौर गाजी, रघुवंश यादव और पुंडीर राव थे। इन सभी से प्राय: पृथ्वीराज की रिश्तेदारी थी। इतने राजाओं के साथ चलने पर घोड़ों के खुरों से इतनी धूल उड़ी कि आकाश का रंग धूसर हो गया। एक ही लक्ष्य से प्रेरित इन सौ राजपूतों में से प्रत्येक में लाखों की शक्ति समाहित थी।

विशेष-

(1) युद्ध से पूर्व के उत्साह का वर्णन है।

(2) शब्द चयन वीररस संचरण के अनुकूल है।

(3) भाषा अपभ्रंश, ब्रज मिश्रित राजस्थानी है, जिसे डिंगल भी कहा जाता है।

(4) लष्ष लष्ष में यमक अलंकार है। पहले लष्ष का अर्थ उद्देश्य दूसरे का लाख की संख्या है।

शब्दार्थ-

(1) कनवज्जह – कन्नौज को
(2) पिष्षन – देखने
(3) सथ्थ – साथ
(4) लष्ष – लक्ष्य, लाख
(5) रेणु – धूल
(6) छीनो – क्षीण, धूसर
(7) नभो – आकाश

1.3.3 जिहि उदद्धि ..... धनुष सज्जौ नए।

जिहि उदद्धि मथ्थए। रतन चौदह उद्धारे।।
सोइ रतन संजोग। अंग अंग प्रति पारे।।
रूप रंभ गुन लच्छि। वचन अमृत विष लज्जिय।।
परिमल सुरतरू अंग। संष ग्रीवा सुन सज्जिय।।
बदन चंद चंचल तुरंग। गय सुगति जुब्बन सुरा।।
धेनह सु धनंतरि सील मनि। भौंह धनुष सज्जौं नरा।।

रचना का नाम .....

रचनाकार का नाम.....

रचनाकार के विषय में.....

प्रसंग- प्रस्तुत अंश पृथ्वीराज रासो के बड़ी लड़ाई के प्रस्ताव से लिया गया है। पृथ्वीराज युद्ध में जीतकर संयोगिता को दिल्ली ले आते हैं और धूमधाम से विवाह सम्पन्न होता

है। देश की स्थिति ठीक नहीं है, गुरूराम नामक सामंत चंद से पूछता है, राजकीय दायित्व भूल पृथ्वीराज इस स्त्री पर इतने मुग्ध क्यों हैं। चंद उत्तर में संयोगिता के असाधारण व्यक्तित्व और रूप सुषमा का वर्णन करता है।

अर्थ- कवि संयोगिता के रूप-सौंदर्य का वर्णन करते हुए चंद कहता है -

संयोगिता का रूप अप्सरा रम्भा के समान मनोरम है। गुण लक्ष्मी के समान समृद्ध और वाणी अमृत की तरह मधुर तथा जीवनदायी है। उसकी लज्जा विष है। उसके अंग-प्रत्यंगों की सुगंध पारिजात का बोध कराती है, उसकी ग्रीवा (पांचजन्य) शंख की तरह, मुख चन्द्रमा के समान, चंचलता उच्चैश्रवा (विष्णु का घोड़ा) की तरह, चाल ऐरावत की (इन्द्र का हाथी) तरह, यौवन सुरा की तरह मदहोश करने वाला और वह स्वयं कामधेनु की तरह है जो पृथ्वीराज की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ है। उसके शील को धन्वंतरि और कौस्तुभ मणि की भांति तथा भौंहों को सारंग (धनुष) की तरह समझो।

विशेष-

(1) देवासुर संग्राम में समुद्र मंथन से निकले हुए चौदह रत्नों का आरोप संयोगिता के अवयवों पर करते हुए कवि ने अपनी मौलिक उद्भावना का परिचय दिया है। समस्त पारम्परिक उपमानों के साथ चमत्कारिक रूपकों का समावेश भी किया गया है।

(2) अत्यन्त सुन्दर नख-शिख वर्णन एक ही छप्पय छंद में किया गया है।

(3) कवि चंद का प्रिय छंद अनुप्रास पूरे छप्पय में मणि की तरह सजा हुआ है।

(4) पारम्परिक नख-शिख वर्णन से इतर इस वर्णन में भी कवि की मौलिकता दृष्टिगत होती है।

(5) रासो में सौन्दर्य वर्णन विशिष्ट रूप में आया है जो कवि के सरस हृदय का परिचायक है।

(6) भाषा पूर्व व्याख्याओं में देखें।

शब्दार्थ-

उदद्धि	–	समुद्र
मथ्थए	–	मथकर
उद्धारे	–	निकाले
रंभ	–	अप्सरा रंभा
लच्छि	–	लक्ष्मी
तुरंग	–	घोड़ा
गय	–	हाथी
जुब्बन	–	यौवन
धेनह	–	गाय (कामधेनु)
सज्जी	–	सुशोभित

1.3.4 छिन्न वासुर..... ..... निरालंबनं।

छिन्न बासुर सीत दिघ्घ निसया। सीतं जनेत बने।
सेजं सज्जर बानया बनितया, आनंग आलिंगने।
यों बाला तरूनी वियोग पतनं, नलिनी दहनते हिमं।
या मुक्के हिमवंत मन्त गमने, प्रमदा निरालंबनं।

रचना का नाम .....
रचनाकार का नाम
रचनाकार के विषय में

प्रसंग- प्रस्तुत अंश पृथ्वीराज रासो के कनवज्ज समयो से लिया गया है। पृथ्वीराज कन्नौज जाने के लिए कटिबद्ध हैं। परन्तु विपक्षी प्रबल है। अत: सकुशल लौट आने में आशंका है। इसलिए वे सबसे पहले पटरानी इच्छिनी एवं उसके बाद अन्य रानियों से विदा लेने उनके महलों में जाते हैं। इसी प्रसंग में कवि को षटऋतु वर्णन का मौका मिल जाता है। बसन्त, ग्रीष्म. वर्षा, शरद क्रमश: इच्छिनी, पुण्डिरिनी, इन्द्रावती और हंसावती के महल में बिता, जब वे हेमन्त ऋतु में रानी कूरंभी के महल में पहुंचे तो शीत ऋतु करीब थी। इस ऋतु में अपनी प्रिया को वियोग में छोड़ प्रवास पर जाना सर्वथा अनुचित था। कवि अनेकानेक तर्को द्वारा कूरंभी के मुख से कहलवाता है।

अर्थ - शीत का आगमन करीब है। दिन छोटे होने लगे, रात दीर्घ आकार ग्रहण करने लगी। शीत ने अपना साम्राज्य विस्तार कर लिया। स्त्री-पुरूष परस्पर आलिंगनबद्ध हो शय्या की शरण लेने लगे। इस ऋतु में जिस प्रकार हिमपात (बर्फ गिरना) कमलिनियों को जला डालता है उसी प्रकार कोमलांगी वियोमिनी बालाओं को भी ग्रस लेता है। अत: इस हेमन्त में अपनी स्त्री को बेसहारा छोड़ मत जाओ।

विशेष-

(1) श्लोक (साटक) छंद में सुंदर ऋतु वर्णन है।
(2) पृथ्वीराज की विलासप्रियता द्रष्टव्य है।
(3) पूरे छंद में अनुप्रास अलंकार है।
(4) तरूनी और नलिनी में रूपक है।

शब्दार्थ-

छिन्न	–	क्षीण (छोटे)
बासुर	–	दिन
दिव्य	–	दीर्घ
निसया	–	रात्रि (निशि)
मुक्के	–	छोड़कर
प्रमदा	–	स्त्री
निरालंबन	–	बेसहारा

1.3.5 देह धरे..... सुर असुर अती।

देह धरे दोगत्ति। भोग जोगह तिन सेवा।।
कै वन ४ वनिता। अगनि तप कै कुच लेवा।।
गिरि कदर जल मीन। पियन अधरारस भारी।।
जोगिनींद मद उमद। कै छगन वसन सवारी।।
अनुराग बीत कै राग मन। वचन तीय गिर झरन रति।।
संसार विकट इन विधि तिरय। इही विधि सुर असुर अति।।
रचना का नाम ... .
रचनाकार का नाम
रचनाकार के विषय में
प्रसंग- पूर्व पद में देखें। यह छंद उसी के क्रम में आगे बढ़ता है।

अर्थ- रानी कूरंभी पृथ्वीराज को समझाते हुए कहती है - इस पृथ्वी पर जब मनुष्य जन्म लेता है तब उसके दो ही धर्म होते हैं - भोग या योग। इन दोनों में से एक तो उसे अपनाना ही पड़ता है, चाहे वह वनिताओं का उपभोग करे चाहे वन की शरण ले, चाहे पंचाग्नि की साधना करे चाहे स्त्री की छाती से लग शीत से अपनी रक्षा करे, चाहे गिरि कंदराओं का जल पिए चाहे अधरामृत पान करे, चाहे योग की खुमारी में मस्त रहे, चाहे सुंदर वस्त्र पहने, चाहे राग से मन रंग ले चाहे पर्वतीय झरनों की कलकल ध्वनि से प्रेम करे, चाहे स्त्री की मधुर वाणी के श्रवण के आनंद में निमग्न हो जाए। इस ऋतु में विराट विश्व की रक्षा दो ही विधियों से हो सकती है। सुर और असुर सभी इसी मार्ग का अवलंबन करते हैं।

विशेष-

(1) इस छंद में षटऋतु वर्णन में प्रकृति का उद्दीपनगत चित्रण किया गया है।
(2) युद्ध काव्य होने के साथ रासो एक श्रंगार काव्य भी है। अत: कहीं-कहीं (जिनमें यह पद भी है) उदात्त श्रंगार के वर्णन में कवि का मन खूब रमा
(3) कवि की वचन विदग्धता और तर्कशीलता रानी कूरंभी के माध्यम से प्रकट होती है।

1.3.6 समुद रूप.... ....समुदं

समुद रूप गोरी सुबर। पंग ग्रेह भय कीन।।
चाहु आन तिन बिबध कै। सो ओपम कवि लीन।।
सो ओपम कवि लीन। समर कग्गद लिय हथ्थ।।
भिरन पुच्छि बट सुरंग। बंधि चतुरंग रजथ्थ।।
समर सु मुक्कलि सोर। लोह फुल्यो जस कुमुद।।
रा चावंड जैतसी। रा बड़ गुज्जर समुद।।
रचना का नाम
रचनाकार का नाम

रचनाकार के विषय में

प्रसंग- चूंकि पृथ्वीराज रासो एक युद्ध प्रधान काव्य है इसमें अनेकानेक युद्धों का विवरण और वर्णन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। महाराज पृथ्वीराज से मुहम्मद गोरी के कई युद्ध हुए जिसमें से एक का वर्णन इस कुंडलिया छंद में किया गया है। सावयव रूपक अलंकार के सहारे कवि चंद ने पृथ्वीराज और उनके सामंतों-सेनापतियों के युद्धोत्साह की व्यंजना की है।

अर्थ- श्रेष्ठ योद्धा सुल्तान मुहम्मद गोरी रूपी समुद्र में लगातार पग (जयचंद) रूपी ग्राह का भय बना हुआ है। अर्थात कहीं से किसी समय जयचंद भी मगर की तरह हमला कर सकता है। उसी समय महाराज पृथ्वीराज यहां देवोपम शोभा के साथ अवतरित हुए कवि इस वर्णन के लिए सार्थक उपमा का चयन करने में लीन हो गया। उन्होंने युद्ध का परवाना हाथ में ले लिया और शत्रु. से भिडने के लिए चामंडराय जैतसिंह तथा बड़गूजर के साथ एक सुंदर घने वटवृक्ष के आकार में अपनी, चतुरंगिणी सेना सजाई यह संवाद चारों ओर फैल गया। फिर तो युद्धभूमि में रक्ताभ तलवार रूपी कमल खिल उठे। अर्थात दुश्मनों की तलवारें युद्ध के लिए खिंच गई, उन चमचमाती तलवारों को देख ऐसा लग रहा था जैसे लाल कमलों के झुंड खिल उठे हों।

विशेष-

(1) पृथ्वीराज रासो जैसे वीरगाथात्मक काव्य में वीर रस के ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारियों की अंगों-उपांगों सहित योजना युद्धवीर के मन में रस प्रसवित करते हुए अपनी उत्साह भंगिमा द्वारा पाठकों पर भी प्रभाव छोड़ती है।

(2) सावयव रूपक एवं कुंडलिया छंद में भावाभिव्यक्ति की गई है। कुंडलिया मात्रिक छंद है जो दोहा और रोला के मेल से बनता है। दूसरे पद की अंतिम पंक्ति तीसरी पंक्ति में दुहराई जाती है।

(3) सच्चे वीर दुश्मन की वीरता की भी सराहना करते हैं, यहां चंद ने गोरी को श्रेष्ठ योद्धा कहकर संबोधित किया है।

(4) समुद और समुद में भंग पद यमक है। पहले समुद का अर्थ समुद्र दूसरे का प्रसन्नता में डूबना है।

(5) भाषा ब्रज एवं राजस्थानी का मिलाजुला रूप है। रासो में कई तरह के भाषा रूप मिलते हैं जिस पर संस्कृत, प्राकृत के अतिरिक्त देशी प्रभाव भी है। अत: इसके भाषा रूप को शब्दावली की दृष्टि से समृद्ध, अर्थ व्यंजना की दृष्टि से प्रौढ़ एवं गंभीर तथा काव्य गुणों की दृष्टि से पर्याप्त संपन्न कहा जा सकता है।

शब्दार्थ-

पंग	–	जयचंद
ग्रेह	–	मगर
ओपम	–	उपमा
समर	–	युद्ध

कग्गद	–	कागज, परवाना
मुक्कलि	–	फैल गया
लोह	–	तलवारें
कुमुद	–	कमल
फुल्यो	–	खिल उठे
भिरन	–	भीड़ जाने के लिए।

1.4 मूल्यांकन

चंदवरदायी की रचना पृथ्वीराज रासो आदिकाल अथवा वीरगाथा काल की सबसे महत्वपूर्ण और सबसे विवादास्पद पुस्तक है। चंद के बारे में प्रसिद्ध है कि वह पृथ्वीराज का समवयस्क, बाल्यबंधु, सलाहकार, राजकवि था। वह अत्यन्त निर्भीक और वाक् विदग्ध था, पृथ्वीराज भी उसे यथेष्ट सम्मान देते थे। रासो के अनुसार पृथ्वीराज को बंदी बनाकर गोरी गजनी ले गया। चंद भी उसके साथ गया। वहां उसने ऐसा माहौल तैयार किया जिससे गोरी के मन में पृथ्वीराज की शब्दबेधी बाण चलाने की कला जानने की उत्सुकता जागे। पृथ्वीराज ने अपने मित्र से कविता सुनाने की आज्ञा चाही और मौका पाकर चंद ने संकेत से बता दिया गोरी कितनी दूर और कितनी ऊंचाई पर बैठा है। गोरी के ताली बजाने के पहले चंद ने छंद सुनाया-

चार बांस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमाण
ताही पर सुल्तान है मत चूके चौहान

और पृथ्वीराज के धनुष से छूटे तीर ने गोरी का वक्षस्थल बेध दिया, वह जहां का तहां ढेर हो गया। इसके उपरांत चंद और पृथ्वीराज एक-दूसरे को कटार मारकर मर गये। इस प्रसंग में अधूरे रासो को पूरा किया चंद के पुत्र जल्हण ने। “पुस्तक जल्हण हस्त्थ दै चलि गज्जन नृप कज्ज" उक्ति के साथ एक और उक्ति प्रसिद्ध है "रघुनाथ चरित्र हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि। पृथ्वीराज सुजस कवि चन्द कृत, चन्द नन्द उद्धरिय तिमि।।'

रासो की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता को लेकर विद्वानों में गम्भीर मतभेद देखा गया। यहां तक कि रासो के रचयिता चंद के अस्तित्व तक को प्रश्नों के घेरे में रखा गया। यदि पुरातन प्रबंध संग्रह के संपादक मुनि जिनविजय ने चंद के चार छप्पयों की खोज करते हुए रासो (मूल) की भाषा को अपभ्रंश बताया तो हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस मत की सम पुष्टि की और कम से कम चन्द का होना प्रामाणिक हो गया। रासो के साहित्यिक मूल्यांकन से विरत आलोचक प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता के विवाद में उलझे रहे। चूंकि चंद पृथ्वीराज का समकालीन था, अत: उसकी ऐतिहासिकता की ओर ध्यान जाना भी स्वाभाविक था। 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास में बच्चन सिंह ने प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता के संदर्भ में तीन प्रकार के मतों का उल्लेख किया -

(1) रासो पूर्णत: प्रामाणिक रचना है।

(2) रासो पूर्णत: अप्रामाणिक है।

(3) न पूर्णत: प्रामाणिक है और न पूर्णत: अप्रामाणिक है। यह अर्द्धप्रामाणिक है।

प्रथम वर्ग के आलोचकों में मिश्रबंधु श्यामसुंदर दास और मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या प्रमुख हैं। इन लोगों का मानना है नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो का वृहत्तम् रूप पूर्णत: प्रामाणिक है। पाण्ड्या जी ने रासो को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए 'आनन्द सम्वत्' की कल्पना भी कर ली है। प्रामाणिकता के पक्ष में जो तर्क दिये गये हैं वे प्राय: अंधश्रद्धा के शिकार और बुनियादी तौर पर कमजोर हैं और ऐतिहासिकता को प्रामाणिक करने में सक्षम नहीं होते।

आलोचकों का दूसरा वर्ग इसे पूरी तरह जाली ग्रंथ ठहराता है। वूल्हर, गौरी शंकर हीराचंद ओझा, देवी प्रसाद. कविराज श्यामल दास और रामचंद्र शुक्ल इस वर्ग में आते हैं। ओझा जी का कहना है, रासो में उल्लिखित नाम, घटनाएं और संवत भट्ट वर्णित हैं। कश्मीरी कवि जयानक के पृथ्वीराज विजय काव्य तथा तत्कालीन शिलालेखों के साक्ष्य पर रासो किसी प्रकार भी प्रामाणिक नहीं ठहरता। ओझा जी इस रासो को संवत 1600 के आस-पास रचित मानते हैं।

तीसरे वर्ग में मुनि जिन विजय और हजारी प्रसाद अग्रणी हैं जिनके विचारों का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं।

रासो के संबंध में इतने विश्लेषणों के उपरांत अधिकांश विद्वान इस बात से सहमत हैं कि चंद पृथ्वीराज चौहान का राजकवि था। उसी ने 'पृथ्वीराज रासो' नामक काव्यग्रंथ लिखा किन्तु यह भी सच्चाई है कि रासो के चार रूपांतरों वृहत, मध्य, लघु, लघुत्तम में से किसी को भी यथावत प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। लघुत्तम रूप में भी प्रक्षिप्त अंश मिलते हैं। दरअसल पीढ़ियों से गाये जाने के कारण उसकी भाषा में परिवर्तन तो हुआ ही, बहुत से क्षेपक भी जुड़ते चले गये। अत: मूल रासो को इन रूपांतरों में तलाशने की कोशिश व्यर्थ है। यदि संयोग से अपभ्रंश में लिखा. हुआ कोई रासो मिल जाय तो उसके परीक्षण के बाद प्रामाणिकता घोषित की जा सकती है। इस विवाद पर टिप्पणी करते हुए नामवर सिंह कहते हैं 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता पर विचार करते समय यह न भूलना चाहिये कि यह काव्यग्रंथ है, इतिहास नहीं। यदि जायसी के पद्मावत की अनैतिहासिक घटनाओं को लेकर इतना शोरगुल नहीं हुआ तो कोई आवश्यक नहीं कि पृथ्वीराज रासो पर ऐसा कोप किया जाय।

पृथ्वीराज रासो के अध्ययन से एक बात जरूर स्पष्ट होती है कि 7वीं-8वीं शताब्दी से इस देश में ऐतिहासिक व्यक्तियों को कथानायक बना उनके नाम पर काव्य रचना की परिपाटी चल निकली। इन्हीं दिनों ईरान के साहित्य में भी यह विशेषता शुरू हुई। इस काल में अनेक जातियां उत्तरी-पश्चिमी सीमांत से होते हुए इस देश में आई और राजस्थापन में भी समर्थ हुई। साहित्य में नये-नये काव्य रूपों का प्रवेश हुआ। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने माना है - ऐतिहासिक पुरूषों के नाम पर काव्य लिखने या लिखाने का चलन शायद नई जातियों के संसर्ग का फल हो, लेकिन भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया। शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें काव्य निर्माण की ओर

अधिक ध्यान था, विवरण संग्रह की ओर कम। कल्पना-विलास में जितनी रूचि थी, तथ्य निरूपण में नहीं। संभावनाओं की ओर अधिक ध्यान था, घटनाओं की ओर कम। उल्लसित आनन्द की ओर अधिक झुकाव था, विकसित तथ्यावली की ओर कम। इस प्रकार इतिहास को कल्पना के हाथों पराजित होना पड़ा और ऐतिहासिक तथ्य कल्पना को सुधारने के साधन मात्र रह गये। राजा का विवाह, शत्रु विजय, जल विहार, शैल-वन विहार, दोला विलास, नृत्य संगीत प्रमुख हो उठे। कालांतर में इतिहास का अंश धूमिल होता गया, संभावनाओं का प्रखर। पृथ्वीराज रासो के कथा-क्रम में तथ्य और कल्पना का, फैक्ट्स और फिक्शन का अभूतपूर्व संयोग परिलक्षित हुआ। कर्मफल की अनिवार्यता में दुर्भाग्य और सौभाग्य की अद्भुत शक्ति में और मनुष्य के अपूर्व शक्ति भंडार होने में दृढ़ विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों को सदा काल्पनिक रंग में रंगा। यही कारण है - ऐतिहासिक व्यक्तियों के चरित्र पर लिखी गई रचनाएं भी अंतत: काव्य ही बन सकीं, इतिहास नहीं। लेकिन ये निजंधरी कथाओं से इस अर्थ में भिन्न थी कि उनमें बाह्य तथ्यात्मक जगत से कुछ न कुछ योग जरूर रहता था।

जैसे भारतीय कवि काल्पनिक कथाओं में त्रासदी को उकसाने वाली घटनाओं को नहीं आने देता, उसी प्रकार वह ऐतिहासिक कथानकों में भी करता है। सिद्धान्तत: काव्य में उस वस्तु के चित्रण को भारतीय कवि उचित नहीं समझता जो तथ्य और औचित्य की भावनाओं में विरोध उत्पन्न करे, दु:ख पैदा करने वाली विषम परिस्थितियों की सृष्टि करें लेकिन जीवन में ऐसी घटनाएं तो होती ही रहती हैं इसलिए इतिहास पर आश्रित काव्य में भी ऐसी बातों का आना स्वाभाविक हो जाता है। बहुत कम कवि अपनी बुद्धि से ऐसी घटनाओं की उपेक्षा कर पाते हैं, यही कारण है कि प्राय: इन ऐतिहासिक काव्यों के नायक धीरोदात्त हैं। कथा नायक के नैतिक पतन की सूचना देने वाले प्रसंगों को कवि प्राय: नजरअंदाज करता है। यदि ऐसे प्रसंग आ भी जाएं तो घटनाओं और परिस्थितियों को इस प्रकार बुनता है जिसमें नायक का कर्तव्य उचित रूप में परिभाषित हो। भारतीय कवि इतिहास प्रसिद्ध पात्र को ही निजंधरी कथानकों की ऊंचाई तक ले जाना चाहता है। इस कार्य के लिए वह कुछ कथानक रूढ़ियों का प्रयोग करता है। जो कथानक को इच्छित दिशा में मोड़ देने के लिए दीर्घ काल। से प्रचलित हैं। इनसे कथानक में सरसता आती है और घटना प्रवाह में एक प्रकार की अद्भुत लोच आ जाती है।

1.5 विचार संदर्भ शब्दावली

नख-शिख - नायिका के रूप सौन्दर्य का नाखून (पैरों के) से लेकर शिखा (बालों की चोटी) तक का वर्णन। आदिकाल से यह वर्णन परंपरा रीतिकाल तक मिलती है। यह संस्कृत काव्य शास्त्र से परंपरा में ली गई है।

हिमपात हेमंत और शिशिर ऋतु के आरंभ में बर्फीली ओस का टपकना।

सावयव – अंगों प्रत्यंगों सहित

प्रसवित – जन्मी, फैली

विवादास्पद – जिस विषय को लेकर लोगों में मतभेद हों

सरोकार – मतलब, दायित्व

उच्छिष्ट – जूठी, छोड़ी हुई वस्तु

श्लेष – जहां एक ही शब्द में दो अर्थ छिपे हों

पिंगल पिंगल छंदशास्त्र के रचयिता का नाम है और इसी कारण वीर गाथाकाल में परिष्कृत भाषा को "पिंगल" नाम दे दिया गया था। प्रादेशिक बोलियों के साथ मध्य देशीय भाषा का मिश्रण होने के कारण एक भाषा बनी जिसे हिंदी में ब्रजभाषा या केवल भाषा कहते थे। इसी श्रेणी की भाषा को राजस्थानी कवि पिंगल कहा करते थे। बहुत दिनों तक शौरसेनी प्राकृत और उससे निकली ब्रजभाषा को नागभाषा कहा जाता रहा। मिर्जाखाँ ने फारसी में लिखे हुए ब्रजभाषा के व्याकरण में प्राकृत को नाग-लोक की भाषा कहा है। पिंगल स्वयं नाग थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पिंगल को शोरसेनी प्राकृत या ब्रजभाषा माना है।

डिंगल- डिंगल अपभ्रंश के योग से बनी हुई राजस्थानी भाषा का साहित्यिक नाम था। डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से बताई गई है। कुछ इसका अर्थ 'गंवारू' से जोड़ते हैं तो कुछ डिम+गल अर्थात् डमरू की आवाज वाली वीररस की भाषा से। कुछ डींग या अतिशयोक्तिपूर्ण कथन से इसका संबंध बताते हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने राजस्थानी चारणों की राजस्तुति और वीर दर्पोक्तियों को वहन करने वाली भाषा को डिंगल कहा है।

असंगति – असंबद्धता, विरोध मूलक, विश्रंखल

चरितकाव्य – ऐसा काव्य जिसमें किसी व्यक्ति का चित्रण ही मुख्य विषय हो।

रासक शैली – रासक एक प्रकार के गेप रूपक को कहते है, इसमें अनेक नर्तकियां ताल लय के साथ नृत्य करती हैं।

कथानक रूढ़ि – आदिकाल के रचनाकार संभावनाओं और कल्पना पर अधिक बल देते थे। इस कल्पना को यथार्थ बनाने के लिए कवियों ने कथा कहने की कुछ रूढ़ियाँ (बना बनाया ढाँचा) तय कर लीं जिन्हें कथानक रूढ़ि कहा जाता है, जैसे चित्र देखकर किसी पर मोहित हो जाना। (कथानक रूढ़ि पर आगे विस्तार पूर्वक लिखा गया है - देखिये)

चाकचिक्य – तड़क-भड़क, चमक-दमक

परिहास – मजाक उड़ाना

उद्भावन – प्रकटीकरण

शास्त्रानुमोदित – शास्त्रों ने जिसका समर्थन किया है

रससिद्ध – जो रसों का आधिकारिक विद्वान हो

प्रक्षिप्त – बाद में जोड़ा गया

1.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ ने से आपके सामने आदिकाव्य के सर्वप्रसिद्ध और सर्वाधिक विवादास्पद काव्यग्रंथ पृथ्वीराज रासो के विषय में एक सुसंयत जानकारी मिल गई होगी। आप समझ गये होंगे कि -

- पृथ्वीराज रासो के रचयिता कौन थे? उन्होंने किन परिस्थितियों में यह काव्यग्रंथ लिखा? उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का क्या महत्व है?
- रासो के विविध प्रसंगों से चंदवरदायी के व्यक्तित्व की कौन-कौनसी विशेषताएं उभरकर सामने आती हैं?
- पृथ्वीराज रासो के कुछ विशिष्ट छंदों के वाचन और संदर्भ व्याख्याओं से इस ग्रंथ के विषय वैविध्य और काव्य-सौन्दर्य से आप की परिचित हो गई होगी।
- पृथ्वीराज रासो के विवादास्पद होने का क्या कारण है? इसकी प्रामाणिकता अप्रामाणिकता को लेकर किस प्रकार के तर्क दिये गये हैं? इनसे वाकिफ होकर आपकी अपनी एक अवधारणा भी निःसंदेह बनी होगी। अंतत: आपके सामने स्पष्ट हो गया होगा कि अपनी समस्त अनैतिहासिकता और अप्रामाणिकता के बावजूद यह एक उच्चकोटि का महाकाव्य है, जिसमें उच्च पात्रों. उदात्त विचारों एवं गंभीर भावों की अभिव्यंजना मार्मिक रूप में हुई है। इसके पात्र जहां मध्यकालीन सामंत वर्ग की एक जीती-जागती तस्वीर प्रस्तुत करते है. वहीं इसमें अभिव्यक्त भावनाएं तत्सामयिक आदर्शो एवं लक्ष्यों को पूरी सच्चाई और पारदर्शिता के साथ उजागर करती हैं। पृथ्वीराज रासो की महत्ता उसके आकार-प्रकार की विपुलता और विशालता में नहीं अपितु इस बात में है कि एक तो यह उस युग की रचना है जब हिंदी अपभ्रंश की क्रोड से बाहर निकलने की अभ्यस्त नहीं हुई थी, दूसरे इसमें वीररस का चित्रण उन हाथों से किया गया है जो तलवार चलाने में भी उतने ही कुशल थे जितने कलम चलाने में। कलम और तलवार दोनों के धनी रचनाकार साहित्य में यदा-कदा ही उदित होते हैं। महाकवि चंद एक साथ शक्ति और वाणी के कवि थे। यही कारण है कि उनके नाम और उनकी रचना का महत्व युगों बाद भी अक्षुण्ण है।

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. कवि चंद के रचनाकार व्यक्तित्व का परीक्षण कीजिये।
2. पृथ्वीराज रासो की कथा संक्षेप में लिखते हुए इसकी प्रामाणिकता पर विचार कीजिये।
3. पृथ्वीराज रासो से उदाहरण चयन करते हुए सिद्ध कीजिये कवि चंद का चरित्र कथानायक के चरित्र से उज्ज्वल है।

लघुउत्तरात्मक प्रश्न

1. पृथ्वीराज रासो में युद्ध वर्णन की जीवंतता का एक उदाहरण दीजिये।
2. रासो में ऋतु वर्णन का सौन्दर्य (किसी एक ऋतु में) अंकित कीजिये।
3. पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक मानने वाले आलोचकों के नाम लिखिये।
4. रासो को किन समीक्षकों ने अप्रामाणिक ठहराया है।
5. रासो की किन-किन कथाओं को प्रामाणिक माना जा सकता है।

1.8 संदर्भ ग्रंथ

नोट: इकाई 2 के अंत में दिए गए संदर्भ ग्रन्थ इस इकाई के अध्ययन में भी सहायक होंगे।

इकाई-2 चन्दवरदायी के काव्य- का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष इकाई की रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 काव्य-संवेदना

2.2.1 काव्यानुभूति

2.2.2 कविता की मूल्य दृष्टि (कवि की दृष्टि)

2.2.3 पृथ्वीराज रासो में युद्ध और श्रृंगार

2.2.4 पृथ्वीराज रासो -में कथानक रूढ़ियाँ

2.2.5 पृथ्वीराज रासो में प्रकृति

2.2.6 पृथ्वीराज रासो में चरित्र योजना

2.2.7 पृथ्वीराज रासो में जीवन दर्शन

2.3 काव्य-शिल्प

2.3.1 काव्य-रूप

2.3.2 काव्य भाषा और सर्जनात्मकता

2.3.3 पृथ्वीराज रासो में रस-योजना

2.3.4 अलंकार एवं छन्द

2.4 मूल्यांकन

2.5 विचार संदर्भ और शब्दावली

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- वीरगाथा कालीन काव्य की पृष्ठभूमि में चंदवरदायी रचित पृथ्वीराज रासो की काव्य संवेदना से साक्षात्कार कर सकेंगे।
- पृथ्वीराज रासो की कथानक रूढ़ियों, युद्ध एवं श्रृंगार चित्रणों के साथ प्रकृति के विविध रूपों का निदर्शन कर सकेंगे।
- पृथ्वीराज रासो की चरित्र योजना को समझ सकेंगे।
- कवि की अभिव्यक्ति संपदा के स्वाभाविक सौन्दर्य की मार्मिकता से आत्मीय संलाप कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

इकाई एक के अन्तर्गत आप पृथ्वीराज रासो के रचयिता चन्दवरदायी और उनकी कविता के विषय में पढ़ चुके हैं, जिससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाओं में पृथ्वीराज रासो का महत्व सर्वोपरि है। पृथ्वीराज अपने शौर्य और पराक्रम के कारण तथा विदेशी हमलावरों से टकराने के कारण अपनी मृत्यु के बाद एक जातीय पुरूष के रूप में मान्य हो गए और चंद का काव्य पृथ्वीराज रासो धीरे-धीरे चारण और भाटों की संपत्ति बनता गया। चूंकि पूरी कृति दरबारी काव्य परम्परा की प्रशस्ति मूलक रूढ़ियों से भरी पड़ी है, अत: विभिन्न दरबारों से जुड़े चारण तथा भाट अपनी जीविका उपार्जित करने के लक्ष्य से इसे गा-गाकर दरबारों में सुनाने लगे। परिणाम यह हुआ कि चारणों ने अपनी कल्पना से नई-नई घटनाओं और कथानकों के वर्णन भी जोड़े। परिणामत: इसमें प्रक्षिप्त अंश बढ़ते गये और यह विपुलकाय होता गया। विद्वानों का अनुमान है 16वीं-17वीं शताब्दी तक इस कृति ने एक विशाल रूप धारण कर लिया और इसकी प्रामाणिकता विवाद का विषय बन गई। किन्तु ऐतिहासिकता के विवाद को छोड़ यदि विशुद्ध काव्य ग्रंथ के रूप में इस कृति की समीक्षा की जाए तो निःसंदेह इसकी काव्यानुभूति उच्चकोटि की मानी जायेगी। रासो की ऐतिहासिकता को लेकर जितना विचार-विमर्श हुआ है, उतना उसके और किसी पक्ष को लेकर नहीं हुआ। डॉ. विपिन बिहारी त्रिवेदी ने लिखा है - "भले ही कुछ अंशों में अथवा सम्पूर्ण रूप में रासो जाली सिद्ध हो परन्तु प्रकाशित रूप में यह जैसा जो कुछ है, हमारे सामने है, उसकी साहित्यिकता की परख अक्षुण्ण रहेगी।" रासो का सम्यक काव्यात्मक मूल्यांकन होना ही चाहिये। कवि चंदवरदायी ने अपने आश्रयदाता की कृति का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तो किया ही है, आध्यात्म, राजनीति, धर्म, योगशास्त्र, कामशास्त्र, शकुन, नगर, युद्ध, सेना की सज्जा, विवाह, संगीत, नृत्य, फल-फूल, पशु-पक्षी, ऋतु वर्णन, संयोग-वियोग, श्रृंगार, बसंतोत्सव, शास्त्रार्थ आदि सभी का वर्णन किया है। फलत: यह कृति साहित्य और तत्कालीन समाज दोनों की ही चित्रवृतियों का प्रतिबिम्ब है। अपभ्रंश के प्रबंध काव्यों की सभी काव्य रूढ़ियां इसमें मिलती हैं।

रासो का मुख्य विषय नायक की प्रेम लीला, कन्या हरण और शत्रु पराजय था। कवि की कुशलता इस बात में है कि उसने युद्ध का प्रसंग लाकर प्रेम के प्रसंग को और भी गहरा तथा मार्मिक बना दिया है। पृथ्वीराज रासो के काव्य सौन्दर्य पर टिप्पणी करते हुए डा. नामवर सिंह लिखते हैं "आगे चलकर घोर संग्राम में लड़ते हुए अश्वारोही दम्पत्ति की शोभा मन को रोमांचित कर देती है। दाम्पत्य का प्रस्फुटन कर्मक्षेत्र में ही होता है, जहाँ युगल हृदय एक-दूसरे को सहयोग देते हुए परस्पर श्रमशक्ति मुख देखते चलते हैं। इस प्रकार युद्ध और प्रेम के सुंदर समन्वय, युद्धभूमि और मृगया भूमि में सम संचरण के चित्र पृथ्वीराज रासो की काव्यानुभूति को सान्द्र और सघन रूप देती है। परवर्ती उप इकाइयों में आप इस खासियत को विस्तार पूर्वक पढ़ेंगे।

2.2 काव्य संवेदना

2.2.1 काव्यानुभूति

चंद का कवि कौशल भावानुभूति और उसकी सहजानुभूति पर आधारित है। भाषा संवर्द्धन और भाव रूपायन को लेकर चंद की अपार शक्ति रासो के आरम्भ से अंत तक दृष्टिगत होती है। भारतीय आचार्यों ने काव्य के मूल तत्वों पर विचार करते हुए वस्तु को प्रमुख माना है।

शरीर तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावलि:

अर्थात् अर्थ की प्रमुखता काव्य में वस्तु तत्व की प्रमुखता है। काव्य के वस्तु तत्व में विचार भाव और कल्पना, इन तीन तत्वों की प्रधानता रहती है। चन्द के काव्य में वस्तु तत्व में निहित सौन्दर्य पर विचार करते समय इन त्रिगुणात्मक तत्वों को ध्यान में रखकर ही उनकी काव्यानुभूति को समझा जा सकता है। काव्य में विचार ही उसके आकर्षण का बीज है क्योंकि सत्य काव्य जीवन के एक विशेष सुंदर स्वरूप और उदात्त दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। इसमें जीवन के गंभीर मूल्य प्रतिबिम्बित होते हैं। कवि की महत्ता जीवन से संबद्ध विचारों के सशक्त और सुन्दर प्रयोग पर निर्भर है। चंद की कविता में काव्य सौन्दर्य का यही आकर्षक रूप हमें दिखाई पड़ता है।

पृथ्वीराज रासो के वस्तु वर्णन पर टिप्पणी करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं "पृथ्वीराज रासो ऐसी एक रसमय सालंकार युद्धबद्ध कथा थी जिसका मुख्य विषय नायक की प्रेम लीला, कन्याहरण और शत्रु पराजय था।" वस्तुत: पृथ्वीराज रासो का मुख्य विषय यही है। इसमें युद्ध की पृष्ठभूमि में रोमांस का चित्रण किया गया है। चाहे वह इच्छिनी विवाह का प्रसंग हो, शशिव्रता या संयोगिता विवाह का, तीनों ही अवसरों पर राजा युद्ध करके अपनी प्रिया को जीतते या हारते हैं।

कवि की कुशलता इस बात में है कि उसने युद्ध का प्रसंग लाकर प्रेम के प्रसंग को और भी गंभीर तथा मार्मिक बना दिया है। तलवारें चमक रही हैं, घोड़ों और हाथियों की सेना आपस में लड़ रही है। कन्नौज में भयंकर युद्ध चल रहा है लेकिन पृथ्वीराज संयोगिता के महल के नीचे मछलियों को मोती चुगा रहे हैं।

भूलउँ नृप निहि रंग तहिं जुद्ध विरूद्ध सहु
मूँगति मीननु मुत्ति लहंति जु लष्ष दहु।

अर्थात् नृप (पृथ्वीराज) उस रंग (क्रीड़ा) में अपने को और उसी प्रकार जयचंद से विरोध और युद्ध को भूल जाता है। मछलियों के लिए जब वह जल में मोती छोड़ता है तब दस लाख मछलियाँ उनको खाने के लिए दौड़ती हैं।

इधर पृथ्वीराज मछलियों को मोती खिला रहे हैं और उधर जयचंद युद्ध की प्रस्तुति कर रहे हैं -

भूल्लउ रंग नृपति इहि पग चढ्यो हय पुट्ठि।
सुनि सुंदरि वर वज्जने चढ़ी अवासह उट्ठि।।

अर्थात् नृपति (पृथ्वीराज) इस खिलवाड़ में डूबा हुआ था, उधर जयचंद घोड़े की पीठ पर चढ़ा और वह सुंदरी (संयोगिता) बाघों की आवाज सुनकर उठकर आवास (महल) की छत पर चढ़ गयी। संयोगिता और पृथ्वीराज की आँखें मिलती हैं और प्रथम दर्शन में ही दोनों हतप्रभ रह जाते हैं। संयोगिता सोचती है -

जो जंपो तौ चित हर अनजंपै विहरंत।
अहि उट्ठे छुच्छुन्दरी हियै विलग्गी वंति।।

अर्थात् अगर मैं उसका (पृथ्वीराज का) नाम जपूं और उससे बात करूं तो मेरे मन का हरण हो जाएगा और उससे बातें न करूं तो विरह में दग्ध रहूंगी। मेरी गति तो उस सांप की हो गई है जो छछुंदर को पकड़ तो लेता है पर न उससे उसे उगलते बनता है न निगलते।

प्रेम के इस दृश्य के बाद कवि सीधे रणभूमि की ओर मुड़ जाता है और युद्ध की भयंकरता तथा पृथ्वीराज की वीरता का वर्णन करने लगता है।

मोरियं पृथ्वीराज वग्गं।
उट्ठियं रोस आयास लग्गं।
पथ्थ भारिथ्थ भरि होम जग्ग।
वुल्लियं शग्ग शंडु वन लग्गं।

राजा पृथ्वीराज ने जब बाग मोड़ी तो उनका रोष जाग उठा, उसी प्रकार जिस प्रकार महाभारत में अर्जुन का रोष जाग उठा था और उनकी तलवार खांडव वन को दग्ध करने लगी थी।

युद्ध और प्रेम के ऐसे के चित्रों से पृथ्वीराज रासो की काव्यानुभूति निर्मित हुई है।

2.2.2 कविता की मूल्य दृष्टि

पृथ्वीराज रासो में क्षत्रिय शासक पृथ्वीराज के जीवन चरित्र का दिग्दर्शन कराने के कारण भारतीय हिन्दू समाज के क्षत्रिय जीवन और उसके सम्पर्क में आने वाले अन्य सामाजिक अंगों के जीवन से युगीन घटनाचक्रों के प्रवाह में अपने पात्रों को ढालते हुए कवि ने परंपरा से संचित भारत के धर्म-अधर्म, हिंसा-अहिंसा, दया, क्रूरता आदि के विश्वासों को मजबूत करते हुए समाज को आदर्श रूप देने की सफल चेष्टा की है। इसी कार्य में इसकी मूल्य दृष्टि निहित है।

चन्दवरदायी का पृथ्वीराज रासो पारम्परिक पैटर्न को ग्रहण करते हुए भी अपनी समग्रता में मौलिक है। मंगलाचरण, सज्जन-दुर्जन, प्रशंसा-निंदा, नख-शिख वर्णन, अलंकार-विधान, अप्रस्तुत योजना आदि परम्परा गृहीत है किन्तु उनका विनियोजन सर्वथा नवीन है। इसे न श्रृंगार गाथा कह सकते हैं, न ही वीर गाथा और न तो उनका मिश्रण ही। यदि चंद के कथन पर दृष्टि केन्द्रित करें-

"राजनीति पाइयै। ग्यान पाइयै सु जानिय।।
उकति जगति पाइयै। अरथ घटि बढ़ि उनमानिय।।"

तो इसे एक राजनीतिक महाकाव्य अथवा राजनीति की महाकाव्यात्मक त्रासदी कहा जा सकता है। इस छंद में "उकति" और "जुगति" शब्दों का प्रयोग राजनीति की उपलब्धि के लिए किया गया है। इस राजनीति के दो किनारे हैं - पहला है बाहरी हमलावरों के साथ युद्ध और दूसरा है आंतरिक विघटन का सामना। रासो की केन्द्रीय वस्तु युद्ध है जिसका विलास से घना रिश्ता है। कवि एक अन्य स्थान पर कहता है -

"उक्ति धर्म विशालस्य। राजनीति नवरसम्।
शट भाषा पुराणम च। कुरानम कथितं मया।।

जाहिर है नवरस, उक्ति, भाषा सभी राजनीति के इर्द-गिर्द घूमती है। रासो के अलंकारों की विवेचना के संदर्भ में हमने एक और उदाहरण दिया है जो चंदवरदायी के काव्य का सही रूप हमारे सामने रखता है। जबकि चंद कहते हैं - 'राजनीति रूपी जहाज काव्य रूपी सागर से सफलतापूर्वक पार उतरने वाला यान है। तत्कालीन राजनीति एवं समाज के चित्रण में कवि की दृष्टि ने सदा सजगता का परिचय दिया है। इस इकाई की विभिन्न उप इकाइयों में चंद की मूल्य दृष्टि का आप विशुद्ध निदर्शन करेंगे।

2.2.3 पृथ्वीराज रासो में युद्ध और श्रृंगार

रासो की मुख्य प्रवृत्ति वीरगाथात्मक है। इस वीर वृत्ति के साथ श्रृंगारी-वृत्ति भी अविभाज्य रूप में जुड़ी हुई है। कथानकों में तारतम्य या पूर्ण क्रम न होने पर भी, इसी तरह प्रसंगों में विविधता होने पर भी सर्वत्र वीरगाथात्मक रूप का निर्वाह होना दिखलाई देता है। वीरता का संबंध और वीरता की प्रवृत्ति कथा नायक पृथ्वीराज में ही नहीं अपितु नायक से संबंधित सामन्तों तथा नायिकाओं में भी दिखलाई देती है। रसों तथा छंदों के उदाहरणों में इस विशेषता को उप इकाई में दिया गया है। वीर वृत्ति जीवन में घुली मिली पात्रों के रक्त में संचरित प्रतीत होती है। इस वृत्ति की प्रधानता के कारण युद्धोन्माद को रासो में अपेक्षाकृत अधिक स्थान दिया गया है। युद्ध का कारण इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना युद्ध स्वयं अपने आप में महत्वपूर्ण है। युद्धों के कारणों का यदि विश्लेषण करें और उनकी यथार्थताओं पर दृष्टि डालें तो अनेक ऐसे मनोरंजक तथ्य सामने आयेंगे जो देश की अनेक ऐतिहासिक भूलों का परिचय देंगे। रासो के कथानक में युद्ध, विवाह और मृगया के प्रसंग प्रधान रूप से पाये जाते हैं।

युद्ध और विलास सामंती जीवन के अविच्छिन्न अंश हैं। इनके साथ वैयक्तिक शौर्य भी घुलामिला है। यदि युद्ध और शौर्य ताना है तो विलास बाना। इन्हीं ताने बाने से बुना गया है रासो। इसकी बुनावट को समझना रासो को समझना है।

इसलिए कन्ह और कयमास की जो कथाएँ हाशिए पर रखी जाती थीं उन्हें रासो की मुख्य धारा से जोड़ना होगा। क्योंकि कभी कभी हाशिया ही मुख्य धारा बन जाता है। रासो की बुनावट समझने के लिए ये दो कहानियाँ संक्षेप में जान लें तो सहूलियत होगी।

कन्ह पृथ्वीराज के सामंतों में से एक था। भीमदेव चालुक्य का भाई पृथ्वीराज के दरबार में रहता था। कन्ह के सामने उसने अपनी मूँछों पर ताव दे दिया। कन्ह जैसे सामंत के

सामने भला एक साधारण दरबारी यह करने की जुर्रत कर सकता था। कन्ह ने म्यान से चमचमाती तलवार निकाली और सिर धड़ से अलग कर दिया पृथ्वीराज ने उसे हल्की सी सजा दी और उसकी आखों पर पट्टी बांध दी। भीमदेव चालुक्य इसी से पृथ्वीराज का कट्टर दुश्मन बन गया। पृथ्वीराज का एक और वफादार सामंत एक करनाटी दासी पर अनुरक्त था। इस छोटे से अपराध पर पृथ्वीराज ने -निर्ममतापूर्वक उसका वध कर दिया। ये दोनों घटनाएँ थोथी खोखली आन बान और नैतिकता की सूचक है। ये घटनाएँ गोरी के कारागार में पृथ्वीराज के पश्चाताप से जुड़कर तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य को पूर्णत: प्रकट कर देती हैं और रासो की संरचना में रचबस कर उसे सम्पूर्ण बनाती है।

विलास के अभाव में सामंत सामंत नहीं रहता। यही उसकी शान और आन बान है। पृथ्वीराज स्वयं कम विलासी नहीं है। किंतु उसका विलास विवाहित पत्नियों की सीमा में बंधा हुआ है। कभी कभी पत्नियों के प्रति अतिशय अनुरक्ति राजा के अन्य महत्वपूर्ण दायित्वों में बाधक हो सकती है किंतु उसे असामाजिक नहीं कहा जा सकता। इच्छिनी, शशिव्रता और संयोगिता के विवाह वर्णन में न तो पुनरुक्ति है न बासीपन, तीनों में रूपवैविध्य है। इच्छिनी का विवाह पिता द्वारा निश्चित किया हुआ, शशिव्रता का पूर्वानुराग जन्य तथा संयोगिता का स्वयंवर विवाह है। इसलिए इनकी संरचना में ऊब का दर्शन नहीं होता। यहीं पर सामंती जकड़न के प्रति नारियों का विद्रोह भी है। संयोगिता का कथन उल्लेख्य है-

"कई बई गंगई, संचरिय कई दृश्य गहई प्रिथिरज।"

अर्थात् या तो मैं गंगा में वह कर समाप्त हो जाऊँ या पृथ्वीराज का हाथ पकड़ लूं। अत: इन विवाहों में रोमांटिकता का स्पर्श भी हो जाता है। खजुराहों के मंदिरों का निर्माण और भी पहले शुरू हो गया था। कला का यह चरमोत्कर्ष और काम कला की आत्यंतिकता अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगी। उद्देश्यहीन कला अपने रूपायन में चाहे जिस ऊँचाई पर स्थिर हो, उसकी परिणति विकृतिमूलक ही होगी। रासो में विलास की यह आत्यंतिक स्थिति नहीं है।

पृथ्वीराज की विलासिता दो स्थानों में दिखाई देती है। संयोगिता वर्णन के पूर्व ऋतु वर्णन में और गोरी के आक्रमण के समय महाजनों द्वारा राजा को सूचित करने के असमंजस में। राजा ऐसा रसिक है कि जिस रानी से आज्ञा लेने जाता है, वही दो महीने ठहर जाता है। अंत में चंद ऋतु के श्लेषार्थ से उसे मुक्ति का उपाय सुझाता है। संयोगिता जैसी अपरूप रानी को पाकर वह विलास में ऐसा डूबता है कि गोरी के आक्रमण की उसे सूचना तक नहीं मिलती। उसे कौन बताये, कार्य कठिन था, चंद सोचता है -

"गोरी रत्तउ तुअ धरा, तू गोरी अनुरत्त"

अर्थात् मुहम्मद गोरी को तुम्हारी धरती से प्यार हो गया है और तुम गोरियों के प्यार में डूबे हुए हो। महाजन इकट्ठे होते हैं। आपस में सलाह करते हैं। निर्णय पर पहुंचते हैं-

"किम बुज्झे रतिवंती राजन्" - यहाँ "रतिवंती" शब्द पूरे सामन्त वर्ग की दैनन्दिनी को खोलकर सामने रख देता है। यही नहीं, इसके पीछे चंद का एक राजनीतिक दृष्टिकोण भी है। कहीं जबरदस्त हमलावर गोरी और कहीं, विलास में डूबे पृथ्वीराज। काव्य के अंत में कामोत्सव की याद के साथ कन्ह कयमास आदि भी पृथ्वीराज को स्मरण हो आते हैं और सारा महाकाव्य एक त्रासदी में बदल जाता है। इस त्रासदी को समझना ही "राजनीति बोहित" को पाना है। महाकाव्य की त्रासदी राजनीति की फलश्रुति और राजनीति की त्रासदी महाकाव्य की फलश्रुति है। पृथ्वीराज के पश्चाताप की पंक्तियाँ देखें-

परयो बंधन गज्जनै मेघ तथ्यं।
बिचारै करी अप्प करतूति पिथ्थं।।
हन्यो दासिये हेतु कैमास बानं।
गज सून चामंडबेरी भरानं।
बंधे कन्ह काका चषं पट्ट गाढ़े।
बिना दोस पुंडीर से भ्रत्त काढ़े।
बरज्जंत चंद चल्यों हूं कन्नौजं।
तथा मूर सामंत कटि घंट्टि फौज।
लिये राजकोक रमंतं सिकारं
भ्रम के हरी कंदरा रिघ जार
निराधार आधार करतार तू हीं
बन्यो संकट मो लीन सो ही
कली कट्ट मंगाय वृंदावनी को
संभालों नहीं तो कताओ धनी को?

"निराधार आधार करतार तू हीं" पंक्ति त्रासदी को और गंभीर बना देती है। यहाँ कोई भक्तिकालीन करतार नहीं बल्कि खालिस उदासी की अंतिम शरणगाह है। समग्र महाकाव्य के भीतर से पृथ्वीराज की त्रासदी के साथ एक सामाजिक राजनीतिक त्रासदी भी उभरती है जो जितनी पृथ्वीराज की है उससे कहीं अधिक राष्ट्र की है। यहीं से देश की दीर्घकालीन त्रासदी की शुरूआत होती है। यद्पि आखिर में कविपुत्र ने इसे सुखाना बनाने की कोशिश की है पर एक भोड़े जोड़ से अधिक और कुछ भी नहीं है। यह छंद मात्र ग्रंथ को सुखान्तक दिखाने के प्रयास में जोड़ा गया है। उदाहरण नीचे दिया जा रहा है -

मरन चंद वरदाई। राजपुनि सुनिग साहि हनि।
पुहपंजलि असमान। सीस घोड़ी सु देवर्तान
मेघ अवंछित धरनि। धरनि सब तीय सोह सिग
तिनहि तिनह संजोति। जोति जोतिह संपातिग
रासो असंभ नव रस सरस चंद छंद किय अनिय सम।
श्रृंगार वीर करूणा विभछ। भय अद्भुत हसंत सम

कथानक रूढ़ियों के सहारे ही इस विराट ऐतिहासिक क्लासिक को मिथकीय ढाँचे में तत्कालीन लोक विश्वासों के अनुरूप लिखा गया है।

2.2.4 पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियाँ

यद्पि पृथ्वीराज रासो का मूल कथानक ऐतिहासिक है, तथापि उसमें मध्यकालीन कथानक रूढ़ियों की भरमार है। यदि इन कथानक रूढ़ियों को मान लिया जाता तो कथानक की ऐतिहासिकता अपने आप समाप्त हो गई होती। डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रासो की ऐतिहासिकता को लेकर उठाये गये प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा है - "ऐतिहासिक चरित्र का लेख संभावनाओं पर अधिक बल देता है। संभावनाओं पर बल देने के परिणाम स्वरूप हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय बहुत दीर्घ काल से व्यवहूत होते आये हैं, जो बहुत थोड़ी दूर तक, यथार्थ है। परन्तु आगे चलकर कथानक रूढ़ि में बदल गये है। इस विषय में ऐतिहासिक और निजंधरी कथानकों में विशेष भेद नहीं किया गया। केवल इसी बात का ध्यान रखा गया है कि संभावना क्या है? चित्तौड़ के राजा से सिंहल देश की राजपुत्री का विवाह हुआ था या नहीं, इस ऐतिहासिक तथ्य से कवि को कुछ लेना देना नहीं है, हुआ हो तो बहुत अच्छी बात है, न हुआ हो तो होने की संभावना तो है ही। राजा से राजकुमारी का विवाह नहीं होगा तो किससे होगा। शुक नामक पक्षी थोड़ा बहुत मानव वाणी का अनुकरण कर लेता है और अधिक भी कर सकता है। ऋषि के वरदान से वह शक्ति बढ़ सकती है, ऋषि के श्राप से पतित गंधर्व यदि सुआ हो गया हो तो पुनर्जन्म के संस्कार उसको कला मर्मज्ञ बना ही सकते हैं, जब ये संभावनाएँ हैं तो क्यों न उसे सकल शास्त्र विलक्षण सिद्ध कर दिया जाये, इस प्रकार संभावना पक्ष पर जोर देने के कारण बहुत सी कथानक रूढ़ियाँ इस देश में चल पड़ी हैं। द्विवेदी जी ने जिन इक्कीस कथानक रूढ़ियों का उल्लेख किया है, उनमें से कई पृथ्वीराज रासो में मिलती हैं।

रासो के पद्मावती समय के संबंध में द्विवेदी जी ने जो तर्क प्रस्तुत किये हैं, वे काफी मनोरंजक है। इस संबंध में लिखा गया है - "यह विश्वास किया जाता था कि सिंहल में पद्मिनी नारियाँ हुआ करती थी जिनके शरीर से पद्म की सुगंध निकलती रहती थी और जो उत्तम जाति की स्त्री मानी जाती रही हैं, यही कहानी पद्मावत में भी है। शुकशुकी संवाद, जादू टोने का प्रभाव, चित्र दर्शन, स्वप्न में भविष्य का आभास होना, गंधर्व विवाह आदि कथानक रूढ़ियां पृथ्वीराज रासो में उपलख होती हैं। इसी तरह विशेष ऋतुओं में विशेष प्रकार के मनोभाव, सरस्वती का सिद्ध होना, स्वप्न में देवी देवताओं का आना और घटनाओं का पूर्वाभास करा जाना पृथ्वीराज रासो में यत्र तत्र उपलब्ध होता है। इन रूढ़ियों के बारे में प्राय: सभी कवियों में एक समझौता जैसा दिखाई पड़ता है। इसी के कारण प्राय: वर्णनों में समरूपता पायी जाती है। इसी के कारण युद्ध भूमि में भयंकर वेश वाले योगिनी-डाकिनी, भूत-प्रेत, पिशाच-भैरव आदि के नृत्य और किलकारियां तथा कबंधों का दौड़ना, आग डालने वाले राक्षसों का अचानक उद्भव और

हर्ष, उल्लास के अवसर पर आकाश मार्ग से पुष्पवृष्टि, चकवा-चकवी चांद-चकोर आदि के प्रचुर उदाहरण उपलब्ध होते हैं। अंग्रेजी में मोटिफ शब्द कथानक रूढ़ियों के समानान्तर है जिसका प्रयोग पुराने महाकाव्यों में मिलता है। कथानक रूढ़ियों की दृष्टि से चंद का काव्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। बाद में जिन लोगों ने इसमें प्रक्षेप किया, वे कवि के इस कौशल और प्रवृत्ति को अच्छी तरह पहचानते थे। फलत: उन्होंने भी चुन-चुनकर कथानक रूढ़ियों और काव्य रूढ़ियों का सन्निवेश किया।

साधारण: भारतीय कथाओं में कथानक को निर्दिष्ट दिशा में मोड़ने के लिए निम्नलिखित कथानक रूढ़ियों का व्यवहार मिलता है।

1. सपने में प्रिय मूर्ति का दर्शन
2. कहानी सुनाने वाला सुआ
3. मृगया के लिए गये हुए घोड़े का बीच जंगल में रास्ता भूल जाना।
4. मुनि द्वारा शाप
5. रूप का परिवर्तन
6. लिंग परिवर्तन
7. परकाया प्रवेश
8. आकाशवाणी
9. अभिज्ञान या साहिदानी (किसी वस्तु का बोध होना)
10. दासी का राजा से प्रेम और उसका राजकन्या रूप में अभिज्ञान।
11. नायिका का चित्र।
12. नायक का औदार्य
13. विरह-वेदना।
14. गुप्त प्रेम, अपहरण और फिर विवाह
15. नट-नटी, भिक्षुक या बंदी द्वारा रूप के बारे में श्रवण और प्रेम
16. हंस या कपोत का संदेशवाहक होना
17. अरण्य में सुंदरियों से साक्षात्कार
18. एक उजड़े हुए शहर का हठात् मिल जाना और नायक का वहाँ का राजा बन जाना।
19. शत्रु द्वारा संतापित सरदार की प्रिया को शरण देना और युद्ध मोल लेना।
20. अति प्राकृत दृश्य से लक्ष्मी प्राप्ति का शकुन।
21. युद्ध करके या मस्त हाथी के आक्रमण से या कापालिक की बलिवेदी से स्त्री का उद्धार और प्रेम आदि-आदि।

लगभग इन सभी कथानक रूढ़ियों का प्रयोग पृथ्वीराज रासो में किया गया है। प्रत्येक महत्वपूर्ण विवाह के समय नट का, नर्तकी का, स्वप्न दर्शन का, चित्र दर्शन का, हंस दूत या शुक दूत का उपयोग किया गया है। शशिव्रता और संयोगिता दोनों मुख्य रानियों को अप्सरा का अवतार बताया गया है। प्रत्येक विवाह में चाहे पहले या बाद में युद्ध का प्रसंग अवश्य आता है और प्राचीन निजंधरी कथाओं के समान कन्या हरण

प्रधान रूप से वर्णित हुआ है। चाहे प्रकृति की हो या मनुष्य की उन्हें परम्परा प्रचलित रूढ़ उपमानों के सहारे ही निखारा गया है और इन्हीं के माध्यम से अधीनस्थ सामंतों की स्वामीभक्ति और पराक्रम को अत्यंत उज्ज्वल रूप में प्रकट किया गया है।

2.2.5 पृथ्वीराज रासो में प्रकृति

मानव और प्रकृति का संबंध उतना हीं प्राचीन है, जितना सृष्टि के उद्भव और विकास के इतिहास का। प्रकृति के अद्भुत क्रिया-कलापों से मानव मन की भावनाएँ स्फुरित हुई और आदि कविता का जन्म हुआ। प्रकृति सदा से कवियों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत ही नहीं, सौंदर्य का अक्षय भण्डार, कल्पना का विस्मयकारी लोक, अनुभूति का अगाध सागर तथा विचारों की अटूट शृंखला भी रही है। काव्य में प्रकृति के प्रयोग विविधरूपा होते हैं। जिनमें मुख्य है (1) आलम्बन रूप में (2) उद्दीपन रूप में (3) मानवीकरण के रूप में (4) पृष्ठभूमि के रूप में (5) प्रतीकात्मक रूप में तथा (6) दूतिका के रूप में। पृथ्वीराज रासो में प्रकृति इन सभी रूपों में चित्रित हुई है। खासकर षटऋतु वर्णन और युद्ध की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का अत्यंत प्रभावकारी चित्रण हुआ है। सुबह, शाम, दोपहर, नदी, समुद्र, उपवन, सरोवर आदि के विशद वर्णन में कवि को महारत हासिल है। हिंदू सेना के वर्णन के लिए वर्षा ऋतु से उसकी उपमा का सौन्दर्य देखते ही बनता है।

झरि पास सिर वर प्राहारं। बरसत रूद्धि घट छिछ्वारं।।
शग विज्जुल जोगिनि सिरघाट। बग्गी सौ जंबू-परिवारं।।
कटि टूक करे जिनके किरयं। मनौ इंद्रबधू धरमे रचयं।
झमक्कै सशग्गीन शग्गनि बजे। मुनि बछति झिंगुर सछ लजै।
लपटाई सुसोकिय वेल तरं। पर रंभन रंभन रंभ बरं।।
अकुरी बढ़ि बेलि सुबीर वट। बढ़िपाव पावस झार झरं।

पृथ्वीराज रासो में रस योजना तथा उसके महाकाव्यत्व के संदर्भ में प्रकृति वर्णन के अनेक उदाहरण अपने अध्ययन में शामिल करते हुए आप रासो के प्रकृति चित्रण पर एक व्यापक दृष्टि अपना सकेंगे।

2.2.6 पृथ्वीराज रासो में चरित्र योजना

रासो का नायक पृथ्वीराज चौहान है। इस नायक के ऐतिहासिक वृत्त से वाकिफ होना, कवि के लिए चिंता का विषय नहीं है। वह हिन्दू सम्राट है, शूरवीर है, अजमेर और दिल्ली का शासक है अनेक हिन्दू राजे-राजवाडों के अतिरिक्त शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी से भी उसके कई युद्ध होते हैं, कई बार वह गोरी को पराजित करता है, कई बार क्षमा दान करता है। अंततः गोरी उसे परास्त करता है, बंदी बना कर अपने देश ले जाता है, इस प्रकार दिल्ली में पृथ्वीराज की सत्ता का समापन होता है। इतिहास का यह कथानक कवि के लिए पर्याप्त है। संयोगिता स्वयंवर तथा जयचंद के साथ युद्ध, चंदेलों के साथ युद्ध, कयमास वध प्रकरण आदि नाम मात्र के लिए ऐतिहासिक हो सकते हैं,

इनकी ऐतिहासिकता की चिंता कवि को नहीं है। कथानक का आरम्भ जरूर ऐतिहासिक यथार्थ से होता है

लेकिन आगे चलकर वह कवि की संभावनाओं का अंग हो जाता है तथा कवि की कल्पना पंख पसारकर उड़ने लगती है जिसमें कथानक रूढ़ियां, काव्य रूढ़ियां गति देती है। इस दृष्टि से पृथ्वीराज रासो का नायक, ऐतिहासिक नायक न हो, कवि कल्पनाओं का तदनुकूल काव्य की मान्यताओं का नायक हो गया है। 'साहित्य दर्पण में महाकाव्य के नायक की निम्नलिखित विशेषताएं बतलाई गई है।

सर्गबन्धो महाकाव्य तत्रैको नायक: सुर:।

सद्वंश: क्षत्रियो वापि धीरोदत्त गुणान्वित:।

एक वंश भवा आ: कुलजा बहवोडपिवा।

अर्थात् जिसमें सर्गों का निबंधन हो वह महाकाव्य कहलाता है। इसमें एक देवता या सद्वंश क्षत्रिय जिसमें धीरोदात्तवादि गुण हो नायक होता है। कहीं एक वंश के सत्कुलीन अनेक भूप भी नायक होते हैं। - (कालिदास के रघुवंश के नायक इसी प्रकार के हैं) पृथ्वीराज चौहान क्षत्रिय तथा सद्वंशीय नायक है और धीरोदात्त है। धीरोदात्त नायक के गुण साहित्य दर्पण में इस प्रकार व्याख्यायित हैं -

अविकत्थन: क्षमावान ति गंभीरो महासत्व:।

स्थेयान्नि गूढ़भानो धीरोदात्तो दृढवत:।।

अर्थात् अपनी प्रशंसा न करने वाला, क्षमाशील, अति गंभीर स्वभाव वाला, महासत्व अर्थात् हर्ष शोकादि से अपने स्वभाव को नहीं बदलने वाला स्थिर प्रकृति, विनय से प्रच्छन्न गर्व रखने वाला और दृढव्रती अपनी बात का पक्का और आन का पूरा पुरुष धीरोदात्त कहलाता है। पृथ्वीराज चौहान सदवंशीय क्षत्रिय राजा है। ऐतिहासिक पात्र है। नायक होने योग्य है। काव्य का नायक होने के लिए काव्य विधान की दृष्टि से जो कमियाँ रह गई हैं, उन्हें अपनी कल्पना के सहारे पूरी करते हुए कवि ने नायक को ऐतिहासिक नायक की तुलना में काव्य-रूढ़ियों का नायक बना लिया है। पृथ्वीराज चौहान का जो जीवन वृत्त रासो में चित्रित है, वह काव्य के लिए आवश्यक माने गये नायक के जीवन के अनुरूप है। रासो के रचयिता ने अपने से पूर्व रचित अनेक काव्य ग्रंथों का अध्ययन किया है और उस अध्ययन के फलस्वरूप नायक के प्रति जो आदर्श प्रतिमान (काव्य प्रतिमान) उसके मस्तिष्क में बने हैं, उन प्रतिमानों का उपयोग कवि ने खुलकर किया है। इसी परम्परा में 'पृथ्वीराज रासो में काव्य का नायक ऐतिहासिक कम और काव्य नायक अधिक है। सर्वत्र नायक के जीवन में तारतम्य न पाया जाना यह भी संकेतित करता है कि रासो एक समय में एक कवि के द्वारा लिखा गया काव्य न हो प्रक्षिप्त अंशों का समुच्चय है।

रासो के वृहत् संस्करण वाले उपलब्ध स्वरूप को देखते हुए इसे क्लासिक काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। रासो की काव्य पद्धति, (शैली) काव्य का प्रयोजन, काव्य का नायक, सर्गबद्ध रचना (समय प्रस्तावों में), इतिहास से उद्धृत कथानक आदि कुछ ऐसे

तत्व है, जिनके आधार पर रासो महाकाव्य होते हुए भी हिंदी का 'क्लासिक काव्य' कहलाने का गौरव प्राप्त कर सकता है। चंद ने अपने से पूर्व लिखे गये क्लासिक काव्यों का अध्ययन किया है, इनमें प्राय: सभी संस्कृत कवि हैं, काव्य के प्रारंभ में कवि द्वारा महर्षि व्यास, हर्ष, कालिदास, दंडमाली तथा जयदेव का उल्लेख किया गया है, जिससे सहज अनुमेय है कि संस्कृत के इन क्लासिक काव्यों की छाया रासो पर है। कवि चंद ने रासो को इन काव्यों का उचिएटी कहा है।

(उदाहरण कवि परिचय में देखें) रासो को केवल शैली के आधार पर ही नहीं, विषय वस्तु के आधार पर भी क्लासिक काव्य कह सकते हैं। क्लासिक काव्य की व्याख्या करते हुए डॉ. देवराज लिखते हैं "अतीत साहित्य को हम इसलिए पढ़ते हैं कि वह आज भी हमारे जीवन स्पंदन को वेगपूर्ण एवं समृद्ध बनाने की क्षमता रखता है। आज भी वह यथार्थ की अर्थवती छवियों में हमारी चेतना का प्रसार करता हुआ हमारे व्यक्तित्व को अधिक सचेत रसमय तथा सृजनशील बनाता है। जिस साहित्य की यह क्षमता इतिहास के वर्तमान समय बिन्दु तक विशेष नहीं हुई है, वह क्लासिकल काव्य है। प्रत्येक युग मानव चेतना या व्यक्तित्व को एक सीमा तक समृद्ध करके छोड़ देता है। जिन तत्वों द्वारा उस चेतना या व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है, उनके समस्त संभव संगठन या संव्यूहन उस युग के मनीषियों की रचनाओं में उपलब्ध हो जाते हैं। विभिन्न कोटियों के नायक नायिकाओं की परिकल्पना या निर्माण में युग-विशेष के कलाकार अपने समय के सम्पूर्ण सौन्दर्य बोध अथवा संश्लिष्ट मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक सामाजिक बोध को चरितार्थ कर देते हैं।

क्लासिकल साहित्य की दृष्टि से अर्थात् काव्य गुणों की दृष्टि से जो अपने आप में युग विशेष की परंपरा तथा सांस्कृतिक बोध को आबद्ध किए हुए है - रासो का अध्ययन अभी भी बाकी है। रासो के काव्य रूप के अध्ययन किए जाने में इतिहास बोध आड़े आता रहा है। मत मतान्तरों की भूलभुलैया से निकल काव्य रूप में रासो का अध्ययन किया जाए तो रासो निस्संदेह क्लासिकल काव्य के रूप में पढ़ा जाने लगेगा। विषय वस्तु की दृष्टि से पृथ्वीराज चौहान से संबंधित ऐतिहासिक कथानक व्यक्ति विशेष का कथानक न रहकर युग विशेष का कथानक प्रतीत होता है जो अपने सांस्कृतिक मानदण्डों से युक्त है। इसके साथ इकाई एक में चित्रित कवि व्यक्तित्व एवं युद्ध एवं श्रृंगार के वर्णनों में जो चरित्र उभरकर आये हैं, उनका अध्ययन भी अभीष्ट है।

पृथ्वीराज रासो में स्त्री प्राय: सामंतवादी दृष्टिकोण के साथ ही चित्रित हुई है। वह अपने यौवन और सौन्दर्य की प्रसिद्धि के बल पर किसी नरेश या राजकुमार के प्रलोभन की वस्तु बन जाती है। वह किसी प्रकार युद्ध या बलात् अपहरण द्वारा प्राप्त की जाती है। रंगमहलों में पहुंचकर उसका जीवन सामंत की इच्छाओं का अनुवर्ती बन जाता है। इन सामंत पत्नियों के लिए नारी का मूल्य तलवार के एक वार से अधिक नहीं है।

2.2.7 पृथ्वीराज रासो में जीवन दर्शन

हम पहले भी बता चुके हैं कि 'पृथ्वीराज रासो में युगीन परिदृश्य और समाज को बड़े ही जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है। चंद ने युग के घटनाचक्र की गति में, अपने पात्रों को गूँथते हुए परंपरा से संचित, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, हिंसा-अहिंसा, दान-कृपणता, दया-क्रूरता, पतिव्रत, स्वच्छता आदि के विश्वासों को दृढ़तर करते हुए समाज को आदर्श रूप देने की सार्थक कोशिश की है। चिर पोषित मानवीय मनोवृत्ति, अतिथि सत्कार और शरणागत की रक्षा का चित्रण पूरी प्रतिष्ठा के साथ रासो में मिलता है। स्वामिधर्म का व्रत दिखाने के फलस्वरूप अर्थात् स्वामी के लिए समस्त ऐछिक प्रलोभनों का त्याग ताकि अपने अन्नदाता स्वामी के नमक की अदायगी में अपने अमूल्य प्राणों की बलि दिखाते हुए कवि ने वफादारी का स्वर बुलंद किया है। रासो में यत्र तत्र पितृ वत्सलता का चित्रण भी मिलता है। स्वर्ग की हकीकत सबको मालूम है लेकिन शूरवीर युद्धों में वीरतापूर्वक बलिदान के बाद स्वर्ग की प्राप्ति की कल्पना से कभी शत्रु को पीठ नहीं दिखाते। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं कि चंदवरदायी की प्रसिद्धि भी आज उसी रूप में मान्य है जैसी वाल्मीकि और व्यास की है वाल्मीकि राम के समकालीन रहे, व्यास महाभारत के। ये दोनों महाकाव्य और उनके रचयिता अविच्छिन्न रूप में जुड़े हैं। इनके रचनाकार अपनी अपनी रचनाओं के काव्य से संबद्ध ही नहीं वे स्वयं अपने अपने काव्य में पात्र भी रहे हैं। इन कवियों ने अपने अपने काव्य के भीतर अपने युग को सम्पूर्ण रूप में इतिहास, दर्शन, धर्म, सभ्यता, संस्कृति आदि दृष्टि से अवतरित किया है। ये कवि युग द्रष्टा तथा युग स्रष्टा दोनों रहे हैं। चंदवरदायी भी इसी कोटि के कवि है। उनके जीवन दर्शन से युग दर्शन जुड़ा हुआ है। इसी उदारमना कवि ने उस व्याघातों के युग में भी प्रत्येक प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में जातीय एकता और हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय की चेष्टा की। भारतीय धर्म ग्रन्थों के साथ कुरान को भी स्मरण करना इसका संकेतक तो है ही रासो में विदेशी शब्दों के भाषिक प्रयोगों से भी यह स्पष्ट है। दुश्मन गोरी के लिए भी खासकर उसकी वीरता के लिए सम्मान सूचक शब्दों का प्रयोग, मुस्लिम तथा हिन्दू वीरों का मृत्यु के बाद एक साथ स्वर्ग अथवा जन्नत पहुंचना हूरों तथा अप्सराओं द्वारा उनका अभिनन्दन, पृथ्वीराज के बन्दी बना लिए जाने के बाद क्षत्रियों को संगठित होने का संदेश आदि उनके उदात्त जीवन दर्शन के परिचायक हैं।

2.3 काव्य शिल्प

काव्य शिल्प के अन्तर्गत रासो काव्य के भाषा वैविध्य, रासो, अलंकारों एवं छंदों का विवेचन किया जाएगा। रासो काव्य के काव्य शिल्प की विवेचना के बाद आपको स्वयं अनुभव हो जाएगा कि हम ऐतिहासिकता, प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के द्वन्द्व से ऊपर उठकर यदि रासो का अध्ययन करें तो कितना उचित होगा।

2.3.1 काव्य रूप

हिन्दी साहित्य में रासो काव्य की दो भिन्न ढंग की परम्पराएं अपभ्रंश काल से ही मिलने लगती है :- पहली है नृत्य-गीतपरक रासो काव्य परंपरा - जिसके अंतर्गत अनेक रचनाएं हैं, जिनमें प्रमुख है - बीसलदेव रासो, जिनदत्त सूरि उपदेश रसायन', धर्म सूरि जम्बू स्वामी रासा और शालिभद्र सूरि की भरतेश्वर बाहुबलि रास। दूसरी परम्परा वैविध्यपरक कहलाती है जिसके अन्तर्गत मुंजरास संदेश रासक, हम्मीर रासो और पृथ्वीराज रासो आते हैं। पृथ्वीराज रासो एक प्रशस्ति काव्य है जिसमें प्रबन्ध काव्य की महाकाव्यात्मकता पूरी तरह मिलती है। एक कथात्मक इतिवृत्त के साथ इसमें आए नीतिपरक दोहों को अलग से भी पढ़ा जा सकता है।

रासो में प्रयुक्त काव्य-शैलियों पर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नये काव्य-रूपों की उद्भावना की मीमांसा करते हुए कहा है - "जब-जब कोई जाति नवीन जातियों के सम्पर्क में आती है तब-तब उसमें नई प्रवृत्तियाँ आती हैं' नई आचार-परम्परा का प्रचलन होता है। नये काव्यरूपों की उद्भावना होती है और नये छंद में जन-चित्त मुखर हो उठता है। इस दृष्टि से रासो के छंद विविध प्रकार की काव्य शैलियों के परिचायक हैं। काव्य के आरंभ में कवि ने जो स्वीकारोक्ति दी है उससे इस बात का बोध होता है कि वह शास्त्र सम्मत रचना लिखने के पक्ष में है लेकिन शास्त्रीय बोध के उस पर हावी रहने के बावजूद उसने अनेक नवीन प्रयोग किये हैं। इस दिशा में सबसे पहले रासो के महाकाव्यत्व पर विचार किया जा रहा है।

महाकाव्यत्व - प्रबन्ध और निर्बन्ध श्रव्य काव्य के दो भेद माने गये हैं। पूर्वापर से संबंध रखने वाला प्रबन्ध और इस तारतम्य से सम्पर्क न रखने वाला मुक्तक कहलाता है। जीवन की अनेकरूपता दिखाने वाला या समग्र रूप में उसका चित्रण करने वाला दीर्घ कथानक युक्त विपुलकाय काव्य महाकाव्य कहलाता है। 14वीं शती के कविराज विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा दिये गये लक्षणों को ध्यान में रखते हुए महाकाव्य के जो लक्षण बताये हैं, वे निम्नलिखित हैं :-

i) महाकाव्य में सर्गों का निबन्धन होता है।
ii) इसका नायक देवता या धीरोदात्त गुणों से समन्वित कोई सद्वंशी क्षत्रिय होता है।
iii) श्रृंगार, वीर या शांत में से कोई एक रस अंगी होता है तथा अन्य रस गौण होते हैं।
iv) नाटक की सभी संधियां रहती हैं।
v) कथा ऐतिहासिक या लोक प्रसिद्ध सज्जन से संबंधित होती है।
vi) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से एक उसका फल होता है।
vii) प्रारम्भ में आशीर्वचन नमस्कार या वर्ण्य वस्तु का निर्देश होता है।
viii) कहीं खेलों की निंदा और सज्जनों का गुणानुवाद रहता है।
ix) इसमें न बहुत बड़े, न बहुत छोटे आठ से अधिक सर्ग होते हैं।

x) इन सर्गों में प्रत्येक में एक छंद अवश्य होता है। सर्ग का अन्तिम पद्य भिन्न छंद में होता है, कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छंद भी मिलते हैं।

xi) सर्ग के अन्त में आगामी कथा की सूचना होनी चाहिये।

xii) इसमें संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रातःकाल, दोपहर, शिकार, पर्वत, ऋतु वन, सागर, नदी, अंधकार, संयोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग नरक, रण, मंत्र आदि का सांगोपांग वर्णन होना चाहिये।

xiii) सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रखा जाता है।

xiv) काव्य ग्रंथ का नामकरण कवि, चरित नायक या किसी विशेष चरित्र को दृष्टि में रखकर किया जाता है।

महाकाव्य की इस कसौटी पर आपके लिए संक्षेप में 'पृथ्वीराज रासो' के महाकाव्यत्व पर विचार किया जा रहा है।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है - "पृथ्वीराज रासो की क्रमबद्ध जंजीर को तैयार करने में लंबी-छोटी, सुडौल-बेडौल, अनेक हाथों से गढ़ी हुई पृथक-पृथक कड़ियों का उपयोग किया गया है जो एक-दूसरे के साथ बाद में जोड़ दी गई हैं। इससे स्पष्ट होता है, यह महाकाव्य सर्गबद्ध है। सर्गों को 'समय' संज्ञा दी गई है।

नायक पृथ्वीराज, नायकोचित गुणों से युक्त है। (देखें चरित्र योजना)

रसों के उद्भावन में रासो एक अप्रतिम काव्य ग्रंथ है। (देखें विस्तारपूर्वक रस वर्णन)

पृथ्वीराज का यशगान ही इस काव्य का उद्देश्य है। कवि ने अपने लक्ष्य को पूरा किया है और नाटकीय संधियों की सहायता ली है। नाटक की मुख, प्रतिमुख निर्वहन, गर्भ संधियां कई प्रस्तावों में देखी जा सकती हैं।

पृथ्वीराज के ऐतिहासिक सम्राट होने के अतिरिक्त लोक में उनकी शूरवीरता, दया, पराक्रम तथा दान की कथा यथेष्ट चर्चित थी, जिसे कल्पना के योग से कवि ने कथा में बुना है।

ग्रंथ की समाप्ति में कवि ने धर्म, अर्थ. काम और मोक्ष चारों की प्राप्ति को मनुष्य जीवन का काम्य मानते हुए कहा है -

पावहि सु अरथ अरू धमय, काम।
निरमान, मोख पावहि सु धाम।।

मंगलाचरण आदि का उल्लेख हम काव्य-प्रयोजन इकाई में कर चुके हैं।

सज्जनों, दुर्जनों की स्तुति की चर्चा भी पहले की जा चुकी है। महाकाव्य में सर्गों की जो संख्या दी गई है, उसका पृथ्वीराज रासो में अनुशासनपूर्वक पालन नहीं किया गया है, फिर भी महाकाव्य होने की कुछ शर्तें कवि ने निर्वहित की हैं। छंदों का विशद और व्यापक प्रयोग काव्य-ग्रंथ को विशिष्ट महत्व प्रदान करता है। (देखें - छंद योजना)

प्राय: सभी सर्गों के अंत में आगामी कथा की सूचना मिलती है।

सर्ग के प्रतिपाद्य के अनुसार सर्गों का नाम रखा गया है।

काव्य ग्रंथ का नामकरण चरित नायक को दृष्टि में रखते हुए किया गया है। महाकाव्य का अंतिम लक्षण यद्यपि वस्तु-वर्णन से संबंधित है और काव्य संवेदना इकाई में इसका विवरण दिया गया है तथापि कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे है।

संध्या वर्णन - प्राय: युद्धकाल के अन्तर्गत संध्या का वर्णन है -

(1) परिय संझ जग झंझ हरिय कंकन रंकन धन

(2) सांझ समय ससि उग्गि नम, गई जामिनि जुग जाम।

(3) बजी संझ घरियार सार बज्यौ तन झंझर

सूर्य - सूर्य का वर्णन विविध प्रसंगों में आया है -

(1) ज्यों सैसव में कछु, तुच्छ-तुच्छ दरसाई
यों निसि मध्यन्ह, अरून कर उछित दिसा ललाई

(2) गगन सरस हंस स्याम लोकं प्रदीप

(3) निसि चरन दृष्टि जब समय सूर

चन्द्रमा - चन्द्रमा के चित्र में व्यापक प्रसंगों में -

(1) मनसिज नस बंधुर्मानिनी मान मदी
रमति रजनी रमन चंद्रमा ते नमामी

(2) चंदं किरण कढ़त पोइन पित्र मानें कला छीनयं

(3) सरद इंद प्रतिव्यंब। तिमर तोरन किरनिय तम

रात्रि -युद्धभूमि और विप्रलंभ श्रृंगार वर्णन में रात्रि के उदाहरण मिलते हैं -

(1) नव नित्र हंस हंसह मिलै। विमल चंद उग्यो सुनय
सामंत सूर न्रप रश्शि है। करहिं वीर विश्राम सम

(2) वाचन एवं सप्रसंग व्याख्या इकाई में रात्रि के उदाहरण देखें।

सूर्यास्त - रणभूमि में सूर्यास्त का वर्णन बार-बार मिलता है -

(1) भइत निसा दिन मुदित बिनु
उड़पति तेज विराज

(2) जाम एक निसि बीति बर

अंधकार: युद्धभूमि की अंधेरी रात का कोलाहल बड़े ही चाक्षुश रूप में मिलता है-

अद्ध अवन्निय चंद किय। तारस मारू भिन्न
पलचर, रूधिचर, अंसचर। करिय रपन्निय रित्र

दिन - दिन का वर्णन भी युद्ध के साथ ही मिलता है - चढ़त दीह विधहर।
परिग हज्जार पंच लुथि

प्रातःकाल - युद्धकाल में प्रातःकाल नई स्फूर्ति लेकर आता है -

पहु कहिय घहिय तिमिर
तमचूरिय कर भान

दोपहर - दोपहर का वर्णन सुबह और शाम की तरह विस्तृत और सौन्दर्यपूर्ण न होकर विवरण मात्र है -

कंध-बंध संधिय निजर
परी पहर मध्यान

शिकार- इस काव्य के नायक का परम व्यसन था शिकार, अत: युद्ध से विश्राम मिलते ही शिकार का आयोजन है -

आशेट रमत प्रथिराज रंग
गिरवर उतंग उथान दंग

पर्वत- पर्वत, झरनों एवं वन्य जीव-जंतुओं के अनेक उदाहरण रासो में मिलते है।

सम चल्यो भट्ट गज्जन सुराह
वन विसम-सुसम उग्गाह गाह

ऋतु -ऋतु वर्णन के कई उदाहरण पहले दिए जा चुके हैं। विप्रलंभ में उद्दीपन गत प्रकृति का एक चित्र प्रस्तुत है-

मोर सोर चिहुं ओर। घटा आसाढ संधि नभ
वन दादुर झिंगुरू। रटन चातिग रजत सुभ
वरसंत बूंद धन मेथ सर। तब सुमिरै जद्दव कुंअरि
नन हंस धीर धीरज सुतन। इस फुहे मनमथ्थ करि

वन- वन वर्णन कई प्रसंगों में है, एक कथानक रूढ़ि देखिए जिसमें चंद जंगल में रास्ता भूल जाते हैं

"सम विषम विहर वन सघन धन। तहां सथजित तितहुंअ। भुल्यौ सुसंग कवियन वनह। और नहीं जन संग दुअ।।"

सागर- सागर का विस्तृत वर्णन उपमान रूप में युद्ध के प्रसंग में उदाहरण पहले दिया जा चुका है। कवि ने कई बार सागर तटों का वर्णन किया है -

"तिन नगर पहुंची चंद कवि मनो कैलास शमारव लहि
उपकंठ महल सागर प्रबल सघन साह चाहन चलहि।। "

नदी- गंगा के साथ यमुना नदी का वर्णन रासो में कई बार आया है। कभी स्तुति करते हुए, कभी महिमा वर्णन करते हुए तो कहीं उसके उद्भव की कहानी कहते हुए -

"छुपटन सुतेह गंगा दरस।
तजन देह जन मन्त कृत।।"

संयोग - संयोग श्रृंगार के वर्णन का उदाहरण वाचन और व्याख्या के प्रसंग में दिया गया है। एक और उदाहरण देखिये।

विप्रलम्भ - विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन रस के प्रसंग में देखिये -

मुनि - रासो में कई मुनियों का वर्णन है जो आशीर्वाद देने, श्राप देने और उपदेश देने के लिए आये हैं-

(1) तब मुनिवर हंसि यो कहिअ बिन तब लहि अन राज
(2) तहां सु अम्ब तर रिश्श इक। क्रश तन अंग तरंग

स्वर्ग- स्वामी के लिए युद्ध में मृत्यु को वरण करने वाले हिंदू - मुस्लिम दोनों योद्धा क्रमश: स्वर्ग और जन्नत में अप्सराओं और हूरों का साहचर्य प्राप्त करते हैं। यह दर्शन कवि की सहिष्णुता का परिचायक है -

(1) तहां शान हिंदवान भये, चक्र चुरम
तहां हूर रम्भा बरै बरह सूरम।

(2) लघु बन्ध रूसतमा हनिअ सुर
वरमाल बरै लय चलि हूरा।

नगर - दिल्ली, उज्जैन, कन्नौज आदि का सुंदर वर्णन मिलता है -

(1) सुध निगं बोधयं, जप तट शोधयं
तहां सु बाग ब्रच्छयं
बने सु गुल अच्छयं।।

(2) धुरि धुमय ब्रम्ब निशान घोर
पुर है प्रिथिराज कि इंद्रपुरं।।

यज्ञ- रासोकाल तक यज्ञों की परंपरा समाप्त हो गई थी। इसी कारण जयचंद को राजसूय में सफलता नहीं मिली। यहां तक कि पृथ्वीराज उसे विध्वंस करने का निश्चय भी करते हैं -

मो उममे पहु पंगा
जज्ञ मंडै अबुद्धि कर, जो नर्णो इह जज्ञ।
देव विध्वंशी धुम परि।

युद्ध- युद्ध वर्णन के प्रसंग रस और व्याख्या में देखें।

विवाह- रसों में अनेक विवाहों का उल्लेख है जिसमें गंधर्व विवाह, अपहरण विवाह, माता- पिता की इच्छा से विवाह आदि मिलते हैं (उदाहरण पहले दिये जा चुके है)

महाकाव्य की कसौटी पर रासो के अनुशीलन और परिशीलन के बाद यह निष्कर्ष दिया जा सकता है - कतिपय त्रुटियां होने के बावजूद निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है। पं. मोहनलाल, विष्णुलाल पंड्या, राधाकृष्ण दास और श्याम सुन्दर दास ने इसे महाकाव्य माना था। बाद में श्याम सुन्दर दास ने ही इसे महाकाव्य न कहकर विशालकाय वीरकाव्य कहना ही उचित ठहराया। प्रो. ललिता प्रसाद शुक्ल ने सांगोपांग सफल एवं सिद्ध महाकाव्य माना है तथा बाबू गुलाबराय ने स्वाभाविक विकासशील महाकाव्य Epic of Growth कहा है। पृथ्वीराज रासो को भारत के क्लासिक काव्यों की शृंखला से जोड़कर इसका अध्ययन किया जा सकता है।

2.3.2 काव्यभाषा और सर्जनात्मकता

पृथ्वीराज रासो की काव्यभाषा और सर्जनात्मकता पर विचार करते हुए मध्य भारतीय आर्यभाषा काल के कुछ नितान्त मिश्रित रूप मिथक जनक लगते हैं। भाषा के किसी एक रूप को किसी विशिष्ट क्षेत्र में सीमित कर उसका रूप निर्धारण असम्भव सा हो

जाता है। प्रगत परिनिष्ठित अपभ्रंश के जिस रूप में पृथ्वीराज रासो की रचना हुई है वह भी अनेक भाषा रूपों का कृत्रिम मिश्रण है। इसकी भाषा का परिनिष्ठित अपभ्रंश से भी भिन्न है, इसे उस रूप का निदर्शक कह सकते हैं जो प्रान्तीय भाषाओं का प्रभाव तो स्वीकार कर चुका था किन्तु अपभ्रंश से एकदम भिन्न भी नहीं हुआ था। ग्रन्थ की भाषा में अनेक शब्दों का रूप पूर्ण तत्सम होते हुए भी आधुनिक हिन्दी के बहुत निकट है। यदि ण और न के परस्पर मिलित रूपों पर विशेष ध्यान न दिया जाए तो शब्दकोष का अधिकांश तत्सम शब्द प्रधान है। आंचलिक प्रभाव को ग्रहण करते हुए पंजाबी, गुजराती, सिंधी तथा राजस्थानी के शब्द भी प्रचुर रूप में उपलब्ध होते हैं। क्रिया रूप कहीं-कहीं आधुनिक हिन्दी के नजदीक पहुंच गए हैं, जैसे - मरना जाना हक्का है, जुग रहेगी, कहै सब, रजनी गई आदि

इस प्रकार कहा जा सकता है रासो की भाषा छंदों की तरह वैविध्यपूर्ण है। कारण रासो में वीर रस के साथ साथ श्रृंगार रस के भी सम्यक परिपाक का होना है। अत: वर्णित-स्थलों के अनुरूप ही भाषा परिवर्तन भी स्वाभाविक रूप से हो गया है। इस युग में साहित्यिक राजस्थानी भाषा का प्रयोग डिंगल के नाम से काव्य में होता था तथा ब्रज मिश्रित भाषा के साहित्यिक रूप को पिंगल कहते थे। अत: सभी धारण कवियों ने डिंगल को अपनाया है क्योंकि यह वीरभाव की व्यंजना के अनुकूल है। चंद ने डिंगल के साथ पिंगल के प्रभाव को भी स्वीकार किया है। चंद की भाषा पर संस्कृत अरबी, फारसी, प्राकृत, पंजाबी, ब्रज एवं अपभ्रंश की छाप दृष्टव्य है। रासो की मूल भाषा पर ब्रज का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

(1) हरषत अनंद मन महि हुलास
    लै जै महल भीतर गई।
(2) इसी विधि सुर असुर अति
(3) मित्ति कीजै
(4) बारह मास गय
(5) होत प्रात

द्वित्व प्रधान वर्णों का प्रयोग वीर और श्रृंगार वर्णनों में दिखाई पड़ता है -

यह चाहत चश चकित, उह जु तक्किय झरप्पि झर
चंच चहहिप लोभ, लिप्ये तब गहित अप्प कर।

शब्द वर्णन पर जोर देने वाले अनुकरणात्मक एवं ध्वन्यात्मक शब्द भी युद्ध वर्णन के प्रसंगों में प्रचुर है। चंद ने ग्रन्थ के आरम्भ में ही अनेक ग्रन्थों के साथ कुरान की भी चर्चा की है, कवि ने अरबी, फारसी और तुर्की ज्ञान का भी रासो में अच्छा परिचय दिया है। नीचे कुछ अरबी, फारसी और तुर्की के शब्द दिए जा रहे हैं-

साहब, सोर (शोर), महल, सागर, कग्गद (कागज), हूर, मुसाफ (कुरान), वशत (समय), कुसादे (बना), दंग, तात्रिअ (अरबी घोड़ा), चिराक (चिराग), हरबल (सेना का अग्रभाग),

गोल (विभाग), जंबूर (छोटी तोप), मुजीक (दृढ़), जंग (युद्ध). हवस, बब्बर, आलमी फिरस्ते, गुमान, गुमस्त, दीन (धर्म), फौज, निसान (नगाड़े), मुजक्क (फल) आदि।

निष्कर्षत : एक तरफ जहां पृथ्वीराज रासो का शब्दकोश साहित्यिक प्राकृत, अपभ्रंश एवं देशी भाषाओं से गृहीत है वहीं दूसरी ओर क्रिया पद विधान व्याकरणिक जटिलताओं के बंधन से मुक्ति पा नव्य भारतीय आर्यभाषाओं को रूप देने में सचेष्ट है। इसे उस संक्रांतिकालीन भाषा स्तर की सूचक कहा जा सकता है जब मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएं नव भारतीय आर्यभाषाओं में संतरण करने की चेष्टा कर रही थीं।

2.3.3 पृथ्वीराज रासो में रस योजना

ऐतिहासिक वाद-विवाद के कोलाहल से दूर, ताम्रपत्रों की नीरस जांच से पृथक तथा वंशावलियों, पट्टे परवानों और शिलालेखों के द्वन्द्व से अलग पृथ्वीराज रासो हिन्दी साहित्यकारों की अमूल्य विरासत है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यह एक अनूठी रचना है। युद्ध प्रधान काव्य होने के कारण और पृथ्वीराज जैसे शूरवीर का जीवन वृत्त होने के कारण इस ग्रन्थ में तत्सामयिक प्रतिमानों के अनुरूप आदर्श वीरता का चित्रांकन मिलता है। क्षत्रिय धर्म और स्वामिधर्म निरूपण करने वाले इस काव्य में तेजस्वी क्षत्रिय वीरों के युद्धोत्साह एवं तुमुल और बेजोड़ युद्ध दर्शनीय हैं। असार संसार में यश की श्रेष्ठता और प्रधानता को दृष्टि में रखते हुए उसकी प्राप्ति और स्वामी धर्मपालन में निहित की गई है। क्षत्रिय शरीर का एकमात्र साथी स्वामिधर्म ही है जो कर्मों के बन्धन से छुटकारा दिला सकता है। शूर सामंतों का स्वामित्व में धन्य है क्योंकि ये लड़ना और मरना ही जानते हैं। इस प्रकार के विचारों से रासो ओतप्रोत है। उस युग की वीरता का यह आदर्श सेना की सामूहिक दृढ़ता, स्थायित्व, युद्धोचित प्रवृति की जागरूकता तथा अति आवश्यक अनुशासन के लक्ष्य से भी जरूरी था। दार्शनिक जामा पहने हुए स्वामिधर्म योद्धा का परम आभूषण था।

इस प्रकार के वातावरण के रहते हुए, हर दिन ऐसे ही विचारों और दृढ़ विश्वासों के बंधन में बंधकर तत्कालीन योद्धा की अंतर्मुखी वृत्ति असार संसार में यश की अमरता और स्वामिधर्म के प्रति जागरूक हो जाती होगी तभी तो हम देख सकते हैं कि युद्धकाल में इन योद्धाओं के लिए अनिर्वचनीय आनन्द का क्षण प्रति मुहूर्त उपस्थित रहता था। कुछ उदाहरण देखिये -

(1) करनार हथ्थ तरवार दिय। इह मु तत्र रजपूत कर।

(2) रजपूत मरन संसार वर।

(3) सूर मरन मंगली।

सात सौ वर्षो से जनता के कंठ में प्रतिध्वनित जगनिक के आल्हखंड में भी इसी वाणी की अनुगूंज सुनी जा सकती है -

जी मरि जैहो रन खेतन में, तुम्हरो नाम अमर हवै जाय

मरद बनाए मरी जैवे को, औ खटिया पर मरे बलाय

कायरों में भी वीरता फूंक देने वाले इस युग को 'वीरगाथा काल' कहे जाने का कुछ तो औचित्य है ही। जाति गौरव के लिए निजी हित अनहित की उपेक्षा करने वाले राजपूत योद्धा शत्रु को पीठ नहीं दिखाते, झूठ नहीं बोलते, विश्वासघात नहीं करते, युद्ध में स्त्री-बच्चों पर वार नहीं करते तो शरणागत को बार-बार क्षमा की भीख भी देते दीख पड़ते हैं। पृथ्वीराज रासो जैसे ग्रन्थ में वीर रस खोजने की जरूरत नहीं पड़ती, वह स्वत: सामने आ जाता है। आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारियों की अंगों-उपांगों सहित योजना युद्ध में वीररस को जन्म देती हुई अपनी प्रेरिका शक्ति द्वारा अन्यों को भी प्रभावित करती है, एक उदाहरण देखिए -

हयग्गयं सजे भरं, निसानं बज्जि दूभरं,
नफेरि बीर बज्जई, मृदंग झल्लरी गई।
सुनंत ईस रज्जई। तनीस राग सज्जई,
सुमेरि मुकयं धनं। श्रवन्न फुहि झंझना।

युद्ध वीरता के साथ और भी महान प्रलोभन तथा इस संसार और सांसारिक वस्तुओं से भी आकर्षक भिन्न लोक-वास तथा अनन्य सुंदरी अप्सराओं की प्राप्ति है जो इस पृथ्वी पर सुलभ नहीं

रासो की एक बड़ी विशेषता है उत्साह और रति की एक साथ अवस्थिति। विरोधी रसों के सामंजस्य की यह परंपरा रासोकाल की धरोहर थी जो परवर्ती मध्यकालीन कवियों को विरासत में मिली। 12वीं शती के जीवन में अनवरत रूप से युद्ध होने के कारण उनमें युद्धोत्साह और रति के शाश्वत उभार स्वाभाविक रूप से लक्षित किए गए जिनका साहित्य में प्रतिबिम्बन हुआ। शास्त्रों द्वारा वर्जित किन्तु सामन्ती जीवन में उन्हें प्रत्यक्ष घटते देख कवि वास्तविकता के चित्रण से स्वयं को विमुख नहीं रख पाया। आए दिन होने वाले युद्धों का मोर्चा संभालने का उत्साह अक्षुण्ण रखने के लिए यदि उसने अपने वीर आश्रयदाता और उसके पक्षधरों की हित कामना से रति जैसे कोमल भाव के अन्तर्गत उत्साह सरीखे कठोर भाव का सामंजस्य कर दिया तो इसे स्वाभाविक ही मानना चाहिए। यही कारण है उद्धट वीर के साथ उदात्त श्रृंगार के उदाहरणों का रासो में प्राचुर्य है। यहां तक कि युद्ध क्रीड़ा और रति क्रीड़ा के चित्र सांगरूपक द्वारा एकाकार तक कर दिए गए हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

लाज गढ़्ढ लोपंत। बहिय रद सन ढक रज्जं।।
अधर मधुर दंपतिय। लूटि अब ईव परज्जं।।

पृथ्वीराज रासो में क्रोध, वीभत्स, भयानक, हास्य रस सभी का कुशल नियोजन हुआ है। शांत रस अत्यंत संकुचित रूप में मिलता है। दरअसल वीर और रौद्र रस प्रधान रसों में श्रृंगार ही सहयोगी रूप में उभरा है। युद्धवीर स्वभावत: रतिप्रेमी पाए गए हैं। किसी की रूपवती कन्या का समाचार पाकर अथवा कन्या द्वारा माता-पिता की इच्छा के विरूद्ध उसे वरण करने का संदेश पाकर उक्त कन्या के अपहरण के संदर्भ में उसके सपक्षियों से घनघोर युद्ध, विजय प्राप्ति, विवाह, प्रथम मिलन आदि के वर्णनों में हमें वियोग

और संयोग दोनों के चित्र पृथ्वीराज रासो में मिलते हैं। नायक और नायिका के परस्पर रूप, गुण आदि श्रवण मात्र से अनुराग और उसके कारण अनुभूत वियोग पीड़ा का वर्णन काम-पीड़ा के प्रतीक हैं। संयोग के बाद वियोग के साथ संयोग पूर्व वियोग की पीड़ा वांछित प्रेमी या प्रेमिका की प्राप्ति में बाधा एवं कामोत्तेजना को लेकर ही पैदा होता है। कवि ने नल-दमयंती, कृष्ण-रुक्मिणी, ऊषा-अनिरूद्ध आदि के प्रेम की परंपरा का पालन करने की चेष्टा की है। रासो में कई बार उद्दाम वासनाओं का नग्न चित्रण उस युग की भोग-विलास प्रियता को मूर्त करते हैं। काव्य नायिकाभेद को लक्ष्य कर नहीं लिखा गया, फिर भी नवोढ़ा, स्वाधीन पतिका, अभिसारिका आदि अपने स्वाभाविक रूप में दिख जाती है। श्रृंगार वर्णन में संयोग की प्रधानता है। विप्रलंभ का एक विशिष्ट स्थल है संयोगिता से पृथ्वीराज का प्रथम वियोग और अंतिम मिलन। इस प्रसंग का आदि और अंत परंपरायुक्त है परन्तु वर्णन की मार्मिकता चंद की अपनी कल्पना एवं भावाभिव्यंजना का कौशल हैं उदाहरण देखिये -

घर-घयार बज्जिग विशम। हलिग हिंदु दल हाल।।
दुनिय चंद पूनिय गिये। बर वियोग बढ़ि बाल।।
वर वियोग बढ़ि बाल। लाल प्रीतम कर छुट्टौं।।
है कारण ही कंत। आस असु जानि न फुट्टौ।।
देशंत नैन सुझझे न दिसि। परिय भूमि संथार।।
संजोगी जोगिन भई। जब बज्जिय घरियार।।

शोक के प्रसंग रासो में कम हैं। करूण का सबसे प्रधान स्थल सती होने के दृश्य हैं। सामंत युग की इस प्रथा के विरूद्ध कवि ने कुछ न लिख उसे समादृत ही किया है। क्षत्राणियों के लिए अग्निपथ, प्रेमपथ का विधान था, जिसपर चलना उनके लिए मरण महोत्सव में भागीदारी था। युवतियों का यह बलिदान अत्यंत हृदय विदारक है।

परिस्थिति विशेष में नवरसों के एक साथ उद्रेक कराने की सिद्धि भी रासोकार ने कई स्थलों पर विभिन्न प्रसंगों में दिखाई है। एक उदाहरण देखिए -

बर अद्भुत कमधज्ज। हास चहुआन उपन्नौ।।
करूना दिसि संभरी। चंद वर रूड दिपन्नौ।।
विभछ वीर कुमार। वीर वर सुभट विराजे।।
संभयो संत रस दिश्शि वर। लोहा लंगरि वीर को।।
मंगाइ पान पहुशंग वर। भय नव रस नव सीर को।।

यहां कन्नौज दरबार में जयचंद में आश्चर्य, पृथ्वीराज में हास्य, दासी में करूणा, चंद में रोष, वीर कुमार में वीभत्स, गवाक्षों से झांकती बालाओं में श्रृंगार, लोहालंगरी के चित्र में निर्वेद और विपक्षियों में भय का परिपाक एक साथ बड़े ही सुंदर रूप में चित्रांकित है।

उल्लेख अलंकार की मदद से भिन्न रसों का स्फुरण कवि का ऐसा काव्य कौशल है जिसका वर्णन उनके पूर्ववर्ती श्रीमद्भागवत एवं परवर्ती तुलसी केशव आदि में मिलता है।

2.3.4 अलंकार एवं छंद

रासो काव्य में अलंकार का बहुल एवं सटीक प्रयोग किया गया है। ये अलंकार वस्तु तथा रूप की तीव्र व्यंजना करने में पूरी तरह सक्षम हैं। कवि ने कहीं भी पांडित्य प्रदर्शन की चेष्टा नहीं की। ये पूर्णत: स्वाभाविक रूप से आए हैं।

अलंकार भाव सौन्दर्य की वृद्धि के लिए प्रयुक्त होते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास और चमक का प्रयोग पृथ्वीराज रासो में सबसे अधिक हुआ है। अनुप्रास के समस्त शास्त्रीय प्रकारों के उदाहरण इस काव्य में मिल जाते हैं। कुछ उदाहरण उल्लेख हैं-

जंग जुरन जालिम जुझार भुज सार भार भुअ।

मैनंनं त्रिजटेव सीस त्रित्रयं त्रैरूप त्रैसूलयं।

कहीं कहीं वाच्यार्थ वैचित्र्य से रहित शब्दाडंबर मात्र वाले वर्णानुप्रास के उदाहरण भी मिलते हैं -

जनु कि बज्जि झननंक। ठनकि धन टोप सु उच्चर।

अर्थालंकारों के अंतर्गत जहां कवि ने काव्य परंपरा को दृष्टि में रखते हुए प्रसिद्ध उपमानों का प्रयोग किया है, वहाँ अप्रचलित और अप्रसिद्ध उपमानों का प्रयोग भी साहस पूर्वक किया है, जैसे -

जरयो ससि फूल जरयो मनिबद्ध

उग्यो गुरदेव किधौं निसि अद्ध

अर्थात् मनिजटित शीशफूल ऐसे, सुशोभित हो रहा था मानो अर्द्धरात्रि में बृहस्पति उदित हुआ हो।

नवीन उपमान अपनी अर्थसुलभता और लोकप्रसिद्धि के कारण अर्थ गौरव को और बढ़ाने वाले हैं। उदाहरण देखिये-

मुश कढ़ढिन घूंघट अस्सु वली,

मनो घूंघट दै कुलवदधु चली।

उपमा के सार्थक प्रयोगों द्वारा कवि ने अपना अभीष्ट सिद्ध करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। उपमा के बाद रासो में रूपक को स्थान मिला है। कवि को रूपक के प्रकारों में सांगरूपक सर्वाधिक प्रिय है क्योंकि इसके सहारे प्राचीन कथा-सूत्रों, प्राकृतिक सुषमा और मौलिक उद्भावनाओं को व्यक्त करने में कवि को विशेष सुविधा मिली है। उल्लेख्य है-

आसा महीव कब्बी। नव नव कित्तीय संग्रह ग्रंन्थं

सागर सरिस तरंगी। बोहथ्ययं उक्तियं चलियं

काव्य समुद्र कवि चंदकृत। मुगति समप्पन प्रयान

राजनीति बोहिथ सुफल। पार उतारन यान

अर्थात् कवि के महान आशा रूपी सागर में उत्ताल तरंगें उठ रही हैं जिसमें उक्ति रूपी जहाज चलाए गए हैं। कवि चंद कृत काव्य रूपी समुद्र, ज्ञान रूपी मोती समर्पित करने

वाला है और राजनीति रूपी बोहित (जहाज) उस काव्य रूपी सागर से सफलतापूर्वक पार उतारने वाला यान है।

ऐसे उदाहरण कवि के काव्यशास्त्र ज्ञान के भी परिचायक हैं

रासो में उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगी है। सौन्दर्य और श्रृंगार वर्णनों में कवि ने इसके सभी भेदों का व्यापक प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त चंद के काव्य में भ्रमालंकार अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, आवृत्ति, दीपक, संदेह, सार, स्वाभावोक्ति तथा अर्थान्तरन्यास के भी अत्यन्त सुंदर प्रयोग उपलब्ध होते हैं। पृथ्वीराज रासो के विपुलकाय स्वरूप में समस्त अलंकारों के उदाहरण खोजे जा सकते हैं। इनके माध्यम से कवि ने अपने काव्य की रस-निष्पत्ति में पूर्ण सहायता ली है। रस और अलंकार की सफल योजना ही रासो के अनेक अंशों को मर्मस्पर्शी प्रभावशाली और मनोहर रूप देने में सक्षम हुई है। पृथ्वीराज रासो में छंदों का बहुमुखी प्रयोग मिलता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसमें प्रयुक्त नानाविध छन्दों में जनचित्त को मुखर पाया है। चंदवरदायी को छप्पयों का राजा माना जाना सर्वथा उचित है। रासो के भाव वैविध्य को चित्रित करने में कवि ने जिस प्रकार विविध छंदों को अपनाया है वह एक विरल प्रयोग है।

रासो में वर्णित, मात्रिक और उभय छंदों का प्रयोग हुआ है। चंद ने छंदों को रासो के भावों को वहन करने में समर्थ समझते हुए उनका चयन किया है। प्राय: सभी पारम्परिक छंदों जैसे गाहा आर्या दूहा, पदली, अरिल्ल चौपाई, बाधा, रासा, रोला, सोरठा, कवित, तारक, कुंडलियां (मात्रिक), साटक दंडक, भुजंग प्रयात भुजंगी, नाराच श्लोक, त्रोटक, मालिनी आदि अड़सठ प्रकार के छंद रासो में प्रयुक्त हुए हैं। पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त कवित्त नामधारी छप्पय छंद इतना लोकप्रिय हुआ कि यह रासो पद्धति का एक अमिट अंग बन गया और परवर्ती अनेक कवियों ने इसे अपनाया। इस सफलता का गौरव निःसंदेह चंद की प्रतिभा को ही है। रासो के बहुधा बदलने वाले छंद उसके कथानक की गति में बाधा नहीं डालते, यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। वे अपना रूप बदलते रहते हैं, परन्तु न तो रस का क्रम टूटता है, न वर्णन का सिलसिला। इस स्थिति से स्पष्ट है चंद ने अपने छंदों का चयन बड़ी दूरदर्शिता से किया है। कथा के मोड़ों को अच्छी तरह परखकर वर्णों और मात्राओं की अद्भुत योजना प्रस्तुत करने वाले चंदवरदायी वस्तुत: छंद सम्राट कहलाने योग्य थे। हजारी प्रसाद द्ववेदी ने टिप्पणी करते हुए ठीक लिखा है- "अनुकरण करने वालों ने भी चंद की शैली को ठीक रूप में पकडा है और वर्तमान रूप में भी रासो के छंद जब बदलते हैं तो श्रोता के चित्र में प्रसंगानुकूल नवीन कम्पन उत्पन्न करते है।

उदाहरण देखिये

सिर मोहन घर सेहरो, टोप ओप अति अंग,
बगतर बागे घेसरे, रूधि भीजन विषभंग
सकट भग लहू बग्ग कर
कमधज वीर बिसेज मिले बीर बीरत कर दोउ दैवन तेज

चाहुंआन कमधज्ज कर, मिले लोह-छुटि छोह
धार मुरै मुष ना मुरै, मार मुच्छ ब्रत जीत।

विवाह के प्रसंग में युद्ध की संभावना उत्पन्न हो गई। रस लालित्य में तलवारें चमक उठीं भाव को व्यक्त करते में छप्पय छंद को अनूठी सफलता मिली है।

2.4 मूल्यांकन

वस्तु वर्णन चरित चित्रण, भावाभिव्यक्ति एवं शैली की दृष्टि से निस्संदेह पृथ्वीराज रासो एक उच्चकोटि की रचना है। सन् संवतों, ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता के विवादों को छोड़ यदि विशुद्ध काव्यकला की दृष्टि से इस ग्रन्थ का मूल्यांकन किया जाय तो हिन्दी के रासो काव्य ग्रंथों में पृथ्वीराज रासो एक महत्वपूर्ण रचना सिद्ध होती है। कथा वस्तु का नियोजन, चरित्र चित्रण की सहजता और स्वाभाविकता, भावों की उत्कृष्टता एवं उत्कृटता, शैली की विशिष्टता एवं उद्देश्य की उच्चता की दृष्टि से अपने युग का अनूठा काव्य है। चंदवरदाई ने यथा प्रसंग विभिन्न विषयों प्रकृति, नगर, बाजार, राजसभा, रंगमहल आदि का वर्णन विस्तारपूर्वक अत्यन्त मनोरम और अलंकृत शैली में किया है। पृथ्वीराज रासो एक मूल कथा सागर में अनेक नदियों के रूप में गौण कथाओं को समेटे हुए हैं। कभी-कभी तो गौण कथाएं भी स्वत:पूर्ण परिलक्षित होती हैं जैसे कैमास वध की कथा, रेवा तट आखेट कथा, शशिव्रता एवं इच्छिनी विवाह कथा आदि। फलत: पात्रों का भी अद्भुत जमावड़ा सामने आता है जिनका नाम स्मरण रखना भी पाठकों के लिए सहज नहीं किन्तु जो चरित्र प्रमुख हैं उनमें पृथ्वीराज, चंदवरदायी एवं संयोगिता अग्रगण्य हैं। पृथ्वीराज एक पराक्रमी उत्साही, शूरवीर योद्धा के रूप में आये हे चन्दवरदायी जिसे कि सरस्वती सिद्ध थी, एक ऐसे निर्भीक और गंभीर वक्ता के रूप में परिलक्षित होते हैं, जिनकी वाणी विषम परिस्थिति में भी सच कहने से नहीं चूकती पृथ्वीराज का राजपूती गौरव और आदर्श उस समय दिखाई पड़ता है जब कि कन्नौज में संयोगिता से परिणय कर लेने के बाद सम्राट के सैनिक उन्हें सुझाव देते है कि अपनी सद्य:परिणीता के साथ दिल्ली रवाना हो जायें। वे जयचंद की विशाल सेना का वीरतापूर्वक मुकाबला करते हुए उसे रोकने का प्रयास करेंगे। पृथ्वीराज का आत्मगौरव इस परामर्श को मानने का तैयार नहीं अपने साथियों को महा समर में अकेला छोड़, वे चुपचाप दिल्ली प्रस्थान करें। यह उनकी शान के खिलाफ है। चंद उनके मुंह से कहलवाता है-

भति घटी सामंत भरण हउ मोहि दिखावस्तु।
जम चीठी विणु कदन होइ जउ तुमउ बतावहु।
तुम गंगउ भर भीम तास गव्वह मत्ता।
भइ गोरी साहव्वदीन सखर साहत्ता।
मुहि सरणहि हिन्दू तुरक तिह सरणागत तुम करहु।
बुद्धि अइ न सूर सामंत ही इनउ बोझ अपन्न घरउ।

सप्रसंग व्याख्या की इकाई में इस छंद का अर्थ आपने पढ़कर समझ किया है। स्पष्ट है यहां नायक के आत्मगौरव और अपने सैनिकों के सद्भाव को राजपूती अहं के कारण न परख पाने का भाव लक्षित होता है। पृथ्वीराज रासो में साफ परिलक्षित होता है। पृथ्वीराज के पतन का कारण उसकी अपनी ही तीन महत्वपूर्ण गलतियां है-पहली, कयमास जैसे अविश्वसनीय साथी की छोटी सी बात पर हत्या कर देना, दूसरी, जयचंद जैसे पराक्रमी नरेश के राजसूय यज्ञ का विरोध करना और तीसरी, संयोगिता से विवाह के बाद. भोग-विलास में लीन होते हुए राजकीय दायित्व को भूल जाना।

यद्पि ग्रंथ का नायक पृथ्वीराज है किंतु व्यक्तित्व की गंभीरता एवं चारित्रिक गरिमा की दृष्टि से उनकी तुलना में कवि चंद अधिक प्रभावशाली प्रतीत होते हैं। अपनी वाक्पटुता, ओजस्विता, दूरदर्शिता, स्पष्टभाषिता एवं कल्पना शीलता के कारण पृथ्वीराज के आश्रय में रहकर भी वे स्वतंत्र चेता हैं। विविध घात प्रतिघातों के मध्य पृथ्वीराज को सत परामर्श देने में चंद की वाणी सदा सक्रिय रहती पृथ्वीराज और चंद के वार्तालाप और दर्पोक्तियां जहां सामान्यत: वीर रस की व्यंजक है, वहीं संयोगिता का प्रसंग सौंदर्य प्रेम, विरह और सुकोमल वृत्तियों की मार्मिक अभिव्यंजना करता है। संयोगिता के मन की सुकोमल कमनीय भावनाओं के प्रस्तुतीकरण में कवि ने पूर्ण सहृदयता मार्मिकता और मनोवैज्ञानिकता का प्रमाण दिया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है, अपनी सारी अनैतिहासिकता एवं अप्रामाणिकता के बावजूद पृथ्वीराज रासो एक उच्चकोटि का महाकाव्य है जिसमें उच्च पात्रों, उदात्त विचारों एवं गंभीर भावों की अभिव्यक्ति जीवंत रूप में हुई है। इसके पात्र जहां मध्यकालीन सामन्त वर्ग की एक जागत वर्ग की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं. वहीं इसमें व्यक्त भावनाएं उस युग के आदर्शो एवं लक्ष्यों को पूर्ण सच्चाई के साथ व्यक्त करती है। साथ ही इसका अलंकार विधान एवं छंद वैविध्य पूर्ववर्ती तथा परवर्ती काव्य-शैली के विकास क्रम को पूरी तरह अंकित करने में समर्थ होता है। विषय-वस्तु, भावाभिव्यंजना एवं शैली तीनों दृष्टियों से पृथ्वीराज रासो अपने युग के आदर्शो, भावों एवं परम्पराओं का सरस, कलात्मक इतिहास कहा जा सकता है। जिसका मूल्यांकन सन्, सम्वतों के अंक गणित की कसौटी पर न कर भावनाओं की सूक्ष्म रेखाओं की कसौटी पर किया जाना चाहिये।

2.5 शब्दावली विचार संदर्भ

1. तुमुल - तेज, बहुत अधिक
2. अक्षुण्ण - अमर, कभी न मिटने वाला
3. अवतीर्ण - जन्म लेना, आगमन होना
4. राग-द्वेष - प्रेम - कलह
5. दृष्टिगोचर - दिखाई पड़ना
6. संस्करण - खंड, भाग (प्रकाशन के संदर्भ मे)

7. सम्यक - ठीक-ठीक, पूरी तरह
8. असंगति - कथन में विरोध, असमानता
9. आखेट - शिकार
10. प्रक्षिप्त - छोड़े हुए या जोड़े हुए
11. उदात्त - बहुत ऊँचे या व्यापक
12. प्रशस्ति - यशगान
13. कथानक रूढ़ि - कथा में आए हुए पारंपरिक प्रसंग
14. अनैतिहासिकता - जहां साहित्य रचना में ऐतिहासिक तत्वों के प्रति उदासीनता हो
15. प्रामाणिकता - जिसके अस्तित्व और इतिवृत्त के प्रमाण मौजूद हों
16. मौखिक परम्परा - साहित्य की जो परंपरा कहने-सुनने से ' बची हुई
17. सिद्ध सारस्वत - जिसे सरस्वती का वरदान मिला हो ।
18. क्लासिक काव्य - प्राचीन कालजयी महाकाव्य
19. महाकाव्य - महाकाव्य के प्रतिमानों की कसौटी पर खरा काव्यग्रंथ
20. प्रबन्ध काव्य - कथा को या इतिवृत को लेकर लिखे गए

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पृथ्वीराज रासो की काव्यानुभूति की विवेचना कीजिये ।
2. पृथ्वीराज रासो के काव्य शिल्प पर टिप्पणी कीजिये ।
3. पृथ्वीराज रासो के महाकाव्यत्व पर विचार कीजिये ।
4. चंदवरदायी के भावाभिव्यंजना कौशल की मीमांसा कीजिये ।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. पृथ्वीराज रासो की कथानक रूढ़ियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।
2. पृथ्वीराज रासो के काव्यरूप पर विचार कीजिये ।
3. पृथ्वीराज रासो के काव्य सौन्दर्य पर अधिकतम दस पंक्तियों में टिप्पणी कीजिये ।
4. पृथ्वीराज रासो की तीन प्रमुख शिल्पगत और भाषागत विशेषताओं का उल्लेख कीजिये ।
5. 'पृथ्वीराज रासो में प्रकृति' विषय पर करीब दस पंक्तियों में टिप्पणी लिखिये ।

2.7 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना

2. डॉ. गणपति चंद्र गुप्त - हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
3. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी - संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद
4. रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
5. डॉ. विपिन बिहारी त्रिवेदी - रेवातट (पृथ्वीराज रासो) की भूमिका, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ
6. डॉ. रामसिंह तोमर - प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य, हिन्दी परिषद प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग
7. डॉ. बच्चन सिंह - हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
8. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास -
9. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - इलाहाबाद, पटना

इकाई-3 विद्यापति का काव्य

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 कवि-परिचय

3.2.1 जीवन-परिचय

3.2.2 रचनाकार का व्यक्तित्व

3.2.3 कृतियां

3.3 काव्य वाचन एवं संदर्भ सहित व्याख्या

3.3.1 जय जय भैरवि असुर भयाउनि

3.3.2 कत सुख सार पाओल तुव तीरे

3.3.3 नव वृंदावन, नवनव तरुगन, नवनव विकसित फूल

3.3.4 माधव कत तोर करब बड़ाई

3.3.5 नंदक नंदन कदंबेरि-तरुतरे

3.3.6 सखि हे हमक दुख नहिं ओर

3.4 विचार संदर्भ-शब्दावली

3.5 सारांश

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7 संदर्भ ग्रंथ

30 उद्देश्य

इस इकाई में आपका परिचय आदिकाव्य के एक प्रतिनिधि कवि विद्यापति से कराया जाएगा । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- आदिकाल की परिस्थितियों के संदर्भ के उस काल के एक विशिष्ट रचनाकार के कृतित्व, व्यक्तित्व और रचनाधर्मिता को जान सकेंगे 1
- मैथिल पुनर्जागरण के इतिहास में विद्यापति का स्थान निर्धारित कर सकेंगे और उनके लिखे कुछ पदों की सप्रसंग व्याख्या समझते हुए समग्र साहित्य के बारे के जानने में उत्सुकता महसूस कर सकेंगे ।
- विद्यापति की उन विशिष्टताओं से परिचित हो सकेंगे जिनके कारण वे हिन्दी ही नहीं, आसामी, बंगला और मैथिल में भी समान रूप से आदृत रहे ।
- उनके खास भाषिक वैशिष्ट्य एवं अवदान की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- रचनाकार व्यक्तित्व के बुनियादी सरोकारों से परिचित होने के साथ-साथ उनकी कृतियों के विषय में ज्ञान उपलब्ध कर सकेंगे ।

- विद्यापति के कवि स्वभाव, काव्य प्रेरणा, काव्य दृष्टि के साथ उनके द्वारा रचित कुछ गीतों के सन्दर्भ अर्थ का रसास्वादन कर सकेंगे ।

3.1 प्रस्तावना

विद्यापति केवल कवि ही नहीं मैथिल पुनर्जागरण के उज्जवलतम नक्षत्र थे । कविता लिखना उनका पेशा नहीं शौक था अत: उनकी कविताओं से रस का स्त्रोत स्वतःस्फूर्त की तरह पाठक पर पीयूष रस बरसा उसके मन मस्तिष्क को स्निग्ध और शीतल कर देता है । उनका दृष्टिकोण उनके युग से बहुत बाद का और विचार क्रान्तद्रष्टा थे । एक व्यक्ति के रूप में विद्यापति के और उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को विस्मृत कर दिया गया और वे एक पुराण कथा अथवा उपाख्यान बन कर रह गए लेकिन जबसे उन्होंने अपने चारों ओर 'जन' के लिए सुरीले गीत रचे थे तभी से उनका यश कभी क्षीण नहीं हुआ और भविष्य में भी नहीं होगा । जन बोली मैथिल (जिसे अब संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल कर भाषा का सम्मान दिया जा चुका है ।) जिसे उन्होंने 'देसिल बैना कहा उसे सबसे मीठी सिद्ध कर दिखाया 'देसिल बैना में काव्यानंद को व्यक्त और संचरित करने की प्रतिभा इतनी लोकप्रिय प्रमाणित हुई और काव्याभिव्यक्ति के रूप में सुरतान समन्वित गीतों के उपयोग का रचना चातुर्य इतना मोहक सिद्ध हुआ कि विद्यापति द्वारा स्थापित नमूने का प्रयोग अनेक हिन्दी कवियों सूर, मीरा कबीर, तुलसी ने ही नहीं आसाम में शंकरदेव और माधव देव एवं रवीन्द्रनाथ ने भी किया । कवि गुरू रवीन्द्रनाथ ने 'भानुसिंहेर' पदावली लिखी-जिसमें उन्होंने स्वयं को अनुरूपित मैथिली कह डाला । इस प्रकार जनभाषा में काव्य रचना की वे प्रथम प्रेरिका शक्ति थे । विद्यापति के प्रेम चित्रण का एक विचित्र परिणाम यह था कि इन गीतों ने सहज ही बंगाल के चैतन्यदेव को आकर्षित किया और स्त्री सौन्दर्य तथा कोमल अनुभूतियों के गायक विद्यापति को उन्होंने वैष्णव महाजन की संज्ञा से सम्बोधित किया । चैतन्य के कंठ स्वर के जरिए विद्यापति के गीत बंगाल होते हुए देश भर में फैल गए । संस्कृत की उक्ति विद्यापति के संदर्भ में चरितार्थ लगती है कि काव्य करोति कवय: रसानुजानन्ति पंडिता: अर्थात् कवि का काम है कविता लिखना व्याख्या करते हुए रसास्वादन करना और कराना तो विद्वानों का काम है ।विद्यापति के श्रृंगार में डूबे गीतों का विषय प्रेम है, विशुद्ध भौतिक प्रेम, स्त्री पुरूष का प्रेम बिना किसी-आध्यात्मिक या दूरस्थ रहस्यात्मक अभिप्राय के यह तो उनकी प्रतिभा का कमाल है कि विभिन्न व्यक्ति इनके शब्दों का विभिन्न अर्थ निकालते हैं । चैतन्य और उनके अनुयायी इन्हें भगवान कृष्ण की लीलाओं के व्याख्याता मानते हैं । ग्रियर्सन के अनुसार ये कबीर के गीतों के समान ही रहस्यवादी हैं जिनमें यौन प्रेम के बहाने आत्मा का परमात्मा से मिलन, उत्कंठा का वर्णन है । परन्तु विद्यापति के आधे से भी कम गीतों में राधा-कृष्ण का उल्लेख है । उनके गीतों के कान्हा, मधाई आदि शब्द उन्होंने अपने संरक्षक शिवसिंह जिन्हें वे विष्णु का ग्यारहवां अवतार मानते थे के लिए किया हैं । वस्तुत: विद्यापति ने अपने गीतों की रचना संस्कृत साहित्य के नमूने पर की है जहाँ

कृष्ण नायक और राधा या गोपियां नायिकाएं है । विद्यापति ने संस्कृत अलंकार शास्त्र से नायकों के चार और नायिकाओं के आठ प्रकारों का चयन करते हुए उन्होंने संदर्भानुरूप गीत लिखे । दरअसल जिस श्रृंगार रस को कवि ने प्रतिपाद्य बनाया उसकी अभिव्यंजना के लिए नायक और नायिका, प्रेमी और प्रेमिका का होना आवश्यक था जिसके अभाव में अंगीरस का साधारणीकरण असंभव है । काव्य, मानवीय जीवन चरित्र, मनोवेग अथवा कार्य का इंन्द्रियगम्य रूप में आदर्श में ढाला गया बिम्ब है । काव्य की शक्ति इतनी ही है कि वह विश्वजमीन को उसी के. रूप में नहीं बल्कि इंद्रियगम्य बिम्बावली के माध्यम से अभिव्यक्त करता है ।

इसी तरह विद्यापति के गीतों में किसी रहस्यात्मक तात्पर्य की खोज व्यर्थ है क्योंकि यहां प्रेमिका तो ईश्वर के लिए बेचैन है ही ईश्वर भी उसके लिए कम बेचैन नहीं । वस्तुत: जिस समय विद्यापति ने अपने गीत लिखे उस समय उनके सामने आधुनिक समीक्षा का कोई प्रतिमान तो था नहीं । आलोचकों का एक वर्ग उन्हें उच्च कोटि का भक्त मानता है तो दूसरा उदात्त श्रृंगारी, लेकिन सच्चाई यह है विद्यापति ने प्रेम के गीत गाए क्योंकि उनकी धारणा थी धर्म, अर्थ और मोक्ष की ही तरह कामेच्छा की तृप्ति मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है । संक्षेप में विद्यापति के गीत मानवीय जीवन, चरित्र, मनोदशा और कार्य के आदर्शीकृत प्रतिरूप है ।

3.2 कवि परिचय

3.2.1 जीवन परिचय

विद्यापति के जीवन वृत की ऐतिहासिक सामग्री नहीं के बराबर है । कवि के जीवन-वृत्त का विवरण मात्र उनकी रचनाओं में वर्णित वस्तुतत्व तथा उनके परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त भावों में निहित वैयक्तिक संकेतों द्वारा अनुमति है । तदनुसार विद्यापति का जन्म मिथिला के हृदय प्रदेश वर्तमान मधुबनी जिले के विसपी गांव में 1350 ई. के करीब उन विद्वान राजपुरूषों के परिवार में हुआ जो पांच पीढ़ियों से भी अधिक समय तक मैथिल समाज में गणमान्य बने रहे । 14 वीं शती का उत्तरार्द्ध मिथिला के लिए घोर दु:ख और पराभव का काल था । मिथिला नरेश गणेश्वर की असलान नामक सुल्तान ने 252 लक्ष्मणब्द में धोखे से हत्या कर दी । राजा की मृत्यु के बाद देशभर में भयंकर अराजकता छा गई । विजेता के अत्याचार से पीड़ित जनता न केवल दरिद्रता के चंगुल में जकड़ गई बल्कि उनका सांस्कृतिक पतन भी हुआ । विद्यापति ने अत्यंत कारूणिक भाषा में लिखा है कि अब मिथिला में कोई गुण ' नहीं रहा, कवि भिखारी बन कर मारे-मारे फिर रहे हैं । अनुमान किया जा ' है कवि का कैशोर्य वेदनादायक परिस्थितियों की छाया में बीता । भारतीय कवियों की एक अनुभूत शालीनता रही हैं कि वे आत्मप्रचार से दूर रहते हैं फिर भी विद्यापति जो इस परम्परा के अपवाद नहीं थे अपने जीवन काल में ही यथेष्ट यश अर्जित कर चुके थे ।

गणेश्वर की हत्या के बाद विद्यापति काफी दिनों तक निराश्रित भटकते रहे । राजकुमार कीर्तिसिंह जो राज्य पाने के प्रयास में व्यस्त होने के कारण इन्हें राज्याश्रय देने में समर्थ नहीं थे । इन्हीं दिनों विद्यापति नसरतशाह और आजमशाह जैसे राजपुरूषों के संपर्क में आए । कवि ने अपने कई पदों में कवि भणिता के साथ इन लोगों के नाम लिए हैं । ईस्वी सन् 1407 से 1411 के चार वर्ष कवि विद्यापति के जीवन के सर्वाधिक उल्लासमय. थे । वर्षो के बाद मिथिला में शांति कायम हुई थी । राजा शिवसिंह और रानी लखिमा देवी ने कवि को राज्याश्रय के साथ अभूतपूर्व सम्मान भी दिया । विद्यापति अनूठे किस्म के दरबारी कवि थे । उन्होंने राजा का प्रशस्तिगान किया किन्तु खुद को चारण नहीं राज-सखा समझा । शिवसिंह के राज्याश्रय के पूर्व कुछ दिन वे कीर्तिसिंह के दरबार में थे । जनश्रुतियों के अनुसार कवि ने दो विवाह किए थे जिनसे उन्हें तीन पुत्र और चार पुत्रियां प्राप्त हुई थीं । उनके वंशज विसफी छोड़ सौराठ में बस गए थे । आज भी सौराठ के कुछ मैथिल ब्राह्मण खुद को विद्यापति का वंशज बताते हैं और कहते हैं वे कवि की सोलहवीं पीढ़ी में आते हैं ।

हम विद्यापति के आश्रथदाता शिवसिंह के राज्याश्रय के समय का किंचित विस्तार से वर्णन कर रहे हैं क्योंकि यह कवि के जीवन के बारे में जानने का सूत्र प्रदान करता है । शिवसिंह की पटरानी लखिमा रूपसी, विदुषी और कवयित्री भी थीं । कहा जाता है शिवसिंह के दरबार में कविताएं सुनाने के साथ विद्यापति राजा के अन्तर्महल में भी सस्वर कविता पाठ करते थे । समवयस्क राजा एवं रानी को समर्पित विद्यापति के गीत प्राय: राधा-कृष्ण प्रेम, रूपासक्ति, मान और कामकला के विविध पक्षों को उजागर करने वाले हैं । ऐसे श्रृंगारिक पदों के अन्त में कवि ने भणिता के साथ शिवसिंह के बारे में जो प्रशस्ति का वाक्य लिखे हैं, वे उनकी कामकला विचक्षणता को प्रकट करते हैं । लेकिन समय का चक्र पलटा राजा ने दिल्ली को राजस्व देना बंद कर दिया, मुस्लिम फौज ने आक्रोश में मिथिला को ध्वस्त कर दिया । शिवसिंह कैद कर लिए गए और दिल्ली ले जाए गए । संभवत: वहीं उनकी मृत्यु हो गई । विद्यापति का हृदय राजा के वियोग में विदीर्ण हो गया । प्रणय, उदात्त मांसल सौन्दर्य, और प्रेम की सतरंगी दुनिया चूर-चूर हो गई और मिलन की मादकता का स्थान वियोग की करुणा ने ले लिया । विद्यापति ने अपने प्रिय राजा की विदुषी पत्नी - को. सांत्वना देने के लिए गीत लिखे, जिनके अन्त में सर्वत्र कवि ने वाहिनी को आश्वासन दिया है कि तुम्हारा प्रिय जरूर लौटेगा । कवि ने शोकसंतप्त कवियों को सती होने से भी रोका किन्तु स्वयं दु:ख की चिता में दग्ध होने से नहीं बच पाए ।

ईस्वी सन् 1418 में पुरादित्य के शासनकाल में उन्होंने बनौली में लिखनावली की रचना की जिसमें पतालेखन कला बताई गई है । जिसके काव्य की प्रेरणा थी, मधुर अनुभूतियां स्निग्ध प्रणय और सौन्दर्य उपादान । अपरूप सौन्दर्य को वर्षो एकटक निहारने के बाद भी जिसने लिखा

'जनम अवधि हम रूप निहारिल

नयन न तिरपित भेल - उसी ने पत्र लेखन कला सिखाने के लिए लिखनावली रची यह निस्संदेह आर्थिक दबाव का तकाजा रहा होगा । उन्हीं दिनों कवि ने विद्यार्थियों को कर्मकाण्ड और शास्त्र पढ़ाने का काम भी किया विद्यापति जैसे अभिजात रुचि के कवि को जीविका के लिए विवशता में अनेक काम करने पडे । जीवंतता गति और रोमान्टिक विचारधारा के कवि ने शिव दुर्गा, कृष्ण और जानकी की स्तुति में पद लिखे । इन पदों की दीनता और भक्ति को परम्परा निर्वाह की चेष्टा मान सकते हैं ।

कहा जाता है अपनी मृत्यु के कुछ दिन पहले उन्होंने 32 वर्ष पूर्व लापता हुए शिवसिंह को सपने में शुल्क पक्ष त्रयोदशी को उनके प्रशंसक ' विद्यापति दिवस' के रूप में मानते हैं । गंगातट पर अंतिम सांस लेते हुए भारतीय शास्त्रों की परम्परा के अनुसार कवि ने, धर्म, काम अर्थ के बाद चौथा फल मोक्ष भी प्राप्त कर लिया ।

3.2.2 रचनाकार व्यक्तित्व

विद्यापति संक्रमण काल के प्रतिनिधि कवि थे । वे दरबारी होते हुए भी जन कवि, श्रृंगारिक होते हुए भी भक्त, शैव शाक्त या वैष्णव होते हुए भी धर्मनिरपेक्ष थे । एक संस्कारी ब्राहमण में जन्म लेने के बावजूद तुलसीदास की तरह विवेक और मर्यादा बोझिल नहीं थे । धर्म-दर्शन, भूगोल न्याय और ग्रन्थित दण्डनीति के प्रकाण्ड विद्वान थे संस्कृत पर उनका पूर्ण अधिकार था किन्तु इस अभूतपूर्व विद्वता ने उनके हृदय के भाव स्त्रोत को शुष्क नहीं किया, उन्हें संसार से विमुख नहीं किया । उन्होंने संसार को अनित्य, मिथ्या और बुलबुले की तरह क्षणभंगुर रूप में न देख इसी में आनन्द और सुख के उत्साह खोजे ।

अपनी प्रतिभा पर अगाध विश्वास रखने वाले इस कवि को अपनी रचना शक्ति और विद्या बुद्धि पर गर्व था । विद्यापति का युग दरबारी और राज्याश्रित कवियों का युग था । स्वाभवत: कवियों में ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न हो जाता था । नवयुवक कवि विद्यापति की चमत्कारी प्रतिभा को देख भी दरबारी संस्कृति में अनेक ईर्ष्यालु लोग रहे होंगे । कवि ने कीर्तिलता में लिखा है -

महु अर बुज्झइ कुसुम रस कव्व कलाउ छइल्ल
सज्जन पर उअआर मन दुज्जन नाम मइल्ल

अर्थात् भ्रमर फूलों का रस ग्रहण करता है । कवि भी भाव, सज्जन पर उपकार में रत रहते हैं । दुर्जनों का नाम भी मैला है । लेकिन ऐसे दुर्जनों से उनका रचनाकार व्यक्तित्व तनिक भी आशंकित नहीं होता और डंके की चोट पर कह उठता है- बालचंद्र और विद्यापति की भाषा को दुर्जनों की हंसी प्रभावित नहीं करती । एक शिव के मस्तक की शोभा बढ़ाता है तो दूसरी रसज्ञों के मन को मुग्ध करती है । मध्यकालीन कवि हर्ष की तरह वे समान भाव से न्याय के ग्रंथिल पथ और प्रेम की फूलों से सजी गलियों में विचरण करते थे, यही कारण है । उनकी वाणी-माधुर्य रस की - क्रीड़ास्थली है । उनके रचनाकार व्यक्तित्व में प्रकाश युक्त गढ़ तत्वों का विकास विदग्ध जनों के लिए विश्राम स्थली का अपूर्व समन्वय है । दरबारों के चाकचिक्य वैभवविलास और

दमघोंदू वातावरण में भी उन्होंने काव्यात्मा को जीवित रखा और स्वाभिमान को बंधक नहीं रखा । दरबारों से उन्होंने जीवन रस ग्रहण किया, स्वयं को अनुभव समृद्ध बनाया । जीवन राज्याश्रय में व्यतीत करने के बावजूद अपने रचनाकार व्यक्तित्व और कृतित्व को दरबारी छाया से कलंकित नहीं किया । उनकी कविता जन की आवाज है । राधा-कृष्ण के प्रेम में उन्होंने सामान्य जनता के हर्ष-रूदन, मिलन विरूद्ध की झांकी प्रस्तुत की । दरबारों के कार्य कलाप और रानियों राजकुमारियों के साहचर्य में उन्होंने महसूस किया यहां बाह्य रूप की उपासना और सच्चे सौन्दर्य को अवमानना है । उन्होंने उस सच्चे सौन्दर्य को उसकी पृष्ठभूमि दी और उसे महलों की घेरे बंदी से निकाल मिथिला की मिट्टी, नदी-तट, बाग-बगीचों, पनघटों, खेतों और अमराइयों में प्रतिष्ठित - किया । विद्यापति अभी-भक्तिकाल के पहले कवि लगते हैं तो कभी रीतिकाल के जन्मदाता । जो भी हो उनकी कविता उस युग में ईश्वर की सगुण-निर्गुण छवियों के सम्मुख अपने हृदय का अनन्त प्रेम नाना रूपों में प्रकट कर रहा था । विद्यापति सौन्दर्योपासक रचनाकार थे । सौन्दर्य को वे अपरूप मानते थे । अपरूप एक ऐसी शक्ति है जो विश्व के कण-कण में चेतना संचारित करती है । इस सौन्दर्य की सबसे बड़ी विशेषता है चिर नवीनता । प्रत्येक क्षण यह सौन्दर्य नए वेश में अता है । विद्यापति लिखते हैं -

सखि कि पूछिस अनुभव मोए
से हो पिरित अनुराग बखानिए
तिल-तिल नूतन होये ।
जनम अवधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपित भेल ।

सौन्दर्य के साथ प्रेम का मणि कांचन संयोग विद्यापति की खासियत है । अपनी मानवी अनुभूति और देश काल निरपेक्ष कलाकारिता के बल पर उन्होंने ऐसे रचनाकार व्यक्तित्व का निर्माण किया जिसने भक्तों को वैष्णवी भक्ति का गायन, रसिकों को कलापूर्ण प्रणय की भावभंगिता, असंख्य विरही जनों के विषय मन को टूटने से बचने की ताकत, युवकों को प्रेमिका के मांसल सौन्दर्य को सराहने की जुबान और एहसास करने का जिगर दिया और अन्ततः जीवन के अंतिम मोड़ पर खड़े वृद्ध वर्ग को, शांति की खोज में भटकते मन को आस्था में डूबी स्तुतियां । डा. सुमद्र झा के शब्दों में "विद्यापति का प्रभाव तुलसीदास से भी व्यापक है, क्योंकि उनके पाठक हिन्दी क्षेत्र के लोग ही नहीं बल्कि असम, बंगाल और उड़ीसा के भी हैं । "

3.2.3 विद्यापति की कृतियां

विद्यापति ने संस्कृत, अपभ्रंश अवहट्ट (परवर्ती अपभ्रंश) भाषा या आरम्भिक मैथिली सभी में लिखा । उनकी शास्त्रीय अथवा स्तुति परक रचनाएं संस्कृत में भी लिखी हुई प्राप्त होती हैं । उस काल में संस्कृत एक सीमित वर्ग, केवल शिष्ट जनों की भाषा रह गई थी विद्यापति ने संस्कृत को बुद्धजन की भाषा कहा । उन्होंने कहा-

सक्क्य वाणी बुहजन भावइ
पाउँअ रस को मम्म न पावइ
देसिल बयना सब जन मिट्टा
तैं तैसन जम्पओं अवहट्टा अर्थात् संस्कृत, जबान, बुद्धजनों को अच्छी लगती है, प्राकृत में उस रस के मर्म को नहीं. समझाया जा सकता । देशी भाषा सभी के लिए मीठी है, इसीलिए उसी के समान अवहट्ट में मैं लिख रहा हूँ ।
इस कथन से स्पष्ट है देश भाषा के प्रति उनके मन में कितना प्रेम और आदर था । वे सशक्त कवि होने के साथ निर्भय मनुष्य भी थे । अवहट्ट में लिखते विद्यापति की जब पंडितों ने अवमानना की तो दो टूक शब्दों में उन्होंने सब को पानी-पानी कर दिया । उन्होंने लिखा
बालचंद विज्जावइ भासा
इन्हि नहिं लग्गइ दुज्जन हासा
ओ परमेसर हर सिर सोहइ
ई मिच्चइ नायर मनु मोहइ अर्थात् बालचंद्र और विद्यापति की भाषा को दुर्जनों की हंसी कोई क्षति नहीं पहुंचा सकती । बालचंद्र परमेश्वर शिव के सिर पर सुशोभित होता है, विद्यापति की भाषा निस्संदेह नागरों का मन मोहती है ।
संस्कृत और अवहट्ट में विद्यापति ने प्राय: तत्कालीन परंपरा निर्वाह के लिए ही रचना की । अवहट्ट में राजाओं और सामंतों के शौर्य, युद्ध और प्रेम प्रसंगों के वर्णन की परिपाटी लोकप्रिय थी जिसका निर्वहन उन्होंने कीर्तिलता और कीर्तिपताका रच कर किया।
विद्यापति की प्राय: दस रचनाएं प्राप्त होती हैं जिनके नाम नीचे लिखे जा रहे हैं-

1. **कीर्तिलता -** यह रचना कीर्तिसिंह के शासन काल में उनके द्वारा छिन गए राज्य की पुन: प्राप्ति के प्रयासों को दृष्टि में रख लिखी गई है ।
2. **कीर्तिपताका -** यह रचना कीर्तिसिंह के प्रेम प्रसंगों पर आधारित है ।
3. **भू-परिक्रमा** - भौगोलिक ज्ञान संबंधी रचना जो शिवसिंह की आज्ञा से लिखी गई रचना है ।
4. **पुरूष परीक्षा -** दण्डनीति विषयक ग्रंथ - यह भी शिवसिंह की आज्ञा से लिखी गई रचना है ।
5. **लिखनावली -** पत्र लेखन कला से संबंधित ग्रंथ जिसे कवि ने पुरादित्य के शासन काल में राजबनौली में लिखा ।
6. **शैव सर्वस्वसार -** शैव सिद्धान्त विषयक ग्रन्थ जिसे रानी विश्वास देवी की आज्ञा से लिखा गया ।
7. **गंगा काव्यावली -** यह ग्रंथ भी रानी विश्वास देवी की आज्ञा से लिखा गया ।
8. **विभाग सार -** राजा नरसिंह की आज्ञा से यह पुस्तक लिखी गई ।
9. **दान वाक्यावली -** राजा धीरगति के संरक्षण एवं आज्ञा से रचित पुस्तक ।

10. **दुर्गा भक्ति तर तरंगिणी -** यह भी धीरसिंह की आज्ञा से लिखी गई ।

वस्तुत: विद्यापति को यश तो उपर्युक्त रचनाओं के कारण नहीं उनकी पदावली के कारण मिला । ये रचनाएं तो एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए राजाओं अथवा रानियों की आज्ञा से उनकी प्रसन्नता के लिए लिखी गई । इनमें कवि के निजी कर्तव्य उत्तरदायित्व और राजाज्ञा का पालन प्रमुख है न कि कवि के विचार संवेग अथवा अनुभूतियां । राजदरबार के घुटनशील परिवेश में निवास करते हुए कवि के व्यक्तित्व की उनके 500 से भी अधिक पदों ने रक्षा की । इन पदों में राजाओं के भोग विलास की नहीं जनता के हृदय के सहज संवेगों की अभिव्यक्ति है । पदावली के पद कई राजाओं-नवाबों को समर्पित हैं । इनमें देवीसिंह, शिवसिंह और लखिमा पदमसिंह और विश्वास देवी, शिवसिंह के चचेरे भाई अर्जुन और अभर राघव सिंह, रूद्रसिंह, नरसिंह. धीरमति तथा शिवसिंह के चचेरे भाइयों के बेटों धीरसिंह, भैरवसिंह तथा चन्द्रसिंह के नाम आते हैं ।

ऊपर जिन पुस्तकों का नामोल्लेख किया गया उनका संक्षिप्त परिचय आपके लिए आदिकाल के विशद अध्ययन के लिए जरूरी है अत: उसे दिया जा रहा है ।

विद्यापति की रुचि पढ़ने से अधिक लिखने में थी । अपनी पुस्तक कीर्तिलता में उन्होंने लिखा है कीर्तिरूपी लता तीनों लोकों में कैसे फैलती यदि अक्षरों रूपी डंडों से मंडप नहीं बनाया होता, उन्होंने महसूस किया राजपुरुष की व्यस्तता के बावजूद उनके विख्यात लेखक हुए । किशोर विद्यापति लेखक बनने के स्वप्न देखने लगे । उन्होंने शुरूआत संस्कृत में लिखने से की । बीस वर्ष की उम्र के पहले ही प्राचीन पौराणिक शैली में एक ग्रंथ लिखने की योजना बनाई । ग्रंथ का नाम रखा 'भू परिक्रमा यह ग्रंथ भूगोल तथा विद्यापति के आदर्श पुरूष की कल्पना को व्यक्त करने वाली नीति कथाओं का अद्भुत सम्मेलन है । इस ग्रंथ की रचना के पूर्व ही उन्होंने मणि मंजरी नाटक लिखने का प्रयास किया था जिसमें नाट्य कौशल तो नहीं था लेकिन अभिज्ञान शाकुंतलम्, उत्तरासम चरितम् और रत्नावली की अनुगूंज अवश्य हैं, साथ ही नारी मन के विश्लेषण की कवि क्षमता का भी परिचय प्राप्त हो जाता है । अपरिपक्व - पुरूष परीक्षा के चार अध्यायों में 44 कहानियां हैं । जिनमें से कुछ ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है, कुछ लोक विश्वासों के विस्मयजनक स्वरूप पर । अपनी भाषा की सरलता और शालीनता के लिए पुरूष परीक्षा विशेष उल्लेख्य है ।

'गोरक्ष विजय' नाटक मंचीय गुणों से युक्त है । विद्यापति ने यहां भी एक मौलिक प्रयोग किया है । यदि विद्यापति द्वारा प्रस्तुत भावना का अनुसरण किया गया होता तो मैथिली, जिस प्रकार गीतों में उसी तरह नाटक में भी एक शुद्ध परम्परा स्थापित करने वाली सबसे पहली आधुनिक भारतीय भाषा होती ।

विद्यापति की रचनाओं में सबसे चर्चित 'कीर्तिलता' है । जिसकी रचना प्राचीन मैथिली या अवहत्य गद्य-पद्य में की गई है । कीर्तिलता की विषयवस्तु कीर्तिसिंह की प्रशस्ति है । कीर्तिसिंह ने अपने धीरज, शौर्य वचनबद्धता और कार्यपरायणता से स्वयं को महान

पुरूष प्रमाणित कर दिया था लेकिन कीर्तिसिंह के साथ ही यह काव्य ग्रंथ इब्राहिम-शाह का स्तुतिकाल भी है । शाह की अतिशय सराहना करते हुए उसे अपने समय का सर्वाधिक शक्तिशाली नवाब और महान विजेता दिखाते हुए विद्यापति ने उसे बहुत ऊंचा उठा दिया है । काव्य की दृष्टि से कीर्तिलता में वह उत्कृष्टता नहीं जो विद्यापति की कविता की खास विशेषता है । भाषा स्थान स्थान पर कठिन है, वाक्यों का प्राकृत और अपभ्रंश के साथ मिश्रण है और अरबी फारसी के शब्दों की भी भरमार है खासकर मुस्लिम दरबार और फौज के वर्णनों में ।

विद्यापति की दो अन्य रचनाएं जो विश्वासदेवी के नाम से जुड़ी हैं - शैव सर्वस्वा सार तथा गंगा वाक्यावली हैं जो क्रमश: शिवपूजा और पवित्र गंगा की तीर्थ ' और कृत्यों से संबंध हैं । इन दोनों पुस्तकों की विद्यापति की अन्य रचनाओं के समान ही विशेषता है कि इसमें प्रत्येक कथन के समर्थन में शास्त्रों से अनमोल उदाहरण दिए गए हैं । इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि विद्यापति को .ब्राह्मणों के दैनिक आवश्यक कर्तव्यों के साथ उनके शास्त्रीय साहित्य की भी जानकारी थी । इसी परंपरा में एक, अन्य विस्तृत ग्रंथ दान वाक्यावली है जिसे सन् 1833 में वाराणसी से प्रकाशित किया गया था । यह नरसिंह की दूसरी पत्नी रानी-धीरसिंह के लिए संकलित किया गया था इस ग्रंथ में विविध प्रकार के दानों का वर्णन शास्त्रीय उदाहरणों द्वारा पुष्ट और समर्थित किया गया है ।

विद्यापति की दुर्गाभक्ति तरंगिणी में मिथिला के अति लोकप्रिय उत्सव दुर्ग पूजा का विस्तृत वर्णन है । धीरसिंह के शासन में उनके भाई भैरवसिंह के आदेश से इसे संकलित किया गया था । कार्यक्रमानुसार यह विद्यापति की अंतिम रचना मानी जाती है । विधि विधानों, सामाजिक और धार्मिक कृत्यों से संबंधित ग्रंथों के अतिरिक्त विद्यापति की बहुमुखी प्रतिभा और विशद ज्ञान को प्रदर्शित करने वाला ग्रंथ है विभाग सार जो हिन्दू उत्तराधिकारी कानून से जुड़ा है और राजा नरसिंह दर्वनारायण के आदेश से संकलित किया गया था ।

इन रचनाओं के अतिरिक्त विद्यापति की पदावली की रचना ने कवि विद्यापति की कीर्ति को अक्षुण्ण रखा । विद्यापति अमर है एक गीतकार के रूप में जिन्होंने उन्मादक लय और अभूतपूर्व सौन्दर्य से अभिभूत गीतों की रचना के लिए स्थानीय बोली को चुना और भारतीय काव्य में नए अंतरिक्ष का उद्घाटन कर दिया । यह उनकी अप्रतिम प्रतिभा की खूबी थी कि उन्होंने युग की नब्ज को ठीक- ठीक पकड़ा और एक नई प्रकृति की कविता की बुनियाद ऐसी मजबूत मिट्टी पर रखी जो भविष्य की शताब्दियों के कवियों के अनुकरण और अनुसरण के लिए एक परम्परा बन गई । उनकी पदावली का वैशिष्ट्य आप परवर्ती इकाई में विद्यापति के काव्य के अनुभूति और अभिव्यंजना पक्ष के अध्ययन के संदर्भ में करेंगे । यहां आपको उनके गीत कितने प्रकार के हैं जानना आवश्यक है ।

विद्यापति के गीतों की अध्ययन की सुविधा के लिए तीन वर्गो में बांटा जा सकता है जिनकी अपनी निजी विशेषताएं हैं । केवल भाषिक समानता है । इनमें से सर्वाधिक

लोकप्रिय गीत वे हैं जिन्होंने सदियों तक विद्यापति को मैथिल स्त्रियों के कंठस्वर में जीवित रखा । इनमें विविध सामाजिक संस्कारों के समय गाए जाने वाले कुलदेवता के मंगलागान से लेकर शिवभक्ति तक के गीत हैं । विद्यापति की और दो रचनाएँ हैं- गयापत्तनक जिसमें मृत्योंपरस्त गया है में संपन्न किए गए संस्कारों का वर्णन है तथा वर्ष कृत्य में पूरे वर्ष होने वाले उत्सव एवं उसके विधानों की व्याख्या है । ये रचनाएं सुपरिचित है किन्तु इनकी पूरी पांडुलिपि उपलब्ध नहीं होती ।

विद्यापति ने नचारी नामक नई गीत विधा को जन्म दिया जिसके कारण उन्हें इतनी ख्याति' मिली कि 'आइने अकबरी में अबुल फजल विद्यापति के सभी गीतों को " तक कि उत्कृष्ट प्रेम भावना के व्यंजक गीतों को भी `नेचारी` कह कर पुकारते है । विद्यापति को उनके जीवनकाल में ही 'अभिनव जयदेव और `कवि कण्ठहार` कह कर उपाधि विभूषित किया गया जो सर्वथा उपयुक्त था ।

इसके बाद शिव के विवाह और पारिवारिक जीवन का वर्णन करने वाले गीतों सहित शिव भक्ति की स्तुतियां है किन्तु विद्यापति की कीर्ति के आधार स्तंभ गीत श्रृंगार दे) रूप में रूपांतरों, भावों और दिशाओं के चित्रक हैं । इनमें से कुछ कृष्ण और गोपी तो कुछ सामान्य नर-नारियों से संबंधित हैं ।

विद्यापति के गीतों के क्षेत्र में अवतरण के पूर्व समस्त पूर्वोत्तर और खासकर मिथिला में दो अवधारणाएं समानान्तर प्रवाहित हो रही थीं । दोनों धाराएं प्राय: ' मनोरंजनात्मक थीं । पहली अत्यंत प्राचीन काल से चलती आई लौकिक संस्कृत की काव्यधाराएँ थी जिसका मुख्य प्रतिनिधि अमरूक शतक है । यह धारा संस्कृत की थी संस्कृत अलंकार शास्त्र पर आधारित थी, संस्कृत कवियों द्वारा संस्कृत छंदों में रचित और सुसंस्कृत जनों तथा राजदरबारों में संरक्षित थी । दूसरी काव्यधारा क्षेत्रीय बोलियों की काव्यरचना से संबंधित थी जिसकी प्रतिनिधि रचना गाथा सप्तशती थी यह कालिदास के विक्रमोर्वशीय के चर्चित गीतों (नृत्य) से लेकर पालकालीन व्रजपान सिद्धों के गीतों तक आर्यावृत के पूर्वी क्षेत्र में फैली । जयदेव ने इन दोनों धाराओं के मेल की चेष्टा की और सच्ची कविता तथा उन्माद की ऐसी समन्वित की जो अत्यधिक लोकप्रिय हुई । विद्यापति ने जयदेव की पद्धति अपनाई लेकिन उनसे भी एक कदम आगे बढ़ गए तथा संस्कृत न जानने वालों के किए भी संस्कृत आनन्द आस्वादन को सुलभ बना दिया । जहां जयदेव की नवीन शैली ने केवल ध्वनि तत्व को लोकप्रिय बनाया । वहीं विद्यापति के प्रेम गीतों के संबंध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि इन्होंने प्रेम के आकर्षण का नहीं, कैशोर्य से आरम्भ कर पूर्ण परिपक्व होने तक स्त्री के जीवन की हर अवस्था का विशुद्ध चित्रांकन किया । भौतिक प्रेम के दो पहलू हैं - स्त्री और प्रेमी युगल जो कवि को गीतिमय उल्लास में आगमन कर देते हैं ।

इसी-कारण यौन जीवन विषयक उनकी धारणा भी अत्यंत स्पष्ट थी । उनकी दृष्टि में यह मनुष्य के हृदय की एक मूल भावना मात्र न हो, एक मूल उद्देश्य, एक जैविक जरूरत थी । उनके लिए नीरस आनंद विहीन जीवन में प्रेम एक सरस धारा आनंद का

अक्षय स्त्रोत था । कवि के गीतों के स्त्री के यौन जीवन के चित्र इतने वास्तविकता, पूर्ण विविध एवं रंगीन हैं जो वर्णनों को चाक्षुष कर लेता है ।

विद्यापति की कृतियों के अध्ययन से एक बात स्पष्ट रूप में उभर कर आती है कि उनके जीवन के चार कालखंड थे । प्रत्येक एक-दूसरे से भिन्न था उन्होंने जो कृतियां रची वे विशिष्ट कालखंड के उनके जीवन को प्रतिबिंबित करने वाली है । आरंभिक बीस वर्षो का पहला कालखंड प्रस्तुति का है जिसके अंत में वे देवसिंह के अनुचरों के बीच नैमिषारण्य में पाए जाते हैं ।. परवर्ती 36 वर्षो का, पौरूष का कालखंड राजा शिवसिंह के दरबार में बीता । इस कालखंड में उनकी सृजनशीलता अपनी पराकाष्ठा पर थी । स्वैच्छिक वानप्रस्थ के अगले 12 वर्ष उनके जीवन का अंधकारमय खंड है जिसमें उन्हें निराशा और अवसाद के दौर से गुजरना पड़ा । अंतिम बीस वर्ष दरबार के वयोवृद्ध अनुभवी राजनीतिज्ञ के रूप में घर के शांत वातावरण में बिताए । जीवन के समस्त उतार चढ़ावों, हर्ष और विवाद दोनों में उनकी लेखनी ने कभी विराम नहीं लिया । स्वयं विद्यापति के शब्दों में 'कीर्तिलता के फैलने के लिए मंडप निर्माण की चेष्टा में धैर्यपूर्वक लगातार अक्षर दंड गढ़ते रहे ।

3.3 काव्य वाचन एवं संदर्भ सहित व्याख्या

3.3.1 जय जय भैरवि असुर भयाउनि

जय जय भैरवी असुर-भयाउनि
पशुपति-भामिनी माया
सहज सुमति बर दिहेरे गोसाउनि
अनुगति गति तुअमाया
बासर रैनि सबासन सोभित
चरन चन्द्रमनि चूड़ा
कतओक दैत्य मारि मुँह मेलल
कत्तेक अगिलि करू कूड़ा
सामर बरन, नयन अनुरंजित
जलद-जोग फुल कोका
घन घन घनर घुघुर कत बाजाए
हन हन कर तुअ काता
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक
पुत्र बिसरु जनि माता

संदर्भ - पद विद्यापति पदावली से उद्धृत है ।

रचनाकार के विषय में - (विद्यापति का रचनाकार व्यक्तित्व देखें)

प्रसंग - भैरवी देवी पार्वती का प्रचण्ड रूप है । इस देवी को महा विद्या की मूर्ति माना जाता है । इसे चामुंडा काली भी कहते हैं । इसमें शिव के अनेक गुण हैं जैसे शमशान

में रहना शवसाधना करना तंत्र विधि का अनुसरण करना । कवि ने यहाँ उसी भैरवी की स्तुति की है ।

व्याख्या - कवि भैरवी की स्तुति करते हुए उसकी जयकार करता है । भैरवी- असुरों (राक्षसों) के किए परम त्रासदायक है । वह शिव की पत्नी और माया स्वरूप है । कवि उसकी शरण में आया है वह कृपा कर उसे सुबुद्धि दे । भैरवी रात दिन मुर्दों का सिंहासन बना कर उस पर विराजमान रहती है । उसके चरणों में चन्द्रमणि का आभूषण है । कितने भयंकर दैत्यों को मार कर वह निगल गई और कितनों को मुंह से कुल्ला कर निकाल दिया । सलोनी श्यामल वर्णी भैरवी की आंखें लाल हैं जो देखने में बादलों जैसी गंभीर और कोका पुष्प की तरह रक्तिम हैं । जब वह क्रोधित हो जाती है तो दोनों ओठ फड़कने लगते हैं जो पांडरि फूल की तरह लाल है । उसके ओठों पर खून का भाग फफोले जैसा प्रतीत हो रहा है । पैरों में पहने घुंघरुओं से अपूर्व ध्वनि निकल रही है और उसकी तेज कटार हन हन कर बरस रही है । विद्यापति खुद को देवी भैरवी का चरण सेवक मानते हुए उससे आग्रह करते हैं कि वह उन्हें पुत्र की तरह समझते हुए माता के रूप में उनका ख्याल रखें, उन्हें भूल न जाएं ।

विशेष

1. स्तुति परक गीत है ।
2. विश्वास भक्ति और तन्मयता पूरे गीत में व्याप्त है ।
3. पूरे गीत में अनुप्रास अलंकार की शोभा है ।
4. भाषा मैथिल है और तद्भव शब्द प्रयोग अत्यंत सार्थक रूप में हुए हैं

शब्दार्थ

भयाउनि	डराने वाली
लिधुर	खून
पशुपति	शिव
काता	कटार
भामिवी	पत्नी
कूड़ा	मुंह से जल फेंकना, कुल्ला ।
वासररैनि	दिनरात
विसरु	भूल जाना
सवासन	शवासन
गोसाउनि	गोस्वामिनी, मालकिन

3.2.2 कत सुख सार पाओल तुव तीरे

कत सुख सार पाओल तुअ तीरे । छाड़इते निकट नयन वह नीरे । ।
कर जोरि विनमओं विमल तरंगे । पुन दरसन होअ पुनमति गंगे । ।
एक अपराध छेमब मोर जानी । परसल माए पाए तुअ पानी । ।
कि करब जप-जप जो छेआने । जनम कृतारथ एकहि सनाने । ।

भनइ विद्यापति समदओं तोहि । अंत काल जनु बिसरह मोहि । ।

संदर्भ - रचना का नाम .....

रचनाकार का नाम .....

रचनाकार के विषय में.....

प्रसंग - प्रस्तुत पद विद्यापति पदावली के भक्ति और स्तुतिपरक पदों में से एक है । कवि ने उस गंगा की प्रार्थना की है जो भारतीय संस्कृति में सभी कलुषों को दूर करने वाली पापनाशिनी है जिसकी हर बूंद में अमृत का निवास है ।

व्याख्या - कवि विद्यापति गंगा की वंदना करते हुए कहते हैं - उसके किनारे उन्हें अनगिनत सुखों का सार मिला है । उससे दूर जाने की बात मात्र से, आखों से जल की धारा फूट निकलती है । कवि हाथ जोड़कर गंगा की पवित्र लहरों से विनती करता है कि पवित्र गंगा बार-बार दर्शन दे । कवि कहता है - गंगा

उस पर दया कर उनके अपराध क्षमा करें । मां गंगा के जल का स्पर्श कर उन्हें जीवन में जो कुछ मिला, उससे उनका जीवन धन्य हो गया । अब वे ध्यान और तपस्या जप-तप करके क्या करेंगे । जब एक बार स्नान मात्र करने से मानव जन्म सुफल हो गया । कवि अंतिम पंक्ति में पुन: गंगा से विनय करता है कि वह जीवन के अंत समय में उसे विस्मृत न करे ।

विशेष

1. स्तुतिपरक गीतों में भी अलंकार है ।
2. पूरे पद में यत्र-तत्र अनुप्रास अलंकार है ।
3. विद्यापति के श्रृंगार के पदों में जितनी उदात्तता है, भक्ति के पदों में उतनी ही तन्मयता ।
4. भाषा मैथिली देसिल बयना

शब्दार्थ

पाओल	पाया
तुअ	तुम्हारे
छाड़इते	छोड़ने में
कर	हाथ
पुनमति	पवित्र
छयमब	क्षमा करना
परसल	स्पर्श करना
घेआने	ध्यान
कृतारथ	सफल
सनाने	स्नान से
विसरह	विस्मृत करना

3.3.3 नव वृंदावन. नवनव तरुगन नवनव विकसित फूल

नव वृन्दावन नव नव तरुगन, नव नव विकसित फूल ।
नवल वसंत नवल मलयानिल मातल नव अलि धूल । ।
बिहरए नवल किसोर
कालिन्दि-पुलिन कुँज वन सोभन, नव नव प्रेम विभोर । ।
नवल रसाल मुकुल-मधु मातल, नव कोकिल कुल गाव ।
नव युवती गन चित उमताबए, नव रस कानन धाब । ।
नव जुवराज नवल बर नागरि, मीलए नव नव भाँति ।
नित नित ऐसन नव नव खेलन, विद्यापति मति माति । ।

सन्दर्भ - रचना का नाम.....
रचनाकार का नाम.....
रचनाकार के विषय में.....

प्रसंग - पदावली से लिए गए इस पद में वृंदावन में वन बसंत के आगमन का सरस वर्णन किया गया है । राधा, कृष्ण एवं गोपिकाओं के आनन्द विहार का केन्द्र है वृंदावन । इन सभी आलंबनो के लिए उद्दीपन स्थल है वृंदावन और वहां की मनोरम प्रकृति कवि ने इस स्थल की शोभा का वर्णन बड़ी तन्मयता और अंतरंगता से किया है।

व्याख्या - वृंदावन में शिशिर और पतझड़ के बाद आया बसंत एकदम नया लग रहा है । सभी वृक्ष नई हरी चादर में लिपटे नए लग रहे हैं । नए नए फूल खिले हैं । बसन्त में सुगंधित हवा चल रही है । एक सखी कहती है यमुना का किराए भी मतवाला हो गया है । इसके साथ ही यह अर्थ भी लिया जा सकता है । नये खिले फूलों पर झूम - झूम कर मधु पान करते भौरों का समूह भी मतवाला हो गया है । ऐसे एक सुरम्य वातावरण में कृष्ण विचरण कर रहे हैं । यमुना के किनारे वन और कुंजें सुशोभित हैं । आम वृक्षों पर मुकुल के किनारे वन और कुंजे सुशोभित हैं । आम वृक्षों पर मुकुल आ गये हैं । उसके मधु से कोकिल समूह मुग्ध और मत्त है । नव युवतियों का मन भी उन्मत्तता है । वे दौड़कर वृंदावन तक जाये और प्रकृति के सुरम्य वातावरण में खेल का आनन्द लें । नये युवराज कृष्ण और श्रेष्ठ गोपिकाएं वृंदावन में जुटकर नित नये खेल खेलने में रत हो जाते हैं । कवि ' विद्यापति की बुद्धि भी इन वर्णनों से चमत्कृत हो जाती

विशेष

1. प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों विभावों का चित्रण किया गया है ।
2. पूरे पद में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है ।
3. भाषा मैथिली होते हुए भी शब्द-प्रयोग संस्कृत से यथावत लिये गये हैं । जैसे नव, विकसित,कानन, मुकुल, नवल आदि ।

शब्दार्थ

नव	नया
तरूगन	वृक्षों की पंक्ति
मातल	मतवाले हो गये हैं ।
विहरे	विहार कर रहे हैं ।
उमताबये	उन्मत्त हो गई है ।

3.3.4 माधव कत तोर करब बड़ाई

माधव, कत तोर करब बडाई ।
उपमा तीर कहब ककरा ' हुम, कहितहुँ अधिक लजाई । ।
जओं सिरिखंड सौरभ अति दुरलभ, नओं पुनि काठ कठोरे ।
जओं जगदीश निसाकर तओं पुनि, एकहि पच्छ उजोरे । ।
मनिक समान आन नहि दोसर, तनिकर पाथर नामे ।
कनक कदलि छोटि लज्जित भय रह, की कहु ठामहिं ठामे । ।
तोरह सरिस एक तोहीं माधव, मन होइद्द अनुमाने ।
सज्जन जन सओं नेह उचित थिक, कवि विद्यापति भानो । ।

सन्दर्भ- रचना का नाम.....

रचनाकार का नाम.....

रचनाकार के विषय.....

प्रसंग - प्रस्तुत पद विद्यापति पदावली से उद्धृत है । विद्यापति अपरूप सौन्दर्य के उपासक थे. और कृष्ण उसी अपरूप सौन्दर्य के प्रतीक है । कवि अनेक रूप सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए लोक प्रचलित अनेक उपमाओं का आश्रय लेता है ।

व्याख्या - कवि विद्यापति कहते हैं - कृष्ण तुम्हारी कितनी सराहना की 'जाय और किस प्रकार की जाय । तुम्हारी प्रशंसा करने में किस उपमा का चयन करूँ, यह कहने में भी मुझे लज्जा का अनुभव हो रहा है । यदि मैं उपमा के लिए चन्दन को चुनूँ जिसकी सुगंध दुर्लभ है ' तो ठीक नहीं लगता क्योंकि वह तो निर्जीव, कठोर काठ है । यदि तुम्हारी तुलना चंद्रमा से करूँ तो, यह भी अधूरी होगी क्योंकि चांद तो केवल शुक्ल पक्ष में ही उजाला करता है (जबकि तुम्हारे रूप का प्रकाश चिरन्तन है । मणि (रत्न) से अच्छी दूसरी कोई उपमा नहीं हो सकती लेकिन उसे तो पत्थर के नाम से पुकारा जाता है । स्वर्ण कदली से उपमा दी जा सकती है लेकिन वह तो अपने छोटे आकार से लज्जित है । सारी उपमाएँ ठिठक कर जहां की वहां खड़ी रह गई हैं । हे कृष्ण! तुम्हारी उपमा तो केवल तुमसे ही दी जा सकती है । मेरे मन में यहीं अनुमान हो रहा है । कवि विद्यापति कहते हैं सज्जनों से स्नेह करना सबसे उचित है ।

विशेष -

1. अक्षरों की पुनरावृत्ति में चमक अलंकार है ।
2. पूरे पद में वर्ण विन्यास और लय की अपूर्व छठा है ।

3. तोहर सरिस एक तोहीं माधव में अनन्वय अलंकार है ।

4. भाषा मैथिल कवि के शब्दों में `देसिल बयना` है ।

शब्दार्थ

कत	कितना/केसे
ककरा	किससे
जओं	यदि
सिरिखंड	चंदन
निसाकर	चांद
पच्छ	पन्द्रह दिन का समय
उजोरे	प्रकाश
ठामहिं ठामे	ठिठक कर रह जाना
सरिस	समान
भाने	कहते हैं

3.3.5 नंदक नंदन कदंबेरि-तरुतरे

नन्दक नन्दन कदम्बे तरुतरे
टरलि बोलाव
समय संकेत निकेतन वइसल
बेरि बेरि बोलि पठाव
सामरी तोरा लागि अनुखने बिकल मुरारि । ।
जमुनाक तिर उपवन उदवेगल
फिरि फिरि ततहि निहारी ।
गौरस बिके निके अबइते जाइते
जनि जनि पुंछ वनवारि । ।
तोहे मतिमान सुमति मधुसूदन
वचन सुनह किछु मोरा ।
भनइ विद्यापति सुन वरजौवति
वन्दहु नन्दकिसोरा । ।

संदर्भ- रचना का नाम

रचनाकार का नाम.....

रचनाकार के विषय में.....

प्रसंग - विद्यापति पदावली से उद्धत इस पद में मुरली माधुरी का चित्रांकन करते हुए राधा के प्रति कृष्ण की विह्वलता का निन्दर्शन किया गया है । यह पद संयोग श्रृंगार का है । राधा अनिंद्य सुन्दरी थी, कृष्ण श्यामसुंदर के तरुण थे । प्रेमरूप थे यह प्रेम में अभिसार का चित्रण है जो राधा के लिए कृष्ण में दिखाई पड़ रहा है ।

व्याख्या - नंद के पुत्र श्री कृष्ण कदंब के वृक्ष के नीचे बैठ कर मुरली बजा-बजा कर राधा को बुलावा भेज रहे हैं । राधा को सखी का संदेश मिलता है, समय हो गया वह घर में क्यों बैठी है ।

उसके लिए कृष्ण हर क्षण विकलता महसूस कर रहे हैं । जमुना के किनारे जो उपवन है वहीं बैठ वे पीड़ा का अनुभव कर रहे हैं । वे बार-बार उसी पथ पर पलकें बिछा रहे हैं और टकटकी लगाए हुए हैं, जिस पथ से राधा को आना है । वे हर किसी से पूछ रहे हैं गोरस बेचने वह इधर कब आएगी । कृष्ण अत्यंत बुद्धिमान है, विद्यापति कहते है सुन हे श्रेष्ठ युवती मैं कृष्ण का उपासक हूँ और चाहता हूँ कृष्ण की वन्दना की जाए ।

विशेष-

1. पदावली के इस पद में माधुर्यभिव्यंजक वर्णों की भरमार है । श्रुत्यनुप्रास की छटा दर्शनीय है ।
2. कृष्ण की प्रेमविहवलता का वर्णन अत्यंत सहज है ।
3. भाषा मैथिली है, शब्द प्रयोग तद्भव है ।
4. प्रणय गीत है जिसमें लाल, नाल, लय, छंद का पूरा निर्वाह किया गया है ।

शब्दार्थ

नंदक	पुत्र
टारलि	आवाज देकर, मुरली बजाकर
बोलाव	बुलवाते हैं
अनुसने	हरपल
पुंछ	पूछना
वर नौवति	श्रेष्ठ युवतियां
भनइ	कहते हैं
गौरस	दूध, दही

3.3.6 सखि हे हमक दुख नहिं ओर

सखि हे हमर दुखद नहिं ओर
ई भर बादर माह भादर मून मंदिर मोर
झंपि घन गरजंति संतत, मुबन भरि बरसंतिया
कंत पाहुन काम दारून, सघन खर सर हंतिया
कुलिस कत सत पात मुदित, मयूर नाचत मातिया
मत दादुर डाक डाहुक फाटि जायत छातिया
तिमिर दिन भरि घोर जामिनि अथिर बिजुरिक पाँतिया
विद्यापति कह कैसे गमाओब हरि बिना दिन रातिया
संदर्भ- रचना का नाम .....

रचनाकार का नाम .....

रचनाकार के विषय में .....

प्रसंग- प्रस्तुत पद विद्यापति पदावली के पदों से उद्धृत है । कृष्ण मथुरा चले गये, राधा के लिए तो, एक दिन का वियोग भी असहाय था । लम्बी अवधि तक कृष्ण से दूर रहने की कल्पना भी राधा के लिए त्रासदायक है । राधा के दुःख के चित्रण में, उसके विरह वर्णन में कवि ने लोक जीवन से बारहमासा पद्धति को चुना है । कृष्ण के वियोग में राधा के लिए वर्षा के दिन और भी अधिक पीड़ादायक है । कवि ने राधा की पीड़ा में एक सामान्य स्त्री की पीड़ा का चित्र खींचा है ।

व्याख्या - राधा अपनी सखी से कहती है, कृष्ण के वियोग में उसके दुःख की कोई सीमा नहीं । चारों और घने बादल छाये हैं, भादों का महीना है मेरा घर सूना है । घनघोर बादल लगातार गरजते हैं और विश्व भर में बरसते हैं । मेरा प्रियतम प्रवासी है, कामदेव भयंकर शत्रु बन गया है और निशाना लगा कर तीखे तीरों से मुझ पर आघात कर रहा है । बूंदों के वज्राघात से बगीचे के पत्ते-पत्ते प्रफुल्लित हो गये हैं और मोर मस्त होकर नाच रहा है । वर्षा से प्रसन्न हो मतवाले मेढक तेज ध्वनि में टर्रा रहे हैं, उनकी आवाज से दुःख से छाती फट जा रही है । अंधकार के कारण दिन भी भंयकर रात बन गया है । चंचल बिजली का सिलसिला भी अस्थिर है । विद्यापति कहते हैं, कृष्ण के बिना राधा अपने दिन-रात किस तरह व्यतीत करेगी ।

विशेष

1. पूरे पद में अनुप्रास अलंकार का सौन्दर्य हैं । प्रकृति का उद्दीपनगत चित्रण किया गया है ।
2. विद्यापति की राधा संस्कृत की परम्परा के साथ लोक जीवन से जुड़ी हुई
3. वियोग श्रंगार का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया गया है ।
4. पूरा पद लयात्मक है ।
5. भाषा मैथिल है जिसे कवि ने 'देसिल बयना कहा है ।
6. पावस की रात वियोगिनी के लिए बड़ी हृदय विदारक होती है । ऐसे क्षण अभिसार और वियोग समान हैं । काव्यगुण अर्थ वैभव और स्वर लहरी के चलते यह बंगाल के वैष्णव भक्तों में खास लोकप्रिय हुआ ।

शब्दार्थ

बदर	बादल
भादर	भादों का महीना
पाहुन	प्रवासी
डाक	आवाज, तेज
मंदिर	घर
दादुर	मेंढक
जामिनि	रात

खर	तीखे
सर	बाण
कुलिस	तिमिर
घोर	भयंकर
ई	यह

3.4 विचार संदर्भ/शब्दावली

स्वतःस्फूर्त`	स्वयं प्रकट होने वाला
देसिल बयना	देशी वाणी (विद्यापति के समय की जनभाषा)
काव्याभिव्यक्ति	कविता का प्रकटीकरण
चरितार्थ	सार्थक
दूरस्थ	बहुत दूर स्थित
इंन्द्रियगम्य	जिसे इंद्रियों से महसूस किया जा सके
गणमान्य	आदर से गिने जाने वाला
रूपासक्ति	रूप के प्रति आकर्षण
राज्याश्रय	राजा के आश्रय में
कर्मकाण्ड	वह शास्त्र जिसमें यज्ञ आदि कर्मों का विधान हो।
रोमांटिक	रूमानी, प्रेम संबंधी
ग्रंथिल	गठीला, सुगठित
अपरूप	अत्यंत सुन्दर
चातुक्ष दृश्य	आंखों के सामने स्पष्ट
बुधजन	विद्यापति ने इस शब्द का प्रयोग काव्य समझने वाले विद्वानों के लिए किया हे
परिक्रमा	चक्कर लगाना
पुरातनपंथी	पुराने विचारों पर चलने वाले
मौलिक	नकल पर नहीं अपनी सदभावना से उपजा
भर्त्सना	निन्दा
परवर्ती	बाद का
विवाद	मतभेद
मोक्ष	मनुष्य द्वारा इच्छित चार फलों में से एक , मुक्ति
अभिजा	तसुसंस्कृत
अप्रतिम	अतुलनीय
रसज्ञ	रस को समझने वाले
मंगलाचरण	ग्रंथ के आरम्भ में प्रस्तुत वंदना
समन्वित	मेल
अक्षरदंड	अक्षरों के खंभे
पदावली	पदशैली में लिखित काव्य को पदावली कहते हैं ।

पदशैली का मूल स्त्रोत लोकगीत है । प्राय: पदों के साथ किसी न किसी राग का निर्देश मिलता है ।

3.5 सारांश

इस इकाई में आपने कालक्रम की दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन नाम विद्यापति के व्यक्तित्व उनकी कृतियों तथा कुछ चुने हुए पदों की व्याख्या के जरिए उनके काव्य के वैशिष्ट्य से परिचय किया । आपके समक्ष यह स्पष्ट हो गया होगा कि आदिकालीन कविता के इस कवि की लोकप्रियता का कारण कौन से तत्व रहे । संक्षेप में यदि इकाई में पढ़े गए पाठ का मूल्यांकन करें तो हमारे समक्ष कुछ तथ्य उभर कर आएंगे जो इस प्रकार हैं -

मिथिलाचंल की संस्कृति से जुड़े किन्तु सार्वजनिक कवि होने की क्षमता से युक्त कवि विद्यापति को मैथिल कोकिल के नाम से भी जाना जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके विषय में सर्वथा उचित वक्तव्य दिया है कि जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष धारा जो काल की कठोरता से दब गई थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई ।

कदाचित् यही वजह है कि विद्यापति को अभिनव जयदेव की उपाधि से भी विभूषित किया गया है ।

जीवन का अधिकांश राज्याश्रय में बिताने के बावजूद इन पर दरबारी छाया का प्रभाव बहुत गहरा नहीं है । इनकी कविताओं में जनमानस की आवाज है । राधा-कृष्ण के बहाने प्रेम, संयोग-वियोग, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद तथा जीवन के उतार-चढ़ाव का मार्मिक चित्रण है । इन्होंने दरबार की प्राचीरों में बंद सौन्दर्य बोध को अपनी कविताओं के माध्यम से मुक्त कर प्रकृति के आंगन में प्रतिष्ठित किया भू परिक्रमा, पुरुष परीक्षा, दुर्गाभक्ति, तरंगिणी आदि संस्कृत रचनाओं के अलावा अवहट्ट में रचित इनकी कीर्तिपताका एवं कीर्तिणता जैसी - प्रशस्तिमूलक पुस्तकें भी उपलब्ध हुई हैं, लेकिन इनकी सुख्याति का कारण इनकी पदावली है ।

प्रेम और सौन्दर्य पर आधारित विद्यापति पदावली की सर्वप्रमुख विशेषता इसकी काव्यगत विविधता है । 'ससन परसु खस अंबर रे देखलि धनि देह-की मधुर परिकल्पना से विद्यापति जहां एक ओर रसिक पाठक को रोमांचित करते हैं, वहीं करवन हरब दुःख मोर हे भोलानाथ का स्वर भरते हुए एक शिव भक्त भाव-विभोर हो उठता है । कहीं जीवन की देख क्षणभंगुरता शांत रस का आलाप भरता है- तातल सैकत बारि बूँद

सम, सुत-मित-रमणि समाजे ।

तोहे बिसारि मन ताहिं समर पिलु अब मझु होब

कौन काजै ।

माधव, हम परिणाम निराशा ।

कदाचित् इन्हीं भागवत् विविधताओं के कारण विद्यापति विवाद के विषय हैं कि उन्हें श्रंगारिक कवि माना जाय कि भक्त । उनकी कविताओं के आधार पर इस प्रश्न का एकपक्षीय उत्तर सहज संभव नहीं । सच तो यह है कि एक आम आदमी की तरह विद्यापति ने अपने यौवन में जहां एक ओर प्रेम और सौन्दर्य की मादक रंगीनियों का दर्शन किया, वही दूसरी ओर ऐश्वर्य और विलास से जुड़े भौतिक सुख-साधनों को धूलि-धूसरित होते देखा । स्पष्ट है जीवन की व्यर्थता के एहसास से उपजी विषण्णता व्यक्ति को वासना के दलदल से खींच कर भक्ति की मंदाकिनी में नहला देती है । विद्यापति का काव्य इसी भावनात्मक विकास का परिणाम है । विद्यापति पदावली की सौंदर्यानुभूति की एक झलक ही इस इकाई में दी गई है । विस्तृत विश्लेषण आप विद्यापति के काव्य के अभिव्यंजना पक्ष के संदर्भ में पढ़ेंगे । विद्यापति को हिन्दी गीति काव्य परंपरा का प्रवर्तक कवि माना गया है । साथ ही उन्होंने जन भाषा को काव्य भाषा का दर्जा देकर उसे अमर कर दिया । लोक धुनो और लोक भावना की रक्षा करने वाले उनके गीत आज भी जन सामान्य के कंठहार है । विद्यापति की काव्यगत विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए ग्रियर्सन ने लिखा है -

'हिन्दू धर्म का सूर्य अस्त हो सकता है, वह समय भी आ सकता है जब कृष्ण में विश्वास और श्रद्धा का अभाव हो जाय, कृष्ण प्रेम की स्तुतियों के प्रति जो हमारे लिए इस भवसागर के रोग की दवा है, विश्वास जाता रहे, तो भी विद्यापति के गीतों के प्रति जिनमें राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन है, लोगों की आस्था और प्रेम कभी कम न होगा ।'

विद्यापति रचित व्यवहार गीत जब तक मिथिलाचंल की स्त्रियों के कंठ में रहेंगे, तब तक कवि के यश को धूमिल नहीं किया जा सकेगा । सोहर, मल्हार, पावस विदाई तथा व्यावहारिकता की शिक्षा के लिए रचे गये उनके गीत मिथिला की संस्कृति की बुनियाद है । विद्यापति साहित्य के अप्रतिम अध्येता डा. शिवप्रसाद सिंह के शब्दों में - ' दे जन भाषा में कृष्ण पर काव्य लिखने वाले पहले व्यक्ति थे, और इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने राधा-कृष्ण के युगल मूर्ति के चरणों में जो मानसिक वाक् रूप पुष्पार्चन निवेदित किया, वह बाद के कवियों और साधकों के लिए प्रेरणा का ज्योतिर्मय संबल और पाथेय बन गया ।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. रचनाकार के रूप में विद्यापति का परिचय दीजिए ।
2. विद्यापति द्वारा रचित कृतियों पर एक टिप्पणी लिखिए ।
3. विद्यापति के व्यक्तित्व और कृतित्व पर संक्षेप में विचार कीजिए ।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

4. विद्यापति और जयदेव की रचना का मूल अंतर बताइए ।

5. विद्यापति की पांच रचनाओं के नाम लिखिए
6. विद्यापति को कौन-कौन सी उपाधियां मिली?
7. विद्यापति पदावली के गीतों को अध्ययन की सुविधा के लिए कितने वर्गो में बांट सकते हैं ?
8. विद्यापति का किन-किन विषयों पर पूरा अधिकार था?
9. लिखनावली किस विषय पर लिखी गई है?
10. विद्यापति को मैथिल कोकिल क्यों कहते हैं?

3.7 संदर्भ ग्रंथ

1. रामवृक्ष बेनीपुरी - विद्यापति पदावली - पुस्तक भंडार लहरिया सराय, बिहार
2. रमानाथ झा - विद्यापति - साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद-पटना
4. डा. शिवप्रसाद सिंह विद्यापति - लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद- 1985
5. श्री रवीन्द्रनाथ मिश्र और डा. विमान बिहारी मजूमदार सं. पटना सम्वत् 2010
6. डा. उमेश मिश्र - हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद- 1937

इकाई- 4 विद्यापति के काव्य की अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 काव्य-संवेदना

- 4.2.1 काव्यानुभूति
- 4.2.2 कविता की मूल्य-दृष्टि
- 4.2.3 विद्यापति के काव्य में प्रकृति
- 4.2.4 सौन्दर्य साधना : अपरूप के कवि
- 4.2.5 विद्यापति साधक अथवा श्रृंगारि
- 4.2.6 जीवन दर्शन

4.3 काव्य-शिल्प

- 4.3.1 काव्य-रूप
- 4.3.2 काव्य भाषा और सर्जनात्मकता
- 4.3.3 गीतिकाव्य परंपरा और विध्यापति
- 4.3.4 लय छंद एवं अलंकार

4.4 विचार संदर्भ और शब्दावली

4.5 सारांश

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- आदिकालीन कविता की पृष्ठभूमि में विध्यापति की काव्य संवेदना से परिचित हो सकेंगे ।
- पूर्व पठित इकाई के परिप्रेक्ष्य में कवि के बुनियादी सरोकारों का साक्षात्कार करते हुए उनकी मूल दृष्टि से परिचित हो सकेंगे ।
- कवि की कविता की प्राकृतिक पृष्ठभूमि उनके साधक और श्रृंगारि रूप का समन्वय तथा उनको सौन्दर्योपासना का आकलन कर सकेंगे ।
- विद्यापति की लोकचेतना को समझ सकेंगे

4.1 प्रस्तावना

रससिद्ध महाकवियों की कीर्ति अमर होती है । उनके यश को जरा और मरण का कोई भय नहीं होता । विद्यापति ने स्वयं माना अक्षरों के स्तम्भ गाड़ कर ही कीर्ति की लता को फैलाया जा सकता है और उन्होंने जो अमर वाङ्मय भारतीय साहित्य को दिया उससे उनका यश ही कालजयी हो गया । ऐसे महान कवि और ज्ञानी- व्यक्तित्व और कृतित्व को पाकर कोई भी जाति, देश और साहित्य गौरव का बोध कर सकता है । सच्चे अर्थों में वे मैथिल कोकिल जनवाणी के कोकिल थे । जन- जीवन के प्रति सम्मान उनके समग्र साहित्य में विद्यापति है । उनकी वाणी में काव्य को, लोक जीवन को लेकर सौन्दर्य और मंगल परिधान बुना गया । इस इकाई में उनके काव्य की सौन्दर्यमूलक मीमांसा से यह कथन और स्पष्ट हो जाएगा । यहां कवि विद्यापति उत्पादक और परिवर्तक दोनों थे । उन्हें हजारों वर्षो की काव्य परम्परा प्राप्त थी । उन्होंने संस्कृत के श्रीमद्भागवत, अमराक शतक, गीत गोविन्द, सदुक्ति कर्णामृत, आदि सरस साहित्य का तथा प्राकृत अपभ्रंश के मुक्तक काव्य ग्रंथो का गंभीर अध्ययन किया था किन्तु अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा और अमद अभियोग के बल पर उन्होंने रज और परंपरागत भावों को मौलिक और स्फूर्त बना दिया जिससे उसमें कवि की मानसी सृष्टि प्रतिभासित होती है । सच्चे कवि भ्रमर की तरह बहुरंगी बहुगंधी फूलों पर बैठ रस ग्रहण कर उसे अपनी शक्ति से मधु में परिणत करते हैं । स्पष्ट है कि उत्पादक और परिवर्तक दोनों रूपों में विद्यापति सराहनीय हैं । कोई भी कवि अपनी प्राचीन परम्परा में अप्रभावित नहीं रह सकता । उसकी क्षमता इसी में सिद्ध होती है कि वह मौलिकता और प्रतिभा के सहयोग से प्राचीन को नवीन बना देता है । कवि विद्यापति ने यही किया । उत्पादक कवि के रूप में अपनी मौलिक प्रतिभा से उत्तम काव्य रचा तो परिवर्तक कवि के रूप में अत्यन्त निपुणता पूर्वक प्राचीन भावों को अपने काव्य में संरक्षित रखा ।

आजीवन अपरूप की साधना करते कवि विद्यापति ने मानवजीवन के चिरंतन सौन्दर्य का साक्षात्कार किया भावना और बुद्धि, आकर्षण और विकर्षण, चंचलता और गंभीरता, भोग-योग, राग-विराग अर्थात् जीवन की समग्र अवस्थाओं को कवि ने जिस काव्यात्मक विधान के साथ चित्रित किया है उसमें सौन्दर्य की अप्रतिम साधना निहित है । माधुर्य का मधुर सन्निवेश, पद्य का सरस परिधान, अर्थ का प्रसंगानुकूल विस्तार, अलंकार का यथोचित प्रयोग सभी सौन्दर्य के कलामूलक आकलन हें । सचमुच विद्यापति की कविता में गीतिकाव्य का आदर्श और भाषा अमृत छंद की अपूर्व संस्कृति के साथ श्रुतिमोहक काव्य सौन्दर्य का समग्र रूप हमें उपलब्ध होता है जिसमें विलक्षण भावप्रवणता है, रस-ग्रहण की अनुपम विस्तृति है और अर्थ का बिम्ब ग्रहण ही जीवन है । आगे की उप इकाइयों में विद्यापति के काव्य सौन्दर्य की विस्तृत विवेचना आपके सामने उनके कृतित्व की अनेक नवीन दिशाएँ उद्घाटित करेगा ।

4.2 काव्य संवेदना

4.2.4 काव्यानुभूति

सौन्दर्य के प्रति प्रेम मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति है । इसी प्रवृत्ति ने विभिन्न कलाओं को जन्म दिया । रमणीय ढंग से सौन्दर्य की अभिव्यक्ति काव्य-कला का साध्य रही है । सौन्दर्य की अनुभूति से सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल कवि हृदय का उच्छास उसकी कविता में छलक पड़ता है । कवि अपनी प्रतिभा द्वारा जिस सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है, उसे वह अपनी कविता के माध्यम से यथावत पाठक या श्रोता हृदय में उतार देने की अद्भुत क्षमता रखता है । भले ही मानव की सौन्दर्यप्रियता उसकी नहीं । काव्य आत्माभिव्यक्ति का प्रबल साधन है । कवि अपनी अनुभूतिओं को युग वैशिष्ट्य के आधार पर कभी सहज भाव से और कभी सचेष्ट भाव से अभिव्यक्त करता आया है । वह अपने मन के भावों को शब्दों द्वारा रूपाकार देता है । फलत: काव्य का सौन्दर्य भाव तथा अभिव्यक्ति को लेकर ही है जो कवि की सृजनशीलता पर निर्भर है । भाव वैशिष्ट्य से जो सौन्दर्य उत्पन्न होता है, वह भागवत् सौन्दर्य है और कवि द्वारा अपनाया गया शब्द अथवा शिल्प जिस सौन्दर्य का निर्माण करता है, वह कलागत सौन्दर्य है । यह अभिव्यंजनागत सौन्दर्य भी कहलाता है । इस इकाई में विद्यापति के इसी अभिव्यंजना कौशल का वर्णन किया जाएगा ।

विद्यापति की काव्यानुभूति भी उनके विषय वैविध्य के ज्ञान के अनुसार अत्यन्त समृद्ध है । आप पढ़ चुके हैं कि उन्होंने धर्मशास्त्र, राजनीति, समाज विद्या, अर्थशास्त्र, इतिहास, नीतिशास्त्र, न्यायशास्त्र और भूगोल आदि विषयों को गंभीरतापूर्वक पढ़ा था । वस्तुत: वे मात्र कवि नहीं थे । एक ही साथ निबन्धकार, लेखक, शिक्षक, कथाकार, इतिहासकार, स्मृति शास्त्रवेत्ता और धर्म-कर्म के व्यवस्थापक भी थे । वे दरबार में रहकर भी चाटुकारिता की संस्कृति से ऊपर रहे । राज्य सिंहासन के नजदीक युग गुर। के आसन पर बैठकर उन्होंने मिथिला के सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक जीवन की परिचालना आधी सदी से भी अधिक काल तक की । उन्होंने एक साथ अपने युग को बुद्धि, विवेक तथा जीवन को मधुरिमा की वाणी दी । विद्यापति सौन्दर्य के कवि थे । सौन्दर्य की साधना कठिन होकर भी इनके लिए सरल थी । वे सौन्दर्य के रहस्य को पहचानते थे । उनका सौन्दर्यानुराग नित नूतन परिधान पहनती प्रकृति की तरह था । वे कहते हैं-

सीख कि पूच्छसी अनुभव मोय
कोइ पिरीति अनुराग बरवानिय
तिल-तिल नूतन होय ।

यह अनुभूति कवि प्रतिभा का मूल मंत्र है जिसके चलते उन्हें सौन्दर्य की जो उपलब्धि हुई, वह निःसंदेह मध्य युग में सर्वोत्कृष्ट थी । विद्यापति के सामने असीम सौन्दर्य की रहस्य मूर्ति खड़ी थी । कवि ने विमुग्ध दृष्टि से उसकी रूप सुधा को पिया और

इस कार्य में किसी प्रकार की कुंठा का बोध नहीं किया । इटली के काव्यशास्त्री क्रोचे का कहना है- "हम कवि से किसी तत्व विषयक उपदेश की अपेक्षा नहीं करते और न अत्यधिक कल्पना की कामना करते हैं । हम तो कवि से एक ऐसा भावाभिव्यंजक व्यक्तित्व चाहते हैं जिसके संस्पर्श से श्रोता या पाठक का चित्त प्राणमय हो उठे । इस दृष्टि से विद्यापति एक महान् कवि थे । उनकी पदावली से अधिक मोहक और सुन्दर काव्य ओर क्या हो सकता है ? जिसके हर पद में भाव-सौन्दर्य और रूप सौन्दर्य का अनुपम समन्वय है । "

विद्यापति का कवि कौशल भावाभूति और सहजानुभूति पर आधारित है । भाषा संवर्द्धन और भाव रूपायन को लेकर विद्यापति की अपार शक्ति प्रत्येक पद में दिखाई पड़ती है । वे एक साथ भाव और भाषा दोनों के शिल्पी हैं । उनका उद्देश्य काव्य में किसी प्रकार का शास्त्र निरूपण नहीं था । अलंकार आये हैं तो अनुभूतियों को प्रगाढ़ बनाने के लिये थे । अपने पदों में लोक जीवन के विचार सौन्दर्य को और लोक के विश्वास की वाणी को ध्वनित किया है । वे लोक कवि थे । वे जीवन के कवि थे जीवन की सभी परिस्थितियों में सौन्दर्य के अवलोकन और उसे अनुभूत करने का अवसर उन्होंने खोज निकाला । इसी कारण पदावली का मुख्य विषय श्रंगार होते हुए भी शांत, वीर, हास्य आदि रस स्वत: चले आये । अपने मन के भीतर छुपे सौन्दर्य को कवि ने कविता का बाहरी रूप दिया है और इसे अकथ कथा कहकर वर्णित किया है-

सजनि अकथ कही न जाय
अबल अरून ससिक मंडल भीतर रहै नुकाय ।।

विप्रलम्भ श्रंगार की सभी दशाओं के साथ संयोग के नाना पक्षों को कवि ने उद्घाटित किया है । पुरूष परीक्षा में विद्यापति ने कहा है- काव्य की सार्थकता जन मानस की अभिव्यक्ति में है । वेदादि शास्त्र विद्या है, तो चित्र, गीत और काव्य उपविध्या किन्तु लोक सिद्धि के लिए उपविध्या का महत्व विद्या से अधिक होता है । पिछली इकाई में वर्णित विद्यापति विषयक विचार आपके सामने उनकी काव्यानुभूति को और अधिक स्पष्ट करने में सहायक होगा । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, विद्यापति की विषय- वस्तु का सौन्दर्य उसके अर्थ ग्रहण में स्पष्ट है । मानव-जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव पदावली में वर्णित हैं जिसमें राज भवन का भोग विलासमय अभिजात्य मनोरंजक, स्वस्थ, सहज मानवीय प्रेम व्यापार, धर्म और दर्शन से विलासपुराक विचार, विवेकशील और बुद्धजन समाज का काव्यानुराग एक साथ सन्निविष्ट है । भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ के. एम. पणिक्कर कहते हैं- वस्तुत: विद्यापति, कबीर, मीराबाई, तुलसीदास और नानक केवल मैथिली, हिन्दी, राजस्थानी अथवा पंजाबी के कवि नहीं रह गये हैं, अपितु समग्र भारत के कवि बने हुए हैं । ऐसा इसी कारण संभव हुआ । क्योंकि महाकवि विद्यापति ने मानवी अनुभूति को देश, काल निरपेक्ष कलाकारिता के साथ अपने काव्य में व्यक्त किया ।

4.2.2 कविता की मूल्य दृष्टि

यह एक स्वीकृत सच है कि विश्व कवि के रूप में विद्यापति की ख्याति मुख्यत: उनके प्रेम गीतों के कारण है । इनकी मुख्य देन है-जन भाषा को काव्य भाषा बनाना और उसमें अपनी कल्पना शक्ति से एक विशिष्ट भावना को मूर्त करना और उसे इतनी सच्चाई से, इतनी वास्तविकता से इतने अनुभूतिपूर्वक और इतनी सहानुभूति के साथ चित्रित करना कि उनमें वर्णित स्थितियों में प्रत्येक जन स्वयं को चित्रित समझे । अपनी कविता को जन के साथ जोड़ने के मधुर लयात्मक सुरीली धुनो का चयन किया और शब्दों के रूप को छोड़ शब्दों का प्रवाह मृदुलयात्मक हो गया । एक संक्रमण युग में रचना करते हुए भी इन्होंने एक अद्भुत समन्वय करने की चेष्टा की । साधना और श्रंगार का, शैव और शाक्त का, उच्च और निम्न का जो समन्वय कार्य इन्होंने किया, उसी के कारण ये परवर्ती भक्ति और रीति साहित्य के बीज बोने वाले कवि कहे जा 'सकते हैं । राधा-कृष्ण को ईश्वरीय सिंहासन से उतार कर इन्होंने लोक भूमि पर प्रतिष्ठित किया । ये हिन्दी के सर्वप्रथम गीति काव्य रचयिता है । जिस युग में जन गीत नक्कारखाने में तूती की आवाज बने हुए थे जिस समय संस्कृत काव्य जन धारा से विच्छिन्न होकर चमत्कार और कौतूहल की सृष्टि को ही कवि कर्म की चरम सीमा मान रहा था, उस समय लोक भाषा में एक नया प्रयोग और दुःख और निराशा के अहंकार में भटकते जन को 'देसिल बयना' का उपहार देते हुए कवि ने एक नई परिपाटी आविष्कृत की । इसके पहले की इकाई में विद्यापति के गीतों की लोकप्रियता बताने के सिलसिले में विद्यापति के मूल्य बोध को आका जा सकता है । विद्यापति शब्द-चित्रकार थे । वय सन्धि के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक परिवर्तन को उन्होंने जिस बारीकी से काव्य में गूंथा, नारी सौन्दर्य तथा नारी भावनाओं के पर्दे में से मनुष्य के यौन जीवन के रहस्यों को उद्घाटित किया । इस उद्घाटन का मुख्य कारण है विद्यापति में भावयित्री और कारयित्री दोनों प्रतिभाएं थीं । दोनों के समुचित सम्मेलन से उनका काव्य परिचित वस्तुओं के ऊपर से सामान्य रूप का आवरण उठाकर सुप्त दिव्य सौन्दर्य का अवलोकन कराता है । इसलिए विद्यापति द्वारा संस्थापित काव्य मूल्य अमर है । जब तक जीवन में काम है, बसन्त का आकर्षण है, मानव में सौन्दर्य की आसक्ति है और जब तक मनुष्य मनुष्य है, तब तक विद्यापति का मूल्यबोध लोगों को प्रभावित करता रहेगा ।

4.2.3 विद्यापति के काव्य में प्रकृति

अनन्त काल से प्रकृति मनुष्य की सहचरी है । यह मानव जीवन को अनेक रूपों में प्रभावित करती है । मनुष्य अपने तुच्छ स्वार्थ को पूरा करने के लिए प्रकृति का विनाश कर सामाजिक पर्यावरण को असंतुलित कर रहा है । इतिहास साक्षी है जब-जब मनुष्य ने प्रकृति को पराजित करने का स्वप्न देखा है, तब-तब उसकी शांति और संपन्नता को आघात पहुंचा है । भारतीय कवियों ने इस सच को पूरी तरह स्वीकार किया । वैदिक

मंत्रों से लेकर अति आधुनिक कविता भी प्रकृति की धड़कनों को समझने की चेष्टा करती है ।

विद्यापति के काव्य में प्रकृति सदैव जीवंत में चित्रित हुई है । कवि मे इसके पल-पल परिवर्तित स्वरूप पर दृष्टि केन्द्रित की है और उसमें चिर नवीनता का दर्शन किया है । विद्यापति के काव्य में प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण निःसंदेह उनके सौन्दर्यबोध द्वारा परिचालित है । विद्यापति ने प्रकृति के नाना उपकरणों को, उसके सौन्दर्य के विविध आकर्षणों को साधन बनाकर सार्वभौम अदृश्य सत्ता को व्यक्त किया है । अपनी मध्ययुगेर साधना शीर्षक पुस्तक में आचार्य क्षितिमोहन सेन ने लिखा है- ' 'चण्डीदास दुनिया के ऊपर उड़ने वाले पक्षी है, जहां लौकिक सौन्दर्य बिखरकर स्वर्गिक सौन्दर्य को स्पर्श करने लगता है । विद्यापति दिनभर धूप से नहाई गुफाओं और पुष्पित उद्यानों में घूमते हैं और शाम होते-होते उनकी लालसा इतनी ऊपर उड़ने लगती है कि वे पहले कवि की उड़ान का अतिक्रमण कर देते है । " संस्कृत काव्यों की तरह विद्यापति के काव्य में भी प्रकृति दो रूपों में परिलक्षित होती है-आलम्बन या प्रतिपाद्य के रूप में और केवल उद्दीपन बनकर । वाल्मीकि का काव्य प्रकृति प्रधान है, कालिदास विशुद्ध प्रकृति के कवि माने जाते हैं । उनका मेघदूत या ऋतुसंहार पढ़ने पर स्पष्ट हो जाता है कि यहां प्रकृति मात्र मानवीय रति या श्रंगारि का उद्दीपन भर नहीं । फिर भी वस्तुओं के विवरण में रूढ़ियों का प्रभाव बना रह जाता है । मध्यकालीन कविता में प्रकृति चित्रण का रूप बड़ा ही बनावटी और पीरपाटीगत रह गया । संदेश रासक और पृथ्वीराज रासो में संदेश रासक का ऋतु वर्णन कवि प्रथा के अनुसार निश्चित वस्तुओं की सूची गिनाता रह जाता है । रासो का ऋतु वर्णन विरह शकिता नायिकाओं के दुःख को व्यक्त करने के उद्देश्य से प्रकट किया गया । विद्यापति ने भी विरह वर्णन में बारहमासे की पद्धति अपनाते हुए ऋतुओं का चित्रांकन किया है । प्राचीन कवियों की रीति पर विद्यापति ने भी अनेक उपमाओं, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास में सुसज्जित बसन्त का वर्णन क्या है । बसन्त राजा की तरह वनस्थली में प्रवेश क्या है । राजा के स्वागत में पत्र सिंहासन सजाते हैं, फूल अभिनंदन, पक्षी कलकल ध्वनि से आशीर्वचन उच्चरित करते हैं तो तक कुन्दलता की पताकाएं फहरा देते है ।

नृप आसन नव पीठल पात
कांचन कुसुल छत्र धरु मात
कुन्द वल्ली तर धएल निसान
पाटल आ असोक बलरान

कवि को स्वयं बसंत से आत्मीयता जोड़ने की उत्फुल्लता है । उसे लगता है बसंत बहुत दिनों बाद विदेश से लौटा कोई स्वजन है । वे अपने समस्त संवेगों सहित बसंत का स्वागत करते हैं-

नाचहु रे तरुनि तजहु लाज
आएल वसंत ऋतु बनिक राज

ऐसे अनेक प्रसंगों में कवि के मन का एक अद्भुत उल्लास प्रकृति को मानवीय स्पंदन प्रदान करता है ।

बसंत के अतिरिक्त प्रखर ग्रीष्म और भयंकर पावस का भी चित्रांकन विद्यापति ने बड़े मन से किया है । यद्यपि ये चित्रण उद्दीपनात्मक ही है जिनमें समरसता और नवीनता लाना एक कठिन कार्य है तथापि ऐसे वर्णनों में भी विद्यापति ने निरन्तर जागरूकता, सूक्ष्मदर्शिता और संवेदनशीलता का परिचय दिया है ।

'सखि रे हमक दुखक, नहि ओर ई भर बादर माह बादर रख मंदिर मोर' उद्दीपन के रूप में प्रकृति के प्रयोग मानवीय दुःख की ऐसी तीव्र व्यंजना दुर्लभ है । बारहमासों में नायिका के आवेग प्रकृति की पगचापों के साथ चढ़ते उतरते हैं ।

विद्यापति के काव्य में प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम सदैव मौजूद है । विरह की अवस्थाओं को उन्होंने प्रकृति के अगणित रूपों में देखा है, सुख के दिनों में जो प्रकृति कवि को चन्द्रज्योत्सना के मायाजाल में बांधे रही भ्रमर गुंजार और पुष्पों की सुरभि ने मन को उद्रेक और लालसा पूरित रखा उसी प्रकृति ने दुःख में उन्हें सावन भादो की अनवरत झड़ी की तरह निरंतर शलया । कवि की यह खासियत है कि पुराने ढंग को भी उसने शैली की नवीनता से नव कलेवर दे सराहनीय और लोकप्रिय बना दिया है ।

4.2.4 सौन्दर्य साधना- अपरूप के कवि

संक्षिप्त में आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि विद्यापति अपरूप के कवि हैं । उन्होंने स्थान- स्थान पर अपरूप तथा इसके समानार्थी शब्दों का प्रयोग किया है । चमत्कारिक प्रतिभा सम्पन्न होने के कारण उन्होंने वस्तु-वर्णन में भी चमत्कार का प्रयोग किया है ।उस युग में एक लौकिक और शास्त्रीय परंपरा सी रही कि लोग अपनी प्रिय वस्तु का नाम नहीं लेते और किसी कल्पित तथा सुन्दर नाम से उसे संबोधित करते । कवि ने इस परम्परा का पालन किया । कवि की नायिका अपने प्रियतम को जाते देख अपनी सखी से कहती है-

ए सखी देखलि एक अपरूप
सुनाइत मानवि सपन सरूप ।

कवि राधा के सौन्दर्य पर मुग्ध है और बार-बार कहता है-

देख-देख राधा रूप अपार
अपरूप के बिहि आनि मिलाओल
खिति तल लावनि सार ।

विद्यापति का नख-शिख वर्णन संस्कृत कवियों से परम्परा गृहीत होते हुए भी अपने वर्णनों में सर्वथा नवीन है । नेत्रों की उपमा उन्होंने मृग नेत्र, कमल, स्वजन, चकोर तथा यमुना की लहरों से दी है तो कहीं-कहीं आँखों को केवल तरंग से तुलनीय दिखाया है । अधरों की उपमा विम्बाफल तथा दांतों की अनार के दानों से, नायिका के चन्द्रमुख पर लगे सिन्दूर के टीके की उपमा बाल सूर्य से दी है और सूर्य और चन्द्र के साथ-

साथ कखि राहु की कल्पना नायिका के केश के रूप में करता है जो कि सूर्य और चन्द्र के साथ होने के कारण उनके साथ नहीं आ सकता-

"अधर विम्ब सन दसन दड़िम, विज्जु रवि, सीस हम
थिके पासे रहे दूर बसि नियरों न आनीथ
तै वहि करथि दरासै ।"

यौवन के आगमन के साथ नायिका के वृद्धि प्राप्त करते अंगों का कवि ने अत्यंत उदात्त वर्णन किया है और उनके चित्रण के लिए अनेक रूपक, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की योजना की है

"उरहि अंचल झापि चंचल
आप पयोधर हेरा
पौन पराभव मरद घन जानि धुल बेकत केयल सुमेरु । "

अर्थात् जैसे शरद ऋतु के श्वेत बादल पवन से पराजित होकर पर्वत का आकर बना देते हैं, उसी प्रकार नायिका का लहराता हुआ श्वेत अंचल उभरे स्तनों को प्रकाशित कर दे रहा है । विद्यापति के रूप चित्रण की विशेषता है कि उन्होंने राधा को नख- शिख वर्णन के साथ कृष्ण के अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन भी किया है । इस दृष्टि से कवि अंग्रेजी कवि किट्स के भावों को वहन करते चलते हैं- "सौन्दर्य सत्य है और सत्य सौन्दर्य है । दोनों मिलकर इस पृथ्वी पर मंगलमय है । सौन्दर्य के नाना रूपों का दर्शन करते हुए वे महसूस करते है कि किसी वस्तु का गुण वास्तव में उस वस्तु में न हो, उसे परखने और पहचानने वाले की आखों में निहित रहता है । विद्यापति के अपरूप में ऐसी शक्ति है कि वह मानव मन में पुलक, प्राणों में शांति और शरीर में रोमांच भर देता है । " अपरूप एक ऐसी अवर्णनीय ताकत है जो पूरी सृष्टि के हर अंग में चेतना का संचार कर देती है । इस सौन्दर्य की सबसे बड़ी विशेषता चिर नूतनता है । कवि घिसे-पिटे एकलीकी सौन्दर्य का उपासक नहीं, कुरूप भी उनकी सौन्दर्योपासक कल्पना की चादर ओढ़ रुचिकर बन जाता है । यह अपरूपता कवि ने मनुष्य में, प्रकृति में और पूरी सृष्टि में देखी है । विद्यापति का अपरूप सौन्दर्य आम सौन्दर्य से ऊपर की वस्तु है जिसे वे सर्वोत्तम शक्ति और अपनी सिद्धि मानते हैं किन्तु इस अपरूप के सामने समर्पण नहीं कर देते बल्कि इससे अनुप्रेरित रहते हैं । विद्यापति की सौन्दर्य कल्पना की यही विशेषता है कि न तो वह सूर की तरह समर्पण करती है, न बिहारी की तरह थक जाती है । कृष्ण यहां राधा के सौन्दर्य की अतिशयता को अनिर्वचनीय कहकर उस पर सूरदास की तरह न्यौछावर नहीं होते अपितु इसे निरन्तर नाना रूपों में निरखते रहने की इच्छा से इसकी आराधना किया करते हैं । विद्यापति रूप के सजग द्रष्टा हैं । कई आलोचक नख-शिख वर्णन को इस कारण हेय दृष्टि से देखते हैं क्योंकि इसमें मानव सौन्दर्य का खंडश: वर्णन ही प्रस्तुत हो पाता है । यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि विद्यापति ने सौन्दर्य के प्रत्येक पक्ष का स्थूल दृष्टि से कहें तो नख-शिख वर्णन में सौन्दर्य को खंडित करके नहीं वरन् उसके प्रत्येक हिस्से को उदभक्तित

करते हुए उसे समग्रता मे आका है । प्रकृति के सर्वोत्तम पदार्थो से नारी के शरीर के प्रत्येक अंग की समानता ही नहीं, श्रेष्ठता दिखला कर कवि उसके पार्थिव रूप को और अधिक शालीन और स्वस्थ तरीके से प्रस्तुत करना चाहता है । जैसा कि शिवप्रसाद सिंह लिखते है कि विद्यापति रूप के पार्थिव बंधन में बँधे हुए कवि नहीं हैं, यदि वे मांस के बंधन में बँधे होते तो जन्म भर उसे देखते हुए भी अतृप्ति की बात न करते । फिर उनके काव्य में यह स्वर भी नहीं फूटता-

जनम अवधि हम रूप निहारल

नयन न तिरपित भेल ।

वह अपरूप ही था जिसे एकटक निहारते रहने पर भी उनकी प्यास नहीं बुझती थी । वस्तुत: वे इन तमाम खंडित रूप तत्वों के मध्य प्रवाहमान अखंड रूपतत्व की साधना के कलाकार थे ।

4.2.5 विद्यापति साधक अथवा श्रृंगारी

विद्यापति को साधक भक्त माना जाए अथवा श्रृंगारि कवि इस प्रश्न को लेकर आलोचकों में सदा मतभेद रहा है । आप अब तक यह पढ़ ही चुके है कि उनकी कविता से लोगों ने अलग- अलग ढ़ंग से अर्थ निकाले अत: विचारों की भिन्नता का होना भी स्वाभाविक है । इस विवाद का मूल उनकी पदावली है । जिसके नब्बे प्रतिशत से भी अधिक पद श्रृंगारि है किन्तु कुछ आलोचकों का मानना है पदावली में रहस्यवाद की अतिश्यता है लेकिन भक्ति की अभिव्यंजना भी कम नहीं । ऐसी स्थिति में विचारणीय प्रश्न यह भी है कि पदावली शुद्ध श्रृंगार प्रधान रचना है अथवा इसमें शुद्ध अध्यात्ममूलक श्रृंगार है । अगर ये पद आध्यात्मिक हैं तो क्या इसमें केवल वैष्णव भक्ति की अभिव्यंजना है या रहस्यवादी तत्व भी प्राप्त होते हैं । विद्यापति पदावली को (रहस्यवादी) रचना मानने वालों के अग्रणी हैं जॉर्ज ग्रियर्सन. जो कहते हैं राधा और कृष्ण के प्रणय रूपक से कवि आत्मा और परमात्मा के संबंधों का रेखांकन करता है । नगेन्द्र नाथ गुप्त पंडित जनार्दन आदि का भी यही मत है । कुमार स्वामी ने भी इसी दिशा में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है- विद्यापति का काव्य गुलाब है, सब तरह से केवल गुलाब यह आनंद निकुंज है । यहां हमें उस स्वर्ग के दर्शन होते हैं जहां के वृन्दावन की लीला शाश्वत है । वृन्दावन मानव का हृदय प्रवेश है । यमुना का तट इस संसार का प्रतीक है जो राधा और कृष्ण अर्थात् (जीव तथा ईश्वर की लीलाभूमि है । वंशी की आवाज अदृश्य सत्ता की ध्वनि है । जीव को परमात्मा की ओर अग्रसर होने का आह्वान है । विनय कुमार सरकार जैसे समीक्षक अपने तीखे तर्क से इस प्रकार की उक्तियों का खंडन भी करते हैं और कहते है "राधा कृष्ण साहित्य को इंद्रिय जन्य आनंद से जोड़ कर ही पढ़ा जाना चाहिए । " लेकिन विद्यापति की पदावली के सबसे बड़े प्रशंसक चैतन्यदेव ने पदों में राधा कृष्ण का नाम देखते ही भाव विभोर होकर उन पदों का कीर्तन किया है उनकी चित्तवृत्ति इस खोज में प्रवृत्त ही नहीं होती कि विद्यापति के पद श्रंगार परक हैं या भक्ति रसात्मक । डॉ. सुभद्रा ने विद्यापति

को रहस्यवादी न मानते हुए लिखा है- "ग्रियर्सन तथा अन्य विद्वानों ने विद्यापति के प्रेम गीतों में जो प्रतीकात्मकता ढूँढने की कोशिश की है वह सर्वथा अनावश्यक है ।" प्रतीकात्मक पद कबीर जायसी तथा कुछ अन्यों के भी जिनमें जीवात्मा ही परमात्मा से मिलने के लिए आतुर रहती है । किन्तु विद्यापति के पदों में ऐसी कोई बात नहीं है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार इस संदर्भ में उल्लेख्य हैं- " आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं उन्हें चढ़ा कर जैसे कुछ लोगों ने गीत गोविन्द के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी सूर आदि कृष्णभक्तों के श्रृंगारी पदों की भी ऐसे लोग आध्यात्मिक व्याख्या चाहते हैं । पता नहीं बाललीला के पदों को वे क्या कहेंगे इस संबंध में यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि लीलाओं का कीर्तन कृष्ण भक्ति का एक प्रधान अंग हैं । जिस प्रकार लीलाएं वर्णित हैं उसी रूप में उनका ग्रहण हुआ है और उसी रूप में वे गोलोक में नित्य मानी जाती हैं । जहां वृन्दावन, यमुना, निकुंज, कदंब, सखा-गोपिकाएं आदि सब नित्य रूप में हैं । इन लीलाओं का दूसरा अर्थ निकालने की आवश्यकता नहीं है । "

ऊपर दिए गए विचारों से स्पष्ट होता है मनुष्य की आत्मा में ही विश्वात्मा निहित है । आमतौर पर इन दोनों तत्वों को समन्वित करने की क्षमता कवि सृजन में सर्वत्र परिलक्षित होती है, जिसमें दोनों के बीच विभाजक रेखा खींचना कठिन हो जाता है । इस विशेषता के कारण यह प्रेमगीत ऐसा पुष्प बन गया है जिसे आप चाहें तो प्रतिमा पर चढ़ा दें चाहें तो प्रणय का प्रसाधन बना लें । कवि की प्रतिभा कवि सृजन में सर्वत्र परिलक्षित होती है, जिसमें दोनों के बीच विभाजक रेखा खींचना कठिन हो जाता है । इस विशेषता के कारण यह प्रेमगीत ऐसा पुष्प बन गया है जिसे आप चाहें तो प्रतिमा पर चढ़ा दें चाहें तो प्रणय का प्रसाधन बना लें । कवि की प्रतिभा इन दोनों के एकत्रीकरण में अप्रतिम है । यदि पदावली में वर्णित श्रृंगार भाव जीवन का प्रेम गीत है जहां मानवीय संबंध के साथ इन्द्रिय भावना का ऐसा सुंदर सम्मिश्रण हुआ है तो लौकिक प्रतीकों के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का जागरण भी विद्यापति की दृष्टि में रहा है । इसके लिए उन्होंने नित्य लीला के चित्रण में मानवीय शब्दों का प्रयोग किया है । यह निर्विवाद है कि विद्यापति के पदों का मुख्य विषय राधा-कृष्ण का लीला गान हैं किन्तु आध्यात्मिक अनुभूति वाले शिव संबंधी पदों का भी महत्व कम नहीं । दूसरी तरह के गीतों में ही विद्यापति का लोक कवित्व हमारे सामने उजागर होता है । यह जरूर है दोनों प्रकार के पदों के धरातल भिन्न-भिन्न हैं । जहां राधा-कृष्ण विषयक पदों में प्रेम का चित्रण चिर-परिचित काव्य परम्परा के अनुकूल रचा गया है वहाँ कवि की विशिष्टता केवल लोक-प्रतीकों के प्रयोग में है । दूसरी ओर शिव विषयक पद एक साथ लौकिक और आध्यात्मिक दोनों है । जहाँ विद्यापति के काव्य की जीवंतता और लोक-जीवन संपृक्ति का प्रश्न उठता है, वहाँ विद्यापति भक्त साधक और श्रृंगारिक दोनों रूपों में सर्वोत्तम नजर आते हैं । वे साधक थे. अथवा श्रृंगारिक इनसे ऊपर उठकर यही मानना उचित है कि ये मानवता की उच्चतम भाव भूमि पर प्रतिष्ठित एक श्रेष्ठ कवि थे ।

4.2.6 जीवन दर्शन

अब तक आपने विद्यापति के विषय में जो कुछ पढ़ा उनसे उनके दर्शन की झलक आपको अवश्य मिल गई होगी । यहाँ पुन: एक बार कुछ पंक्तियों में विद्यापति के जीवन दर्शन को व्यक्त किया जा रहा है । भारत के उन महाकवियों में विद्यापति का नाम पहली कतार में है जिन्हें कभी आत्म विज्ञापन की आवश्यकता अनुभूत नहीं हुई । फूल की तरह खुशबू फैलाना ही उनका कवि-कर्म था । विद्यापति का समस्त जीवन दर्शन इस एक पंक्ति में निहित है-मिथिला की जनता में, उनके लोक कंठ में अपने गीतों को संरक्षित करना उनकी प्राथमिकता थी और वे अपने इस जीवन-दर्शन को स्थापित करने में पूरी तरह सफल रहे । मिथिला की जनता में विद्यापति के पद जीवन से इतने घुलमिल गये हैं कि प्राय: प्रत्येक पर्व, त्यौहार के अवसर पर उनके गीत ही नहीं गाये जाते, उनके द्वारा प्रयुक्त मुहावरे और लोकोक्तियां तक लोगों की वाणी में जब तब व्यक्त देखी जाती हैं ।

'सुपुरूख सनेह अनुनहि होए' अर्थात् सुपुरुष का प्रेम कभी कम नहीं होता । परक बेदन दुख न बुझै मुरख अर्थात् मूर्ख दूसरे की वेदना नहीं समझता और अवसर वल बहला रह परचाव अर्थात् अवसर का क्षण बीत जाने पर केवल पश्चाताप रह जाता है । जैसे सूक्ति कथन जन जीवन में आज भी जिंदा मुहावरे बन गए है । चरवाहों से लेकर साहित्यकारों तक, रंकों से लेकर राजाओं तक, मंदिरों से लेकर विवाह मंडपों और कोहबरों तक, पंथों पगडंडियों और अमराइयों से लेकर विध्यासभाओ तक ये गीत समान रूप से सराहित हैं । विद्यापति के किसी पद को हम चुन लें और उसका अर्थानुभव करें । हमें सहज बोध होगा कि हम सौन्दर्य की उच्चतम भूमि पर पहुँच गये हैं । कारण स्पष्ट है विद्यापति को भाव की यथार्थ अनुभूति और उसकी सार्थक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई थी । यही है संक्षेप में विद्यापति का जीवन दर्शन जिसके कारण उनके पदों को काव्यकाश की ऐसी नक्षत्र माला कहा गया जहां कवि व्यक्तित्व का आकर्षण सर्वोपरि प्रकाशमान हैं । इन पदों में काव्य धनी विद्यापति का आंतरिक रूप विध्यमान है । उनकी वाणी कविता का श्रंगार है । मैथिली, बंगला, असमिया, हिन्दी तथा एक सीमा तक उड़िया, ' भाषा- भाषी भी उन्हें अपनाकर गौरव का अनुभव करते हैं ।

4.3 काव्य शिल्प

4.3.1 काव्य रूप

किसी भी काव्य रूप की निर्मिति के पीछे अभिव्यक्ति के उपादानों के दो प्रकार परिलक्षित होते हैं-बाहरी एव भीतरी । बाहरी में संरचना, रूप, भाषाशैली तथा शिल्प आता है और भीतरी में लय, छंद, रचनात्मक सुसंगति एवं रीति । अभिव्यक्ति के भीतरी और बाहरी उपादानों के सम्मेलन से काव्य का रूप सृजित होता है । अनुभूति और अभिव्यक्ति की आन्तरिक समन्वित काव्यरूप का निर्माण करती है । विद्यापति के काव्यरूप पर विचार करते हुए यही सच सामने आता है ।

हम पहले ही देख चुके हैं कि विद्यापति की प्रतिभा बहुमुखी थी फलत: उन्होंने साहित्य की अनेक विद्याओं में लिखा । एक समर्थ कवि के रूप में अभिव्यक्ति के स्तर पर सृजनशील होकर ही नवीन काव्यरूपों की उद्भावना में भी सफल हुए । नए काव्यरूप अनादिकाल में प्रचलित अनेक काव्यरूपों की समन्वित और ज्ञान के विविध वाङ्मयों सम्मेलन है । अपने युग की प्रमुख प्रवृत्ति वीरगाथात्मक काव्य का प्रणयन तथा आश्रयदाता के रूप और शौर्य का अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रांकन थी । इसे दृष्टि में रखकर कवि ने कीर्तिलता और कीर्तिपताका की रचना की । कीर्तिलता लघु ऐतिहासिक चरित काव्य है जिसमें महाराणा कीर्तिसिंह की यशगाथा वर्णित है । यह क्षीण प्रबंधर्मी खंडकाव्य है । कीर्तिपताका अवहट्ट और मैथिल मिश्रित भाषा में, श्रृंगार और वीर रसात्मक चरित काव्य है । इसमें शिवसिंह के शौर्य का जीवित जागृत चित्र है । कवि ने गोरक्षविजय नाटक भी लिखा जो संस्कृत, प्राकृत और मैथिली अर्थात् त्रि- भाषिक है । इसके अतिरिक्त लीला काव्य और स्तुति गान शैली भी अपनाई । चैतन्य महाप्रभु को इनमें कर्तिन के गुण दिखाई पड़े होंगे, तभी तो उन्हें अपनाया ।

विद्यापति को सर्वाधिक प्रसिद्धि जिस काव्यरूप के कारण मिली, वह है पद । पद गीति कात्य के अभूतपूर्व द्रष्टांत हैं । गीति काव्य के समस्त गुण व्यक्तिगत अनुभूतियों की व्यंजना लोक हृदय की धड़कन, सौन्दर्य चेतना का आलोक, भावानुभूति की तीव्रता, सघनता, व्यापकता और लोकगीत तथा संगीत की आंतीरक संगति से ये गीत समृद्ध हैं । इनमें शब्द, स्वर और भाव की समन्वित है, संगीतात्मकता है, कलात्मकता है और कृत्रिमता का पूर्णत: अभाव है । गीति काव्यकार के रूप में विद्यापति की विशेषता अलग रूप में दी जा रही है ।

4.3.2 काव्यभाषा और सर्जनात्मकता

विद्यापति ने जिस युग में कलम उठाई, उसे हम नव्य भारतीय आर्य भाषा का आरम्भिक संक्रमण काल कह सकते हैं । उस समय मध्यकालीन आर्य भाषा की अंतिम कड़ी अपभ्रंश भी जन भाषा के स्थान से हट चुकी थी । नव्य भारतीय भाषाओं का विकास तो हो रहा था लेकिन तब तक उसमें वह क्षमता नहीं आई थी जिससे उच्च कोटि की काव्यानुभूतियां अभिव्यक्त की जा सकें । विद्यापति ने इस स्थिति को भली-भांति समझा और कीर्तिलता में स्पष्ट ढ़ंग से विश्लेषित किया । इसी प्रसंग में उन्होंने देसिल दयन। चुनी जिसके बारे में पहले लिखा जा चुका है । विद्यापति का शब्दकोष विलक्षण- और महत्वपूर्ण है । अपने समय की लोकभाषा को बड़े आदर के साथ पदों मे स्थान देने के कारण उसमें देशी शब्दों का व्यापक प्रयोग मिलता है । सर्वाधिक संख्या तद्भव शब्दों की है जो ध्वनि परिवर्तन के दौर से गुजरने के बाद अत्यंत श्रुति मधुर और आकर्षक रूप ग्रहण कर लेते हैं । संस्कृत शब्दों के सुन्दर तद्भव रूप पाठक को मुग्ध कर देते हुँ । शब्दों के प्रयोग में इन्होंने काफी सावधानी बरती है । अरबी-फारसी शब्दों का भी सहज प्रयोग किया गया है । भाषा मुहावरों और लोकोक्तियों से काफी समृद्ध हो गई है । भाषा सृजन और भाषा संवर्द्धन की इनमें अपार शक्ति थी ।

साहित्यिक दृष्टि से अवहट्ट रचना उनके काल में रूढ़ हो गई थी । उसमें तात्कालिक लोक भाषा का पुट देकर सरस, अवज्ञा रचना भाषा मर्मज्ञ विद्यापति से ही संभव थी । विद्यापति भाषाविद थे । वे भाषाओं के मर्म से खूब परिचित थे । शिव प्रसाद सिंह ने लिखा है- "विद्यापति को भारतीय काव्य इतिहास में वही स्थान प्राप्त है जो यूरोपीय काव्य इतिहास में इटालियन कवि-विचारक दांते का है । दोनों ही ने प्राचीन विद्या के निपुण अधिकारी होते हुए भी नवीन जनवाणी की कद्र की थी । " शब्द चयन और भाव रूपायन दोनों में विद्यापति का निजी वैशिरय साफ परिलक्षित होता है । उनकी पदावली में प्रत्येक पद में लाक्षणिकता और व्यंग्यात्मकता प्राप्त होती है । शब्द भाव प्रतीक होते है । शब्दों में संज्ञा या विशेष्य, विशेषण और क्रिया का महत्व विद्यापति के भाव रूपायन में सर्वाधिक है । इनके विशेषणों के प्रयोग में सर्वत्र चमत्कार देखा जाता है । करी के लिए कुलमति. कलामति, रसमति पुनमति, गुणमति सुन्दरी आदि विशेषणों में प्रसंगानुकूल भाव प्रकट हुए हैं । अभिनव, मधुर, नवल, कोमल, उन्मत्त, विगलित आदि विशेषणों का रसानुकूल प्रयोग सौन्दर्य कवि विद्यापति को एक साथ शब्द चित्रकार और भाव चित्रकार के आसन पर बैठा देता है । एक उदाहरण देखिये -

"वारिस जामिनी कोमल कामिनी
दारून अति अंधकार
पथ निसाचर सहसे संचर
घन पर जलधार । "

यहां वर्षा रात्रि के प्रसंग में कामिनी के साथ कोमल विशेषण अत्यन्त साभिप्राय है ।

4.3.3 गीतिकाव्य परम्परा और विद्यापति

गीतिकाव्य -कविता सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सर्वजन प्रशंसित विधा है । यह मानव हृदय में उठने वाले सरस एवं तीव्र मनोवेगों की अभिव्यक्ति का सबसे सहज साधन है । मनुष्य सुख-दुःख, आशा निराशा, आसक्ति विरक्ति आदि के चरम पर पहुंच कर, भावातिरेक में दुक्ति होकर गीत रचता है । मानव मन के निकटस्थ और उसी से निष्पन्न होने के कारण इस काव्य विधा ने सहस्त्रों वर्षो से निरंतर समाज के चित्रों को प्रभावित और चित्रांकित दोनों किया है ।

भारतीय गीतिकाव्य का आरम्भ वैदिक ऋचाओं से माना जा सकता है जिनमें प्रकृति के भयावह और विस्मयजनक रूपों को देख आदिम मन की जिज्ञासाएं, भय और विस्मय की स्थितियां, रक्षा की कामना स्तुति और श्रद्धा की भावनाएं एक साथ गुंथी मिलती है । ई . डब्ल्यू . हापकिन्स ने प्राचीन भारतीय गीति काव्य को चार भागों में बांटा है । पहले में धार्मिक और वीरगाथात्मक गीतियां, दूसरे में भक्ति त्व प्रधान गीतिया, तीसरे में सहज प्रेमगीत और चौथे में ऐसे प्रेमगीत हैं जो आध्यामिकता और रहस्य के साथ वासना के रंगों से रंजित अत्यन्त गहन और उलके हुए हैं । बाद के युग में सामंतवादी व्यवस्था में गीतिकाव्य का विकास नहीं हो सका । संस्कृत गीति काव्य का पुनर्विकास जयदेव के गीत गोविन्द में दिखाई पड़ा, बौद्धों के गान और चंडीदास के पद इसी क्षेत्र

की उपज हैं । हिन्दी में गीति काव्य रचना का आरम्भ श्रंगार एवं शौर्य की परिभूमि पर हुआ । बीसलदेव रासो और जगनिक के आल्हखंड में इसकी कुछ झांकियां ही मिल पाई । हिन्दी के सर्वप्रथम गीतिकाव्य कवि विद्यापति ही ठहरते हैं । जिनकी रचना का प्रेरणा स्त्रोत जयदेव का गीतगोविन्द ही है । आप विद्यापति और जयदेव के काव्य की समता संबंधी जानकारी पिछली इकाइयों में प्राप्त कर चुके हैं । यहां हम विद्यापति के गीतिकाव्य की विशिष्टताओं तक ही विषय को सीमित रखेंगे ।

गीतिकाव्य की समस्त विशेषताएं विद्यापति के काव्य में पाई जाती है । गीतिकाव्य की सर्वप्रमुख विशेषता है । इसके प्रत्येक छंद का स्वतंत्र अस्तित्व रखना एवं पूर्वापर प्रसंग निर्देश के बिना भी भावाभिक्ति में समर्थ होना । यह विशेषता विद्यापति. में भी सर्वत्र हैं । प्रत्येक पद में पृथक मनोदशा को ग्रहण करते हुए नायक .नायिका की दशाओं का वर्णन अथवा स्वतंत्र चित्रों की योजना की गई है । प्रत्येक पद भाव स्वतंत्र के गुण से समृद्ध है । एक उदाहरण देखिए-

"पथ गति नयन मिलल राधा-कानन"
दुहू मन मनसिज धुरल संधान ।
दुहू-मुख हेरइत दुहु भेल-भोर
समय न बुझाय अचतुर चोर
3 चलल राजपथ छ उरझाई
कह कवि सेखर छ चतुराई ।

उपर्युक्त पद्यांश (अलग- अलग पदों के) प्रेम प्रसंग से संबद्ध होते हुए भी भाव स्वातंत्र्य युक्त है । पद एक दूसरे से मिले हुए हैं लेकिन इनमें पूर्वापर संबंध नहीं है । यदि प्रथम पद में राधा-कृष्ण के राजपथ पर मिलने का चित्र आका गया है तो दूसरे में कृष्ण के हृदय में राधा के रूप सौन्दर्य को देखकर पड़े प्रभाव का और तीसरे में प्रेमियों के चातुर्य का वर्णन है । यही विद्यापति के गीतिकाव्य का वैशिष्ट्य है कि सभी पद श्रंगार से ओतप्रोत होते हुए भी एक दूसरे से पृथक भावों एवं अनुभावों को वहन करते है ।

गीतिकाव्य की दूसरी बड़ी विशेषता व्यक्तिगत अनुभूतियों की प्रमुखता है । इसमें निजी भावनाओं को ही प्रमुखता दी जाती है । बाह्य संसार की संवेदना को कवि अधिक व्यक्त करता है किन्तु उन्हें अपना बना कर । विद्यापति की संपूर्ण पदावली के भाव एक व्यक्ति के ही भाव हैं । राधा और कृष्ण दोनों ही अपने व्यक्तिगत विरह मिलन के झूले में झूलते हैं राधा मिलन के क्षणों में आनन्द विभोर रहती है किन्तु विरह में अपनी वेदना को नाना रूपों में व्यक्त करती है । साथ ही राधा की वेदना व्यक्तिगत है उससे संसार की और किसी सृष्टि का संबंध नहीं । यद्यपि पदावली के पदों में राधा एवं कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं का ही वर्णन है फिर भी उनके कवि की अनुभूति एवं कल्पना स्पष्ट परिलक्षित होती है ।

कवि विद्यापति ने अवेगपूरित संयोग एवं वियोग की दशाओं का वर्णन प्रत्येक पद में एक् नये भावबोध को लेकर किया है । गीतिकाव्य की एक और विशेषता संगीतात्मकता

है जिसके बारे में पिछले प्रसंगों का उल्लेख किया जा चुका है । इनमें गुण के कारण विद्यापति के गीत मानवमन में अभिलषित भावों के साथ सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं । विद्यापति सम्भवत: अपने काल के एक अच्छे गीतकार थे, जिन्होंने गीत को उसकी स्वाभाविक प्रकृति के साथ पहचान कर एक अभिनव पूर्णता और उत्कर्ष प्रदान किया । विद्यापति में लय और धुन की मौलिकता तो है ही, एक अछूती- भाव संवेदना को व्यक्त करने में समर्थ ग्रामीणता अथवा नैसर्गिकता भी लक्ष्य की जा सकती है । यह एक अद्भुत कौशल है, क्योंकि विद्यापति जैसा बहुपद और शास्त्रीय ढ़ंग से अनेक ग्रंथो के रचयिता अनेक कष्टसाध्य प्रयत्नों से ही लोक जीवन की अभिव्यक्ति सहजता को कायम रख सकता था और इस कार्य में महाकवि को अभूतपूर्व सफलता मिली ।

4.3.4 लय, छंद एवं अलंकार

काव्य में शिल्प अथवा रूपगत सौन्दर्य अनिवार्य है । यह मान्य है कि कवि की प्रत्येक अनुभूति विशिष्ट होती है । किन्तु यह भी उतना ही मान्य है कि कवि अपनी अनुभूति, अपने भाव तथा काव्य सौन्दर्य के अनुकूल शिल्प का विधान करता है । शिल्प विधान के समर्थ होने पर ही काव्य की सर्वांगीण सफलता संभव है । महाकवि विद्यापति ऐसे ही एक कवि हैं जिन्होंने भाव और शिल्प के उभयविध (दोनों) सौन्दर्य का समन्वय बड़े चमत्कारी ढ़ंग से अपने काव्य में किया है । ऐसा इस कारण संभव हो पाया है क्योंकि वे रससिद्ध और कलासिद्ध दोनों है ।

रूप अथवा शिल्प सौन्दर्य के अन्तर्गत वर्ण शब्दयोजना, छंद विधान, शब्दगुण, भाषा का वक्रोक्ति विधान, अलंकार नियोजन आदि सभी समाविष्ट है । विद्यापति ने अपने काव्य में इन सभी शिल्पगत वैभवों को समाविष्ट किया है । बल्कि यह कहना उचित है कि पदावली का प्रमुख आकर्षण उसका शिल्पविधान है । पदावली की अमृत वर्षा भाव-वैभव को उपयुक्त सरस और मधुर भाषा- शैली में व्यक्त करती है । वक्रोक्ति कार कुंतक द्वारा निर्दिष्ट माधुर्यादि गुण, अलंकारों और सुंदर विन्यास, शब्दों की शरशथ्या, वक्राविधान समस्त वाणी चमत्कारों के दर्शन विद्यापति के काव्य में होते हैं । वक्रोक्ति के विभिन्न चमत्कारों के निदर्शन से पदावली का शिल्पविधान भाषिक वैभव से परिपूर्ण है । सर्वत्र भाषा भावों के संवेग की सहचरी है । विद्यापति की वाणी प्रसाद (सहज) और माधुर्य गुण से युक्त है । पदावली की देसिल बयना स्कूर्तिमय होकर भी अलंकृत है । काव्य भाषा कल्पना प्रधान होती है । सामान्य अनुभूति की अभिव्यक्ति सरलभाषा से सहज संभव है । किन्तु कवि की गहन अनुभूति जब काव्य का विषय होती है तो भाषा स्वत: अलंकृत हो जाती है । विद्यापति अलंकार शास्त्र में पारंगत थे । वे केशवदास की तरह अलंकारवादी कवि नहीं थे । उनके लिए अलंकार प्रयोग सहज काव्य-प्रयोग है । शब्दालंकार अर्थालंकार तथा उभयालंकार उनके काव्य को सुशोभित करते हैं । इनका प्रयोग कहीं कृत्रिम नहीं । वस्तुत: विद्यापति ही कविता अलंकारों के भार से कहीं भी दबी हुई नहीं प्रतीत होती जो भी अलंकार आए है वे यथा स्थान

अनायास एवं सहज स्वाभाविक जान पड़ते हैं । रूपक, उपमा, श्लेष, अनुप्रास, वीप्सा, अनन्वय, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अपहन्हुति तथा व्यतिरेक, अर्थान्तरन्यास, स्वाभावोक्ति, विभावना, पर्यायोक्ति विरोधाभास, व्याजस्तुति एवं अन्य सभी मान्य अलंकारों के उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि विद्यापति एक अलंकार सिद्ध कवि थे । वे अलंकारवादी नहीं थे, उनकी दृष्टि में अलंकार काव्य में निहित भाव और रस की पुष्टि ही करते हैं । सौन्दर्य चित्रण से अलग अलंकारों का कोई महत्व नहीं । भाव सबल होने पर अलंकार स्वभावत: निःसृत हो गए है । यही कारण है कि पदावली के कुछ पदों में अधिक अलंकार एक साथ उपस्थित हो गए हैं । उनकी एकत्र अवस्थिति काव्य में इन्द्रधनुषी, सौन्दर्य की सृष्टि करती है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद में एकाधिक अलंकारों की शोभा दृष्टव्य हैं ।

माधव कि कहब सुन्दरि रूपे
कतेक जतन विहि आनि समारल देखलि नयन सरूपे ।
पल्लव राज चरण युग सोभित गति गजराजक भाने ।
कनक कदलि पर सिंह समारल तापर मेरा समाने ।
मेरू उपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रूचि पा ।
मनिमय हार धार वह सुरसरि ते नहिं कमल सुखाई ।
अधर बिंब सन दसन दाड़ीय -विजु रवि ससि उगथिक पासे ।
राहु दूरि बसु नियरो न आवथि तैं नहिं करथि गरासे ।
सारंग नयन, वचन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने ।
सारंग उपर उगल दस सारंग केलि करथि मधु पाने ।
मनहि विद्यापति सुन कर यौवति एहन जगत नहिं जाने ।
राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमादइ प्रति माने ।

इस पद में एक साथ अनुप्रास, उपमा, रूपकातिशयोक्ति उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति तथा वस्तुत्प्रेक्षा का चमत्कार देखा जा सकता है । इस पद की सप्रसंगव्याख्या आप पिछली इकाई में देख सकते हैं । कविता के सौन्दर्य में छंद का निजी स्थान हैं । संस्कृत में छंदों को वेदों का पैर कहा गया है । पैरों के बिना न तो मनुष्य खड़ा हो सकता है न चल- फिर सकता है, उसी प्रकार छंद बिना काव्य गतिहीन रहता है । विद्यापति के काव्य में छंद विधान की भी अनुपम क्षमता मिलती है । उन्होंने संस्कृत प्राकृत के छंदों को तो अपनाया ही है मौलिक छंद भी रचे हैं । कीर्तिलता और कीर्तिपताका में अपभ्रंश के प्रिय छंद दोहा को अपनाया है किन्तु पदावली कवि की निजी काव्य वाणी है जिसमें लोक मानस के अनुरूप छन्दों में कवि ने अपनी वाणी को पेय रूप में रखा । गेयता के लिए दोहा जैसा लघु, छंद अनुकूल नहीं था, अत: जयदेव की प्रेरणा से उन्होंने सार, सरसी, विष्णुपद जैसे छंदों में लोकप्रियता का प्रमाण दिया । कवि ने चौपाई को खास रूप में चुना जो देसिल बयना के लिए सबसे उपयुक्त था । नाग, उल्लास, रजनी और गीता ऐसे छंद हैं जिनका प्रयोग विद्यापति के पूर्ववर्ती काल में

नहीं मिलता । इस प्रकार विद्यापति के काव्य दर्शन में परम्परा पालन के साथ मौलिक उद्भावना भी प्राप्त होती है ।

छंद विधान में छंद के साथ लय का घनिष्ठ संबंध रहता है । जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, छंद वास्तव में बंधी हुई लय के भिन्न भिन्न छंदों का योग है, जो सुसंगति और सुषमा को अभिव्यक्ति ही संगीतात्मक है । यह अभिव्यक्ति कवि के अंतरमन की अभिव्यक्ति ही है । भाव को अनुरूप छंदों में बाँधना गीतिकाव्य की सबसे बड़ी सफलता है । कभी कभी कथ्य भाव को अधिक आकर्षण और बोधगम्य करने के लिए राग रागिनियों का विधान करना पड़ता है । विद्यापति के माधुर्यपूर्ण वर्ण चयन को रागबद्ध करने की प्रणाली ने परवर्ति गेय कृष्ण काव्य के लिए एक प्रतिमान स्थापित किया । कभी-कभी उन्होंने दो छंदों को मिलाकर एक अभिनव प्रयोग भी किया । उदाहरण के लिए अद्धरली और हरिगीतिका मिश्रित यह छंद देखिए-

आएल उनमद समय वसंत
दारून मदन निदारून कंत
ऋतुराज आज विराज हे सखि
नागरी जन वंदिते
नवरंग नव दल देखि उपवन
सहज सोमित कुसुमिते

पदावली में अहीर, लीला, महानुभाव, चंद्रिका हाकलि, चौबेला, पढहरि, सुखदा, रूपमाला, झूलना और मरहठा माधवी का प्रयोग भी मिलता है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विद्यापति की वाणी उनके हृदय से स्वत: झरने की तरह फूटी है । वह भावानुरूप छंद बद्ध हुई है । शास्त्रीयता कवि के लिए गौण है लोकायन ही उनका सही काव्य दर्शन है ।

4.4 विचार संदर्भ और शब्दावली

काव्य संवेदना	- कविता की मूल भावना
लोक चेतना	- लोकमानस
मीमांसा	- विवेचना
उत्पादक	- पैदा करने वाला
परिवर्तक	- बदलने वाला
विलक्षण	- अद्भुत
भावप्रवणता	- भाव पैदा करने का गुण
चिरंतन	- अमर
देसिलवयन	- देशी भाषा (मैथिली)
परिधान	- वस्त्र, पोशक
कुंठा	- मन की उलझन
बारहमासा	- बारह महीने में नायिका की मनोदशा के अनुसार प्रकृति वर्णन

नखशिख वर्णन - नायिका के नाखून से चोरी तक का वर्णन ।

पार्थिव - भौतिक

अनिर्वचनीय - जिसे वाणी द्वारा प्रकट न किया जा सके ।

विश्वात्मा - समग्र या पूर्ण मानवता

आध्यात्मिक - आध्यात्म (धर्म-दर्शन) संबंधी

सराहित - प्रशंसित

व्यष्टि - एक मनुष्य, निजीपन

समष्टि - सामाजिक, समग्रता

संसपुकती - जुड़ाव

बिम्ब - तुलना के लिए दिया गया चिन्ह

उदभासित - प्रकट

पर्यावरण - परिवेश

मूल्यबोध - आदर्श, उचित-बोध

पर्यवेक्षण - ठीक से देखना

मूर्त - साकार

नक्कारखाने में तूती की आवाज - एक मुहावरा जिसका अर्थ है उपेक्षित, अनसुनी

आत्मविज्ञापन - अपना प्रचार

उन्मीलन - आँखें खोलना

वाड्मय - ज्ञान का भंडार

4.5 सारांश

विद्यापति का जो अध्ययन आपने इस इकाई में किया उसके आधार पर जो बिन्दु उभरते हैं वे इस प्रकार हैं-

विद्यापति मैथिल पुनर्जागरण के उज्जवलतम सितारे थे । वे व्यवसाय से कवि न होते हुए भी कवि गुरू थे । जीवन में उनकी विभिन्न रुचियां थी, दृष्टिकोण अत्यंत उदार था, उनके विचार समय से बहुत आगे थे और उनका काव्य विरोध के बीच सामंजस्य ही एक सफल कोशिश है । उन्होंने ऐसी अमर कविता रची जो युगों तक सौन्दर्य की वस्तु और आनंद का स्त्रोत रहेगी ।.

विद्यापति के दो अवदान सदा स्मरण किये जाएंगे । पहला देसिल बयना जनभाषा को काव्य रचना के योग्य सिद्ध कर उसे संस्कृत के समानान्तर स्थापित करना तथा दूसरा उस काव्यानंद को सर्वजन सुलभ कर देना जो कार्य केवल संस्कृत काव्य प्रदान करता था । विद्यापति की काव्य कला की महत्वपूर्ण उपलब्धि है संगीत और काव्य का पूर्ण विलयन । उनके गीतों में चित्रित मनोदशाओं के साथ सुरीलापन सदैव मेल खाता है । उन्होंने इस तथ्य पर सदा दृष्टि रखी कि संगीत वस्तुत: भाषा को सरसता प्रदान करता है और सुरीलेपन के अभाव में काव्य अपने पूर्ण सौन्दर्य से रहित हो जाता है ।

विद्यापति ने भाषा का प्रयोग केवल अर्थ के लिए नहीं किया बल्कि सौन्दर्य की लयात्मक सृष्टि के लिए किया । उनकी भाषा में संस्कृत अलंकार शास्त्र के दोनों गुण माधुर्य और प्रसाद समान रूप में उपलब्ध होते हैं परम्परागत मुहावरों की नवीन अभिव्यक्ति के साथ उन्होंने नये मुहावरे और नई सूक्तियां भी गढ़ी । यह उनका भाषिक कौशल ही था जिसके कारण वे जितने आस्थामय भक्त के रूप में दिखाई पड़ते हैं उतने ही रागमय श्रृंगारिक के रूप में । उन्होंने अपरूप की साधना की जो मूर्त्त सौन्दर्य था । अपने भाव भले ही उन्होंने संस्कृत श्रृंगार काव्य के विशाल सागर से ग्रहण किये किन्तु जब उनका पुनसर्जन किया गया, तब वे उनके हृदय के स्वत: स्फूर्त उद्‌गार थे ।

विद्यापति ने प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया, मानवीय भावनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति चित्रण करते हुए उसका मानवीकरण भी किया । यही कारण है चाहे जिस भी मौसम को उनकी कलम ने छुआ, उसका सहज, स्वाभाविक जीवन्त वर्णन किया । विद्यापति का वर्णन ज्ञान जितना सूक्ष्म था, उतने ही प्रभावशाली और मनोरम थे, इनके द्‌वारा अंकित वर्ण चित्र बिम्ब ठोस और स्पष्ट हैं । उन्हें जो कुछ भी सुन्दर लगा, उसे उन्होंने अपनी उर्वर कल्पना के सहारे सुन्दरतम बना दिया ।

श्रंगार के गीतों के ही समान उनके शांतरस के गीत अत्यन्त प्रभावशाली हैं और विशिष्ट मनोदशाओं के सर्जक है । विद्यापति के प्रेम गीत अपनी विश्वजनीन विषय-वस्तु के कारण ही नहीं बल्कि कवि गुर। के उत्कृष्ट रचना कौशल के कारण भी हुए है । उनके सभी गीत गेय हैं जो संस्कृत अलंकार शास्त्र में मुक्तक काव्य कहे जाते हैं । अपनी कल्पना शक्ति से विद्यापति ने स्वेच्छानुसार एक विशिष्ट भावना का अंतदर्शन किया और उसे सच्चाई, पारदर्शिता, वास्तविकता, अनुभूति प्रवणता और सहानुभूति के साथ चित्रित किया कि उसमें वर्णित स्थितियों में प्रत्येक जन ने स्वयं को अभिलिप्त पाया । उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी । इस दृष्टि से उन्हें युग गुर। की संज्ञा दी जा सकती है । सचमुच उनसे युग को बुद्धि और विवेक की शिक्षा तथा जीवन की मधुरिमा पूरित वाणी मिली । वे मैथिल कोकिल ही नहीं, जन वाणी के कोकिल थे । विद्यापति के काव्य का सच्चा अध्ययन उनके पदों में निहित भाव सौन्दर्य का आकलन करना है कि किसी धार्मिक मतवाद का पक्ष लेकर काव्य सौन्दर्य को मलिन करना । कवि विद्यापति द्‌वारा प्रस्तुत पदावली काव्य में ऐसे भाव सौन्दर्य का अखण्ड रूप उपलब्ध होता है जहाँ नवीन और प्राचीन, परिचित और अपरिचित, लौकिक और अलौकिक, व्यष्टि और समष्टि आदि तत्व समन्वित होकर कवि दृष्टि का उन्मीलन करते हैं ।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. विद्यापति की काव्य संवेदना का मूल्यांकन कीजिए ।
2. विद्यापति को साधक कहना उचित है या श्रृंगारि- अपने शब्दों में लिखिए ।
3. सिद्ध कीजिए विद्यापति अपरूप के कवि थे ।

4. विद्यापति के काव्य शिल्प पर विचार कीजिए ।
5. गीतिकाव्य के जनक के रूप में विद्यापति के कवि व्यक्तित्व का परिचय दीजिए ।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. विद्यापति को 'मैथिल कोकिल' क्यों कहा जाता है ?
2. विद्यापति के जीवन दर्शन का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
3. विद्यापति के प्रिय अलंकार कौन -कौन से है ?
4. विद्यापति की काव्य भाषा पर टिप्पणी लिखिए ।
5. विद्यापति के काव्य रूप पर विचार कीजिए ।

4.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. बुद्धिनाथ झा - विद्यापति सौन्दर्य के कवि, ज्ञान भारती, दिल्ली
2. डॉ. मुनीश्वर झा - कवि विद्यापति और ऊनका भूपीरक्रमण, संस्कृत कॉलेज, कलकत्ता
3. डॉ. शिव प्रसाद सिंह - कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद

इकाई- 5 कबीर का काव्य

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 कवि-परिचय

5.2.1 जीवन-परिचय

5.2.2 रचना-परिचय

5.3 काव्य वाचन तथा सन्दर्भ सहित व्याख्या

5.3.1 मोकों कहाँ ढूंढ़े बन्दे..... स्वाँस में

5.3.2 जाग पियारी अब का सोवै..... अन्तर लागै

5.3.3 साधो सहज समाधि भली..... रहा समाई

5.3.4 ऐसा भेद विगूचन भारी..... न कोई

5.3.5 चलन चलन सबको कहत है..... बैकुंठहि आहि

5.3.6 साधो भाई.....के दासा

5.3.7 जाति न पूछो साध की..... झक मारि

5.3.8 पीछे लागा जाइ था..... धरोगे कौण

5.3.9 कबिरा प्याला प्रेम का..... मुक्ति बलाय

5.3.10 तोको पीव मिलेंगे..... ढोल रे

5.4 विचार सन्दर्भ और शब्दावली

5.5 सारांश

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.7 सन्दर्भ ग्रंथ उद्देश्य

5.0 उद्देश्य

यह इकाई भक्तिकाल के मुख्य आदि कवि कबीर के जीवन और काव्य से सम्बन्धित है । इस इकाई के अध्ययन से आप :-

कबीर के जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,

रचनाओं से परिचित हो सकेंगे ।

चुनी हुई मुख्य कविताओं का वाचन और आस्वादन कर सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

भक्तिकाल के कवियों में कबीर का महत्वपूर्ण स्थान है । उनका महत्व दो दृष्टियों से विशेष है । एक - वे भक्तिकाल के पहले, सबसे महत्वपूर्ण आदि कवि हैं । दो - निर्गुण भक्तिधारा के वे पहले सबसे ख्यातनाम भक्त-कवि है । निर्गुण भक्तिकाल के प्रवर्तन का श्रेय हिन्दी में उन्हें ही दिया जाता है । दरअसल निर्गुण रामभक्ति को

अपनी विशिष्ट पहचान पहली बार कबीर ने ही दी । निर्गुण रामभक्ति के साथ कबीर के समाज की पहचान भी जुड़ी हुई है । सगुण भक्तिधारा की रामभक्ति हो या कृष्णभक्ति, उसका आधार अन्ततः उदार सामन्तवाद और पुरोहितवाद ही है । वह तत्कालीन पतनशील सामन्तवाद और पुरोहितवाद की विरोधी होने के बावजूद परम्परागत शास्त्र, मंदिर, मूर्ति, अवतार, पंडित, तीर्थ आदि के जाल से अपने को मुक्त नहीं कर पाती । भक्ति के स्तर पर दलितों और स्त्रियों के प्रति उदार होने के बावजूद वह सामाजिक स्तर पर खुलकर उनकी सामाजिक समानता का समर्थन नहीं कर पाती । कुछ भी हो सगुण भक्तिधारा अन्ततः गैरश्रमवाली ऊँची जाति के लोगों का प्रतिनिधित्व करती है और उन्हीं का समर्थन भी । वह व्यवहारतः निम्न जाति के लोगों की ऊँची जाति से बराबरी की हिमायती नहीं है । निर्गुण भक्तिधारा, जिसके प्रवर्त्तक कबीर हैं, श्रम करके जीनेवाली कामगर जातियों का प्रतिनिधित्व करती है । यह धारा ईश्वर को किसी मंदिर, मस्जिद या धार्मिक पुस्तक में न मानकर सृष्टि के कण-कण में अखंड सत्ता के रूप में मौजूद मानकर उसकी आराधना करती है । यह दैनिक क्रियाकलापों से अलग अन्य किसी प्रकार के धार्मिक-सामाजिक कर्मकांडों और लोकाचारों की परमविरोधी है । कर्म और भक्ति की एकात्मकता में इस धारा का परम विश्वास है । कबीर इसी धारा के आदि प्रवर्त्तक और पहले प्रतिनिधि भक्त कवि हैं ।

5.2 कवि-परिचय

5.2.1 जीवन-परिचय

मध्यकाल के कई भक्त कवियों की तरह कबीर का पूरा जीवन जनश्रुतियों, अलौकिक घटनाओं, चमत्कारों से भरा पड़ा है । उनके जीवन के किसी प्रसंग के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । बात यह है कि वह जमाना लोकतंत्र का नहीं, सामन्तशाही कथा और सामन्तशाही में ऊँची जाति के संभ्रांत लोगों की जन्म से लेकर मृत्यु तक की मुख्य घटनाओं का लेखा-जोखा रखा जाता है । आधुनिक काल के पहले का हमारा इतिहास भी बड़े-बडे राजा-महाराजाओं बादशाहों के जीवन की मुख्य घटनाओं का वृतान्त है । कबीर का ताल्लुक अत्यन्त साधारण कामगर परिवार से था और सामाजिक व्यवस्था की विडम्बना उनके जन्म के साथ जुड़ गयी थी । किसी स्त्री-पुरूष की ही वे सन्तान थे, पर असली माता-पिता कौन थे आज तक उसका निराकरण नहीं हो सका है । साधारण परिवार से जुड़कर भी उन्होंने कर्म से असाधारण ख्याति प्राप्त की । लोगों की जन्म की तिथियाँ लोक प्रसिद्धि के बाद खोजी जाती हैं । कबीर ऐसे ही भक्त कवियों में से एक थे, जिनके जन्म और मृत्यु की तिथियाँ अभी तक पूर्ण निश्चित नहीं हैं । कबीर के जन्म-मृत्यु की निश्चित तिथियाँ नहीं है; बल्कि माता, पिता, बाल, बच्चे, शिक्षा, गुरू आदि की खोजबीन भी उनकी ख्याति के बाद की गई है। इसलिए कबीर के जीवन के बारे में संभावित रूप में ही कुछ कहा जा सकता है. प्रामाणिक रूप में कहने का दावा बिल्कुल नहीं किया जा सकता ।

कबीर पंथी ग्रंथों को कबीर की सबसे अधिक स्वीकृत जन्मतिथि का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज माना जाता है ।

चौदह सौ पचपन साल गये, चन्द्रवार इक ठाट तये ।

जेठ सुदी वरसायत को पूरनमासी प्रकट भये ।

इस दोहे में चौदह सौ पचपन 'चन्द्रवार 'जेठसुदी वरसायत और 'प्रकट' को लेकर हिन्दी विद्वानों में बड़े मतभेद हैं । सबसे बड़ी बात इस दोहे के बारे में यह है कि यह स्वयं कबीर का लिखा हुआ नहीं है । दूसरी बात कबीर के वास्तविक माता-पिता का पता नहीं है, इसलिए उनका लिखा होने का प्रश्न ही नहीं है । कुल मिलाकर यह एक कबीर पंथी का कथन है, जो उनका समकालीन भी नहीं है । उनकी कबीर के जन्म के प्रति अवतारवादी आस्था 'प्रकट' शब्द से बिल्कुल साफ है । कबीर के जन्म की अन्य तिथियाँ भी हैं, पर वे भी संदिग्ध है ।

कबीर की मृत्यु की तिथियाँ जन्म की तिथियों से भी ज्यादा विवादास्पद हैं, लेकिन इनमें जो सबसे अधिक ज्यादा कबीर पंथ में प्रचलित और विद्वानों द्वारा स्वीकृत ।तिथि है वह यह है-

संवत पन्द्रह सौ पछत्तरा किया मगहर को गौन ।

माघसुदी एकादशी, रल्यों पवन में पवन ।

'संवत पन्द्रह सौ पचहत्तर', के अलावा उनकी मृत्यु तिथि के रूप में 'पन्द्रह सौ उनहत्तर' 'पन्द्रह सौ उनचास' 'पन्द्रह सौ पाँच' है । इनमें से कोई प्रमाणित नहीं, केवल संभावित हैं । कबीर ने अपने पूर्ववर्ती भक्तों में नामदेव का नाम बड़े आदर से लिया है और उनकी कविता में 'मुगल' शब्द का उल्लेख नहीं है । नामदेव का समय और भारत में बाबर का आक्रमण दोनों की तिथियाँ निश्चित हैं । अत: कबीर का जीवन चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच ही बीता होगा ।

कबीर के जन्म स्थान को लेकर भी विवाद है । इन्हें ज्यादातर लोग काशी से जोडते हैं, कई विद्वान मगहर से । कुछ विद्वान उन्हें मगध (डॉ. सुभद्रा झा), आजमगढ़ के 'बेलहरा (डॉ. चन्द्रबली पाण्डेय) से जोड़ते हैं । इस विषय में केवल इतना कहा जा सकता है कि कबीर ने काशी और मगहर दोनों का नाम लिया है । इसलिए उनका सम्बन्ध दोनों से अवश्य था, पर जन्मस्थान इनमें से कौन है, यह संदेह से परे नहीं है । जनश्रुतियाँ कबीर की वास्तविक माँ रामानंद से आशीर्वाद प्राप्त एक विधवा ब्राह्मणी को कहती है और पालक माता-पिता नीमा और नीरू को । कबीर ने अपने माता-पिता के बारे में कुछ नहीं कहा है, इसलिए जनश्रुतियों की बातें पूर्णत: सत्य नहीं मानी जा सकतीं । इसी प्रकार कबीर की पत्नी का नाम कोई 'लोई' तो कोई रमजनिया और रसधनिया कहता है । उनके पुत्र-पुत्री के रूप में कमाल-कमाली का नाम लिया जाता है । पर कबीर ने अपने माता-पिता, पत्नी, बच्चों के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा है, इसलिए इस दिशा में सोचना सिर्फ अनुमान भिड़ाना है । 'कबीर' का नाम मुसलमानी है और उनकी भाषा में अरबी-फारसी के अनेक शब्द हैं । इसलिए इतना

कहा जा सकता है कि वे मुसलमानी परिवेश की तरह योगियों वैष्णवों के परिवेश से बखूबी परिचित थे । उनकी शिक्षा के बारे में जितनी अनिश्चितता है, उससे उलटा जाति (पेशे) के बारे में उतनी ही निश्चितता । कबीर मौखिक परम्परा के भक्त कवि हैं । इसलिए उन्होंने अपने मुँह से साखियों, पद, रमैनी का गायन किया, स्वयं अपने हाथों से लिखा नहीं । उनकी जाति सामान्यत: जुलाहा मानी जाती है । कबीर ने अपने कई पदों में स्वयं को जुलाहा और कोरी कहा है । पेशा उनका बुनना माना जाता है, लेकिन जाति से वे हिन्दू जुलाहा थे या मुस्लिम, इसको लेकर विद्वानों में मतभेद हैं । डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल उन्हें हिन्दू कोरी से मुस्लिम धर्मान्तरित जुलाहा कहते हैं और पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी नाथ मतावलम्बी पथभ्रष्टयोगियों से नवधर्मी जुलाहा । डॉ. युगेश्वर तो उनके जुलाहेगिरी के प्रति भी संदेह व्यक्त करते हैं और इसे एक आध्यात्मिक प्रतीक मानते हैं ।

कबीर के गुरु कौन थे, उन्होंने किससे दीक्षा ली थी, इसके बारे में कम विवाद नहीं है । इसके बारे में चार प्रकार की जनश्रुतियाँ है और हिन्दी के विद्वान इनमें से किसी एक भी जनश्रुति पर सहमत नहीं है । जनश्रुतियों के आधार पर कबीर के गुरु के सिलसिले में रामानंद, शेख तकी और पीताम्बर पीर के नाम लिये जाते हैं । हिन्दू परम्परा की जनश्रुतियाँ, जिसमें कबीर पंथ भी शामिल है, रामानंद को कबीर का गुरु मानती हैं । सबसे पहले हरिराम व्यास, जो कबीर के थोड़े ही परवर्ती थे, रामानंद को कबीर का गुरु सिद्ध करते हैं -

साँचे साधु जु रामानंद ।
जिन हरि जी सो हित करिजान्यों और जानि दुख दंद ।
जा को सेवक कबीर धीर अति सुमति सुरसरानंद ।
तब रैदास उपासिका हरि कौ, सूरसू परमानंद ।
इतने प्रथम तिलोचन नामा, दुख मोचन सुखकंद ।

इसके साथ कबीर के नाम कई साखियाँ और पद प्रचलित हैं जिसके आधार पर रामानंद को कबीर का गुरु सिद्ध किया जाता है । कबीर बीजक, जो कबीर की सबसे प्रामाणिक प्राचीन रचना मानी जाती है उसमें एक पद है जिसमें रामानंद के नाम सीधे राम लिख गया है - रामानंद राम रस माते । कहै कबीर हम कहि थाके । ' इसी प्रकार कबीर और रामानंद के शिष्य-गुरु सम्बन्ध के बारे में यह साखी बहुत प्रचलित है-

भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाये रामानंद ।
प्रकट करी कबीर ने सप्तदीप नव खंड ।

एक प्रमाण यह भी पेश किया जाता है कि 'काशी में हम प्रकट भये रामानंद चेताये । ' लेकिन हरिराम व्यास के कथन के सिवा कबीर के जिन पद साथियों में रामानंद का नाम आता है, उसमें कबीर ने कहीं नहीं कहा है कि रामानंद मेरे गुरु है । इन्हीं जनश्रुतियों का अनुकरण करते हुए बाबू श्यामसुन्दर दास, पं. रामचन्द्र को कबीर का गुरु मानते हैं । रामानंद को कबीर का गुरु मानने का एक महत्वपूर्ण आधार उनके

द्वारा बार-बार राम-नाम के उल्लेख को बताया जाता है । दूसरा कारण उनके ऊपर वैष्णव भक्ति के प्रभाव को माना जाता है, लेकिन अन्य ठोस तथ्य यह भी है कि रामानंद और कबीर के विचारों में इतना भेद है जैसे कबीर राम में विश्वास करते हुए अवतार, मूर्तिपूजा. वर्ण व्यवस्था, छुआछूत को नहीं मानते कि उन्हें रामानंद का शिष्य मानना संदेहास्पद है । कबीर काव्य में ऐसे अन्तर्साक्ष्य मिलते हैं जिसमें वे राम को ही अपना सतगुरु कहते हैं । जैसे तुम सत गुरु हौं नौतम चेला ।, कबीर पगुरा अलह राम का सोई गुरू, पीर हमारा आदि ।

मुस्लिम परम्परा के लोग कबीर के गुरु शेखतकी- को मानते हैं । बीजक की दो रमैनियों में शेखतकी का नामोल्लेख भी है, पर यह नामोल्लेख रमैनी में भी है और जिस रूप में हैं उससे शेखतकी कबीर के गुरू नहीं हो सकते । उदाहरण देखिये -

'नाना नाच नचाय के, नाचे नट के भेख ।
घर-घर अविनासी बसे. सुनहु तकी तुम सेख ।

'सुनहु तकी तुम सेख सम्बोधन किसी हालत में गुरु के लिए नहीं हो सकता ।

गुरू ग्रंथ साहिब के एक पद में पीताम्बर पीर का नामोल्लेख है-

हज हमारो गोमती तीर । जहाँ बसहि 'पीताम्बर पीर
बाहु बाहु किया खुबु गावत है । हरि का नाम मेरे मन भावत है ।

इस पद से पीताम्बर पीर एक वैष्णव भक्त लगते हैं.कबीर के गुरु नहीं ।

कबीर ने सतगुरू की महिमा का बड़ा बखान किया है, पर उनका सतगुरू कोई व्यक्ति या आतमराम है, इस संदर्भ में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है । डॉ. धर्मवीर अनेक तथ्यगत प्रमाणों के आधार पर रामानंद और कबीर के बीच गुल्लशिष्य सम्बन्ध वाली जनश्रुति का निषेध करते हैं । शेखतकी और पीताम्बर पीर वाले तर्क रामानंद तर्क से बहुत ज्यादा कमजोर हैं । रचना परिचय जितने विवाद का विषय कबीर का सम्पूर्ण जीवन है उससे कम विवाद का विषय उनका रचनाकर्म नहीं है । अब तक हिन्दी के अनेक विद्वानों ने कबीर की प्रामाणिक रचना की खोज के सिलसिले में अनेक प्रयास किये हैं । अनेक प्रयास के फलस्वरूप जो रचनाएं आयी हैं वे निम्नलिखित हैं

कबीर वचनावली (सन् 1916) सं. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
कबीर ग्रंथावली (सन् 1928) सं. बाबू श्यामसुन्दर दास
कबीर ग्रंथावली (सन् 1961) सं. डॉ. पारसनाथ तिवारी
कबीर ग्रंथावली (सन् 1969) सं. डॉ. माता प्रसाद गुप्त
सन्त कबीर (सन् 1943) सं.. डॉ. रामकुमार वर्मा
कबीर-बानी (सन् 1965), सं. अली सरदार जाफरी
कबीर-बीजक (सन् 1972) सं. डॉ. शुकदेव सिंह
कबीर वाडमय खण्ड । रमैनी (सन् 1972)

खण्ड-2 सबद (सन् 1981) सं. डॉ. जयदेवसिंह डा. वासुदेव सिंह

खण्ड-3 साखी (सन् 1976)

कबीर समग्र (सन् 1991),सं. डॉ. युगेश्वर

कबीर: साखी और सबद (सन् 2007) सं. डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल

कबीर के नाम पर रचनाओ की इतनी संख्या देखकर साधारण पाठक असमंजस में पड़ सकता है कि इनमें कौन सी रचना कबीर की असली रचना है । कबीर के बारे में यह जनश्रुति है कि वे पढ़े-लिखे थे या नहीं; इस बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है, लेकिन उनकी वाणी पर लोक कंठ का अधिकार देखकर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वे गाते जरूर थे, लेकिन स्वयं लिखने और संजोने में विश्वास न करते थे । दरअसल वे मौखिक परम्परा के पहले आशु कवि हैं जिनकी साखियों, पदों और रमैनियों को जनता ने और पंथ के लोगों ने इतना प्यार किया और सहेज कर रखा भी । इस प्यार और संजोने वालों की व्यक्तिगत रुचि और भाषा का स्पष्ट असर कबीर के पाठों पर देखा जा सकता है । जहाँ कबीर ग्रंथावलियो पर राजस्थानी परम्परा का पाठ और राजस्थानी भाषा का प्रभाव आधारभूत सिद्ध हुआ है वही संतकबीर' का आधार 'गुरूग्रंथ साहिब' में संकलित कबीर की वाणियाँ हैं । गुरू ग्रंथ साहिब का संकलन सम्पादन पंजाब क्षेत्र में हुआ और संकलित करने वाले अर्जुन देव एक सिखगुरू थे, तो स्वाभाविक है कि कबीर की वाणी में पंजाबीपन झलकेगा । इसी प्रकार डॉ. शुकदेवसिंह ने कबीर पंथ में सर्वाधिक मान्य 'कबीर बीजक का जो सम्पादन किया है उसका मूलाधार पूरब की भगताही शाखा का पाठ है । इस पाठ पर पूरबी बोली का ज्यादा प्रभाव दिखना भी अस्वाभाविक नहीं है । इन पाठों के आधार पर कबीर के मूलपाठ और उनकी भाषा के वास्तविक रूप का पता लगाना बड़ा दुष्कर काम है । केवल इतना कहा जा सकता है कि कबीर का ज्यादातर जीवन काशी और मगहर के बीच ही बीता था, इसलिए उनकी भाषा का आधार इन दोनों के बीच प्रचलित भाषा ही रही होगी । जहाँ तक वास्तविक पाठ का सवाल है उसके बारे में प्रामाणिक रूप में कुछ इसलिए नहीं कहा जा सकता कि कबीर ने स्वयं कुछ नहीं लिखा है, लिखने वाले दूसरे थे और ये सब कबीर के परवर्ती हैं । ' इसलिए कबीर के पाठों में सबसे ज्यादा प्रक्षेपण हुआ है । कबीर के श्रद्धालुओं और सम्प्रदाय के लोगो ने अपनी रचनायें कबीर के नाम से चला दी है । ऐसी हालत में कबीर की मूल रचना के विषय में संभावित रूप से विचार किया जा सकता है पूर्णत: प्रामाणिकता का दावा नहीं किया जा सकता । डॉ. युगेश्वर ने कबीर की वाणी का इतना विस्तार देखकर मूलपाठ की खोज करने के बदले उनके नाम पर लिखित - मौखिक साहित्य का संग्रह करना श्रेयस्कर समझा । डॉ. पुरूषोत्तम अग्रवाल ने कबीर की रमैनियों को अपने संकलन में छोड़ते हुए सिर्फ साखियों और पदों को लिया । इस संकलन का महत्व विषय की दृष्टि से साखियों और सबदों का संकलन है ।

5.3 काव्य-वाचन तथा सन्दर्भ सहित व्याख्या

5.3.1 मोकों कहीं ढूढे बन्दे..... स्वाँस में

मोकों कहाँ ढूँढें बन्दे, मैं तो तेरे पास में ।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में ।
ना तो कौनो क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में ।
खोजी होय तो तुरतै मिलि हों, पल भर की तलास में ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधों, सब स्वासन की स्वाँस में ।

सन्दर्भ - प्रस्तुत पद कबीर-वाणी की मौखिक परम्परा में स्वीकृत है और पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा संकलित 'कबीर-वाणी' से लिया गया है । इसमें ईश्वर की उपस्थिति अपने हदय के अन्दर बतायी गयी है ।

प्रसंग- भारतीय चिन्तन परम्परा में ईश्वर के स्वरूप को लेकर मुख्यत: दो धारणाएं हैं । एक-निर्गुण (पारमार्थिक) दो-संगुण (व्यावहारिक) । ईश्वर की सत्ता तीन रूपों में मानी जाती है- आत्मा में (अन्तर्गामी), विश्व में (विश्वरूप), आत्मा और विश्व से परे (विश्वाजीत) । कबीर ईश्वर के मात्र निर्गुण रूप को मानते हैं और उसकी सत्ता शरीर (पिंड) में, ब्रह्माण्ड में और दोनों से परे मानते हैं । उनका मानना है कि ईश्वर सबमें समान रूप से स्थित है और सबसे अतीत भी है । लेकिन जहाँ तक उसे खोजने और प्राप्त करने की बात है, वे अपने भीतर के 'आत्मराम से परिचित नहीं है तो वह अपने बाहर के परमात्मा को नहीं प्राप्त कर सकता है । कबीर का अपना स्पष्ट पक्ष यही है।

व्याख्या - कबीर ईश्वर की तरफ से बन्दों (भक्तों) से कहते हैं कि हे बन्दे ! तू मुझे अपने से बाहर कहीं खोज रहा है । मै तो तुम्हारे पास हूँ तुम्हारे अन्दर ही रमा हुआ हूँ।

यदि तुम अपने अन्दर मुझे नहीं खोज सके तो मैं तुम्हें देवल (मंदिर), मस्जिद, काबा और कैलाश कहीं नहीं मिल सकूँगा । यदि तू मेरा साक्षात्कार अपने भीतर नहीं कर पाया तो मैं मेरे निमित्त किये जाने वाले किसी प्रकार के कर्मकाण्ड योग-वैराग्य साधना से मिलने वाला नहीं हूँ । सौ बातों की एक बात हैं कि तू मुझे व्यर्थ ही मंदिर-मस्जिद, तीर्थ और कर्मकाण्डों में ढूँढ रहा है । मैं तो तुम्हारे भीतर ही हूँ । सबसे पहले तू मुझें अपने अन्दर ही ढूँढ । जो वास्तव में मेरा खोजी है उसे तो मैं पलभर के प्रयत्न में मिल जाता हूँ पर जो सच्चा खोजी नहीं है, सिर्फ मंदिर-मस्जिद, तीर्थो का चक्कर काटता है, कर्मकाण्डों में उलझा रहता है । लाख कोशिशों के बाद भी मैं उसे नहीं मिलता हूँ । कबीर कहते हैं कि साधो भाई सुनो, जो ईश्वर मेरी स्वाँस में है, वही सभी प्राणियों के स्वासों का स्वाँस अर्थात् मूलाधार प्राण है । उसकी सत्ता के कारण ही सब प्राणियों की सत्ता है ।

विशेष-

1. कबीर ने इस पद में बाह्य साधनों से अधिक महत्व आत्मसाक्षात्कार को दिया है ।
2. आत्मानुभव और आत्मसाक्षात्कार की तुलना में कबीर ने मंदिर-मस्जिद, तीर्थ और कर्मकाण्ड की निरर्थकता सिद्ध की है ।
3. कबीर ने ईश्वर के आत्मरूप पर सर्वाधिक बल यथार्थ अनुभव की जमीन पर दिया है, क्योंकि हम सबसे ज्यादा अपने को जानते हैं । उनका यह आत्मानुभव उनकी सामाजिक स्थिति से सीधे जुड़ा हुआ है ।

5.3.2 जाग पियारी अब का सोवै.....अन्तर लागै

जाग पियारी अब का सोवै । रैन गई दिन काहे को खोवै । ।
जिन जागा तिन मानिक पाया । तैं दौरी सब सोय गँवाया । ।
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी । कबहुँ न प्रिय की सेज सँवारी । ।
तै बौरी बौरापन कीन्हीं । भर जोवन प्रिय अपन न चीन्हीं । ।
जाग देख पिय सेज न तेरे । ताहि छाँडि उठि गये सबेरे । ।
कहैं कबीर सोई धुन जागै । शब्द-बान उर अन्तर लागै । ।

सन्दर्भ - रचना का और रचना का सन्दर्भ (5.4.1) देखिए । प्रस्तुत पद एक आत्मोद्-बोधन गीत है । कबीर अपने को ही जगा और समझा रहे हैं ।

प्रसंग- भक्तिकाल का हर भक्त भगवान से अपना अनिवार्य सम्बन्ध जोड़ता है । किसी को कोई सम्बन्ध सर्वाधिक प्रिय होता है तो किसी को कोई । कबीर भगवान से अपने सम्बन्ध इजहार के लिए पति-पत्नी संबंध द्वारा परमेश्वर को प्राप्त करने का उपाय समझा रहे हैं ।

व्याख्या - हे प्यारी आत्मा जागो, अभी तक अज्ञान की रात समझकर क्यों सो रही हो? अज्ञान की रात तो कब की बीत गयी है, अब तो ज्ञान का दिन (प्रकाश) निकल आया है, इस अमूल्य समय को सोकर क्यों व्यर्थ कर रही हो? जो दिन में जागता है उसे ही प्रकाश का माणिक्य मिलता है । तू तो इतनी पागल है कि सोकर रत्न जैसा प्रकाश गँवा दिया है । अज्ञान के पागलपन में शान को खो दिया है । तुम्हारे प्रिय परमेश्वर तो बहुत चतुर हैं और उनके साथ रहकर भी तू इतनी बेसुध हो गयी कि अपने प्रिय परमेश्वर को ठीक से पहचान ही नहीं पायी । जागकर देखो कि तेरे प्रिय तेरे जागने के पहले ही सेज छोड़कर सुबह-सुबह उठकर कहीं और चले गये हैं । यह तो अच्छी बात नहीं है कि तुम्हारा प्रिय तुम्हारे साथ नहीं है और तू इससे बेखबर है । कबीर कहते हैं कि हे प्यारी आत्मा प्रिय के प्रति लगन उसी औरत के भीतर जागती है जिसके हृदय में अपने प्रिय का शब्द बाण लगता है । अपने प्रिय के शब्द-वाण के दर्द को जो औरत जानती है, उसी की सच्ची लगन अपने प्रिय से होती है ।

विशेष -

1. पति-पत्नी के आत्मीय सम्बन्धों की जमीन पर कबीर ने अपने और परमात्मा के आपसी सम्बन्धों को समझने की कोशिश की है । लौकिक अर्थ से ही अलौकिक अर्थ को ठीक से समझा जा सकता है ।
2. भारतीय चिन्तन परम्परा में आत्मा स्त्री रूप में स्वीकृत है ।
3. कबीर के पद की जमीन राम-सीता, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती, दुष्यन्त-शकुन्तला पुरूरुवा-उर्वशी के दाम्पत्य अनुभव से भिन्न सामान्य दम्पत्ति का अनुभव है ।

5.3.3 साधो, सहज समाधि भली..... रहा समाई

साधो, सहज समाधि भली ।
साई ते मिलन भयो जा दिन तै सुरत न अन्त चली । ।
ऑख न मूँदूँ कान न रूधूँ, काया कष्ट न धारूँ । ।
खुले नैन पहचानू हँसि हँसि, सुंदर रूप निहारूँ । ।
कहूँ सो नाम, सुनूँ सो सुमिरन, जो कछु करूँ सो पूजा । ।
गिरह-उद्यान एक समरूप देखूँ, भाव मिटाऊं दूजा । ।
जहँ-जहँ जाऊँ सो परिकरमा, जो कछु करूँ सो सेवा । ।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत, पूंजू और न देवा । ।
शब्द निरन्तर मनुआ राता, मलिन वचन का त्यागी । ।
उठत-बैठत कबहूँ न छूटे, ऐसी तारी लागी । ।
कहैं कबीर यह उन्मनि रहनी, सो परगट करि गाई । ।
सुख दुख के इक परे परमसुख, तेहि में रहा समाई । ।

सन्दर्भ - रचना और रचनाकार के लिए 5.3.1 देखिए । जीवन के दैनिक क्रिया-कलापों को ईश्वरमय बना लेना ही सहज समाधि और परमसुख है ।

प्रसंग - सगुण भक्तिधारा और मुस्लिम मजहब अपने-अपने ईश्वर और खुदा को पाने लिए किसी न किसी स्थूल भौतिक साधन की मदद लेते हैं । जैसे- वेद-कुरान, मंदिर-मस्जिद, अवतार-पैगम्बर, माला, तस्वीर आदि । कबीर जिस सहज समाधि की बात करते हैं उसमें अपने दैनिक क्रिया-कलाप से अलग किसी अन्य स्थूल भौतिक साधन की आवश्यकता नहीं है । कबीर जीवन और परमार्थ का भेद न करते हुए जीवन के दैनन्दिन व्यवहार को ही परमार्थ का मुख्य साधन मानते हैं । उनकी दृष्टि में यही सहज समाधि है ।

व्याख्या - कबीर सन्तों से सहज समाधि के बारे में निजी अनुभव की बात कहते हैं कि हे सन्तों, सहज समाधि ही सबसे अच्छी है । कारण कि उस में जीवन-व्यवहार से अलग किसी स्थूल साधन और कर्मकाण्ड की जरूरत नहीं पड़ती । जब से मेरा मिलन परमात्मा से हुआ है तब से मैंने किसी दूसरे को याद नहीं किया है । ईश्वर-मिलन के बाद मुझे आँख-कान बंद करने और शरीर को कष्ट देने की जरूरत नहीं रह गयी है । अब तो मैं प्रसन्न मना खुली आँखों से उसे पहचानता और भीतर क्या, बाहर भी उसी

का सुंदर रूप देखता हूँ । अब मैं जो बोलता हूँ जो सुनता हूँ वह भी सुमिरन है, जो कुछ करता हूँ वह उसी की पूजा है । क्या घर, क्या उद्यान दोनों के बीच भेद मिटाकर दोनों में मैं उसी परमात्मा को समान रूप से देखता हूँ । मुझमें और उनमें किसी प्रकार का अन्तर अब रह नहीं गया है । मैं जहाँ भी जाता हूँ वही मेरे लिए दंडवत् प्रणाम है । अब मुझे किसी अन्य देवता की पूजा करने की जरूरत नहीं है । मेरा मन हमेशा उसी का गीत गाने में मस्त रहता है और बुरी बातों को भी अब मैंने त्याग दिया है । उठते-बैठते वह परमात्मा मुझे कभी भूलता नहीं है, हमेशा उसी से लगन लगी रहती है । कबीर कहते हैं कि जीवन को, मन को ऊँचा उठाने का जो आचरण हैं, मैंने इस गीत में उसी को प्रकट किया है । सुख-दुख हमेशा के लिए उसमें स्थित हो गया हूँ । परम सुख की स्थायी अवस्था को प्राप्त कर लेना ही सच्ची उन्मति रहनी, 'सहज' समाधि' है।

विशेष-

1. कबीर की दृष्टि में जीवन और साधना की जमीन दैनिक व्यवहार है ।
2. जीवन का परम लक्ष्य क्षणिक सुख-दुख से भिन्न स्थायी परम सुख की प्राप्ति है ।
3. परम सुख की प्राप्ति उनमति रहनी-जीवन और साधना को एक जमीन पर देखने वाले साधक को प्राप्त होती है और दूसरा नाम 'सहज' समाधि' है ।

5.3.4 ऐसा भेद विगूचन भारी.....न कोई

ऐसा भेद बिगूचन भारी ।
बेद-कतेब दीन अरु दुनियां, कौन पुरूष कौन नारी । ।
एक बूँद एकै मल-मूतर, एक चाम एक गदा । ।
एक जोति थैं सब उत्पन्ना, को बाह्मन को सूदा । ।
माटी का प्यंड सहजि उतपंना, नाद रू व्यंद समाना । ।
बिनसि गया थैं का नाव धरिहो, पढ़ि गुनि भ्रम जाना । ।
रजन्तुन ब्रह्मा तमगुण संकर, सत-गुन हरि है सोई । ।
कहैं कबीर एक नाम जपहु रे, हिन्दू तुरक न कोई । ।

सन्दर्भ - रचनाकार और रचना के संदर्भ के लिए 5.3.1 देखिए । प्रस्तुत पद में कबीर ने मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव करने वाली धार्मिक परम्परा का खंडन किया है ।

प्रसंग - इस पद के माध्यम से कबीर ने कहना चाहा है कि स्त्री-पुरूष, ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-तुर्क के बीच ' किसी प्रकार का भेदभाव व्यर्थ है । ईश्वर ने सबको समान रूप से एक ही प्रकार के भौतिक पदार्थो से बनाया है । यह भेद समाज के अगुआ लोगों का अपना स्वार्थ साधने के लिए करा-धरा हुआ है ।

व्याख्या- ईश्वर की सृष्टि में समाज के अगुआ लोगों (पंडित और मुल्ला) ने वेद-कुरान, धर्म-संसार, स्त्री-पुरूष, ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-तुर्क के बीच जो भेदभाव की दीवाल खड़ी है वह मनुष्यकृत है और झूठा है । ईश्वर ने स्त्री पुरूष, ब्राह्मण-शुद्र, हिन्दु-तुर्क की शरीर

रचना में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया है । सभी के शरीर को उसने समान रूप से एक ही खून की बूँद, मल-मूत्र, चाम और माँस से बनाया है, फिर उनमें यह ब्राह्मण है, वह शूद्र है का भेद कहाँ से आ गया? परमात्मा की एक ज्योति से सभी पैदा हुए हैं, इसलिए उनके बीच छोटे-बड़े का भेद करना गलत है । पंडितों ने यद्यपि ब्रह्मा को रजोगुणी, शंकर को तमोगुणी और विष्णु को सतोगुणी बताकर उनमें भेद किया है, पर वास्तविकता यह है कि हिन्दू और तुर्क का भेद भी निरर्थक है । उनमें मरने के बाद केवल परम तत्व का नाम बचा रहता है । इसीलिए हमेशा बने रहने वाले परमात्मा का नाम जपो । यह पार्थिव शरीर सहनरूप से उत्पन्न हुआ है । वह अपने जिन मूल तत्वों-नाद और बिन्दु-से पैदा होता है अन्ततः नष्ट होकर उन्हीं में समा जाता है । ऐसी हालत में नष्ट हुए शरीर को क्या नाम दोगे, तुमने पढ़ा-गुणा तो बहुत पर जीवन (मनुष्य) की एकता के रहस्य को नहीं जान पाये । तुमने जो इतन पाया उसने तुम्हारे भीतर भ्रम को बढ़ाया है, उसका निषेध नहीं कर सका ।

विशेष -

1. कबीर ने भौतिक तत्वों का विश्लेषण करते हुए उसके आधार पर मनुष्य और परमात्मा दोनों की एकता का प्रतिपादन किया है ।
2. शास्त्र की परम्परा मनुष्य-भेद का समर्थन करती है और 'आतम अनुभव' की परम्परा मनुष्य में किसी भी प्रकार के भेद का निषेध करती है । कबीर की परम्परा 'आतम अनुभव' की परम्परा है ।

5.3.5 चलन चलन सबको कहत है.....बैकुंठहि आहि

चलन चलन सबको कहत है, नी जानौं बैकुंठ कहाँ है । ।
जोजन एक प्रमिति नहिं जानै, बातनि ही बैंकुठ बखानें । ।
जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग तहाँ आप नहिं जइये । ।
कहैं कबीर यहु कहिये, काहि साधो संगति बैकुंठहि आहि । ।

सन्दर्भ - रचना, रचनाकार के लिए देखिए 5.3.1 । इस पद में कबीर ने पौराणिक आस्था-बैकुंठ के प्रति विश्वास का खुलकर खंडन किया है ।

प्रसंग- कबीर को इस लोक के परे हिन्दु-मुस्लिम पौराणिक आस्था-स्वर्ग और नरक बिहिस्त और दोजख में कतई विश्वास नहीं है । वे अपने व्यावहारिक अनुभव की जमीन पर इस लोक और मृत्यु पूर्व जीवन को महत्व देते हैं । उनका मानना है कि 'इहाँ की दोजख भिस्त मुकाम, इहाँ ही राम इहाँ रहमान । स्वर्ग-नरक. राम-रहीम सब कुछ इसी लोक में, इसी जीवन में है । इससे परे कुछ भी नहीं है ।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि हर आदमी के जीवन का परम उद्देश्य बैकुंठ को मानता है और वहीं पहुँचने की बात भी करता है । परन्तु आज तक मैं नहीं जान पाया कि आखिर यह बैकुंठ है कहीं? विचित्र बात यह है कि लोग योजन की सीमा में क्या हो रहा है, उसके बारे में नहीं जानते; लेकिन बात-बात में वे उस बैकुंठ की प्रशंसा करते हैं

जिसके ठौर ठिकाने का निश्चित रूप से अता-पता नहीं है । सच्चाई तो यह है कि जब तक आदमी में, बैकुंठ में सुखोपभोग की लालसा बनी रहती है, तब तक प्रभु के चरणों में उसका निवास नहीं हो सकता, उनसे सच्ची प्रीति नहीं हो सकती । शास्त्र-पुराण की बातें तो कहने-सुनने, लोगों को भरमाने के लिए हैं, कपोल कल्पित हैं. वास्तविकता से परे हैं । जब तक बैकुंठ जाकर आप खुद उसका अनुभव न कर लें, तब तक इस प्रकार की बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है । कबीर कहते हैं कि लोगों को कैसे समझाया जाए कि इस धरती से परे कोई बैकुंठ नहीं है । धरती से परे बैकुंठ की बात गप्प है । असली बैकुंठ इसी धरती पर है और वह है - सत्संग । हे साधो, धरती के बैकुंठ को पाने के लिए मृत्यु तक न तो इंतजार करना पड़ता है और न ही किसी अन्य लोक में विश्वास रह जाता है । धरती का बैकुंठ-सत्संग मनुष्य जीवन को इस प्रकार के लोक विश्वासों के भ्रम से मुक्त कर देता है ।

विशेष-

1. कबीर धरती और जीवन के परमविश्वासी हैं । वे किसी अलौकिक बैकुंठ की प्राप्ति में विश्वास नहीं करते हैं । ईश्वर-प्रीति सबसे बड़ी चीज है ।
2. कबीर मरने के बाद किसी बैकुंठ-प्राप्ति में विश्वास नहीं करते । वे जीते जी इस धरती के बैकुंठ-सत्संग को ही जीवन के लिए अधिक कल्याणकर मानते हैं ।

5.3.6 साधो भाई.....के दासा

साधो भाई, जीवत करो आसा ।
जीवन समझे जीवत बुझे, जीवन. मुक्तिनिवासा । ।
जीवन मरन की फाँसन काटी, मुये मुक्ति की आसा । ।
तन छूटे जिव मिलन कहत है, सो सब झूठी आसा । ।
अबहूँ मिला तो तबहूँ मिलेगा, नहिं तो जमपुर बासा । ।
सत्त गहे सतगुरू को चीन्हें, सत्तनाम विस्वासा । ।
कहैं कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा । ।

सन्दर्भ- रचनाकार और रचना के लिए देखिए 5.3.1 । इस पद में कबीर ने जीते जी मुक्ति के उपाय पर बल दिया है ।

प्रसंग- इस पद में कबीर ने हिन्दुओं में प्रचलित मृत्यु के बाद मुक्ति प्राप्ति के विश्वास को निरर्थक बताया है ।

व्याख्या- हे साधु भाई, जीते जी ही उम्मीद करो । जीते जी किसी बात को समझने-बूझने का- अर्थ है और जीते हुए मुक्ति को पा लेने का अर्थ है । कितनी विचित्र बात है कि लोग जब तक जीवित रहते हैं तब तक अपने कर्म के बंधन को काटने का उपाय नहीं करते और मरने के बाद मुक्ति पा लेने की आशा लगाये रहते हैं । लोग हैं कि शरीर छूट जाने के बाद मुक्ति और स्वर्ग के मिलने की बातें करते हैं, यह सब झूठी उम्मीद के सिवा कुछ नहीं है । मनुष्य जब तक जीवित है तभी तक किसी चीज-

मुक्ति, स्वर्ग, ईश्वर आदि के मिलने का अर्थ होता है । यदि ये चीजें जीते जी मिल जायें तो मरने के बाद उनके मिलने की बात कोई न करें । जब तक शरीर जीवित है तभी तक किसी चीज का अनुभव किया और बताया जा सकता है । मरने के बाद किसी मुक्ति के बारे में कुछ भी कहना असंभव है । जो आदमी जीते जी सत्य को पकड़ लेता है और सच्चे गुरु को पहचान लेता है, ईश्वर के सच्चे नाम पर भरोसा करता है, वह मुक्ति को जीते जी हासिल कर लेता है । कबीर कहते है कि साधुओं के लिए चिन्तन का यही मार्ग कल्याणकारी है और ऐसे साधुओं का मैं दास हूँ ।

विशेष-

1. कबीर इस पद में प्रत्यक्ष जीवनगत अनुभव को मरने के बाद किसी भी प्रकार की मुक्ति, स्वर्ण प्राप्ति आदि के लोक विश्वास से अधिक महत्व देते हैं ।
2. कबीर मृत्यु के बाद किसी चीज पर भरोसा नहीं करते और अपने स्वानुभव पर इस प्रकार की बातों का खंडन करते हैं ।

5.3.7 जाति न पूछो साध की..... झक मारि

जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान । ।
हस्ती चढ़िये ज्ञान की, सहज दुलीचा डारि ।
स्वान रूप संसार है, भूँकन दे झक मारि । ।

सन्दर्भ - रचना, रचनाकार के लिए देखिए - 5.3.1 । कबीर ने इस साखी में वंशगत जाति से अधिक महत्व ज्ञान को दिया ।

प्रसंग- कबीर का कहना है कि किसी सच्चे साधु की परख उसके ज्ञान, आत्म ज्ञान; न कि किताबी ज्ञान, के आधार पर होनी चाहिए । जातिगत मानसिकता से संतों का मूल्यांकन सरासर गलत है । दूसरी साखी बताती है कि साधु को लोगों के इधर-उधर बकने की परवाह नहीं करनी चाहिए, उसे ज्ञान का उन्नत सहज जीवन जीना चाहिए ।

व्याख्या - सामान्यत: लोग साधु का पहनावा, बाहरी आचार-संहिता देखते हैं । वे किस जाति से हैं और किस पंथ में दीक्षित हैं, यह जानने और पूछने में विशेष रस लेते हैं । उसका ज्ञान कितना गहरा है, इसमें सामान्यत: उन्हें सबसे कम रस मिलता है । कबीर ऐसे ही लोगों को समझाते हुए कहते हैं कि साधु की परख उसकी जाति यानी साधु पंथ को जानकर नहीं करनी चाहिए । साधु की परख का सही आधार उसका आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान है । जाति विशेष या सम्प्रदाय के आधार पर साधु का मूल्यांकन सही नहीं है । यह तो म्यान की तरह उसका मोल है । जाति रूपी म्यान के भीतर जो ज्ञान रूपी तलवार है वह ज्यादा कीमती है । कारण है कि तुम्हारे अज्ञान को वही काट सकती है। सहजता की चादर शान रूपी हाथी की पीठ पर डालकर उस पर चढ़ जाइये । म्यान को भार की तरह मत ढोइए, बल्कि ऊँचाई प्राप्त करके बिल्कुल सहज बन जाइये । श्वान (कुत्ते) रूपी संसार की परवाह मत करिये । तुम अपने रास्ते चलते रहो और झखमार

कर भौंकने दो । यहाँ श्वान रूप संसार का मतलब सम्पूर्ण संसार से नहीं हैं, बल्कि कुत्ते की प्रकृति वाले उन बहुतायत लोगों से है जो पहुँचे हुए ज्ञानियों के बारे में तरह-तरह की बकवास करते हैं ।

विशेष-

1. कबीर अन्तर्ज्ञान को बाहरी आवरण से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं । साधु के मूल्यांकन का आधार उसका अन्तर्ज्ञान ही होना चाहिए ।
2. ज्ञानी व्यक्ति को सहज रहकर अपना काम करना चाहिए । बकबक करने वाले दुनियादारों की परवाह नहीं करनी चाहिए ।

5.3.8 पीछे लागा जाइ था.....धरोगे कौण

पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि ।
आगे थैं सतगुरू मिल्या, दीपक दीया हाथि । ।
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट ।
पूरा किया बिसाहुणा, बहुरि न आवौं हट्ट ।
कबीर गुरू गरवा मिल्या, रलि गया आटे लूँण ।
जाति-पाँति कुल सब मिटे, नीव धरोगे कौंण । ।

सन्दर्भ- ये सखियाँ कबीर की अपने गुरु के बारे में हैं और मौखिक-लिखित दोनों परम्पराओं में मिलती हैं ।

प्रसंग- कबीर ने इन साखियों के माध्यम से गुरु मिलन से अपने व्यक्तित्व में आये अभूतपूर्व परिवर्तन का उद्घाटन किया है और इसी के साथ अपने गुरु की महिमा का भी गान किया है ।

व्याख्या- कबीर इन साखियों में गुरु से मिलने के पूर्व और मिलने के बाद, अपनी दो भिन्न अवस्थाओं के बारे में बताते हैं । वे कहते हैं कि गुरु से मिलने से पूर्व मैं आम लोगों की तरह लोक विश्वास और शास्त्रगत मान्यताओं का शिकार था । लेकिन मेरा सौभाग्य यह है कि मुझे आगे सतगुरु मिल गये और उन्होंने मेरे हाथ में शान का दीपक रख दिया, जिसकी रोशनी में मैं लोक-शास्त्र के अपने विश्वास के सत्य-असत्य की परख कर सका । उन्होंने ज्ञान के दीपक में स्नेह का तेल भर कर दिया और उसमें कभी न खत्म होने वाली स्मृति (परमात्मा की सुरति) की बाती भी लगा दी । मैंने उसी ज्ञान-प्रकाश के आलोक में इस संसार रूपी बाजार में आवागमन का व्यापार किया । अब मुझे इस संसार के हाट में नहीं आना है ।

कबीर कहते हैं कि गुरु गले से क्या मिले, उन्होंने तो अपने रंग में मुझे पूरी तरह रंग लिया । यह बात आटे में नमक मिलाकर गूँथ लेने जैसी घटित हो गयी । अब तो मेरी जाति-पाति और मेरा कुल सब मिट गया है, गुरू का कुल मेरा कुल हो गया है, फिर मेरा कौन सा नाम रखोगे, मेरी जाति-पाँति, कुल की छाप मिटाकर गुरु ने अपनी

जाति-पाँति कुल रहित छाप लगा दी है । अब पुरानी पहचान का कोई अर्थ नहीं है । गुरु ने मुझे जो अपनी पहचान दी है, वही मेरी असली पहचान है ।

विशेष-

1. सतगुरु जीवन दृष्टि बदलकर रख देता है और इस संसार में जन्म-मृत्यु का जो व्यापार है उसे खत्म कर देता है ।
2. सतगुरु की छाप शिष्य को नयी पहचान देती है और यह पहचान दुनियाबी पहचान से अलग होती है ।

5.3.9 कबिरा प्याला प्रेम का.... मुक्ति बलाय

कबिरा प्याला प्रेम का, अन्तर दिया लगाय ।
रोम रोम में रमि रहया, और अमल क्या खाय । ।
राता-माता नाम का, पीया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदार का, माँगै मुकि बलाय । ।

सन्दर्भ- ये कबीर की प्रसिद्ध साखियाँ हैं । मौखिक और लिखित दोनों परम्पराओं में स्वीकृत हैं ।

प्रसंग- कबीर ने इन साखियों में प्रेम को मुक्ति की तुलना में अधिक मूल्यवान बताया है ।

व्याख्या- सामान्यत: प्याला ओठ और मुँह में लगाया जाता है, लेकिन प्रेम का प्याला विलक्षण है । मैंने यह प्रेम-पियाला अपने दिल को पिलाया है । दिल तो उस प्रेम से सराबोर ही है, यहाँ तक कि मेरा रोम-रोम भी उसी में रम गया है । सबसे उच्चकोटि का अमल (स्वाद) वही है जो भीतर और बाहर (चित्त और इन्द्रियों समेत शरीर) को पूर्ण तृप्त कर दे । प्रेम ने मुझे अन्तर्बाह्य, दोनों दृष्टियों से पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया है और अब उससे अधिक स्वादिष्ट कौन सी वस्तु है जिसे मैं खाने की इच्छा करूँ । कोई नहीं । प्रेम ही संसार में सबसे स्वादिष्ट वस्तु है, जो बाहर-भीतर की अपूर्णता को एक साथ भर देता है ।

मै तो राम के नाम में रमा हुआ हूँ और उसी के नशे में मस्त हूँ ।

मैंने इसी राम के प्रेम को छककर पिया है । मैं तो उसी का दीदार (साक्षात्कार) करके मतवाला बन गया हूँ । उसके सामने मुक्ति की माँग करना मेरे लिए एक बला है । मेरे लिये राम के नाम प्रेम और साक्षात्कार का नशा ही सबसे अमूल्य वस्तु है । मुक्ति उसके आगे बहुत तुच्छ चीज है ।

विशेष-

1. कबीर ने पहली साखी में ऐसे विलक्षण प्रेम की बात की है जो सबसे ज्यादा प्रभाव दिल पर डालता है । उसका मार्ग अन्दर की ओर जाता है ।
2. कबीर की दृष्टि में राम के नाम, प्रेम और दर्शन की खुमारी मुक्ति से बड़ी चीज है। वे राम के प्रेम के अभिलाषी हैं, मुक्ति की कामना उन्हें नहीं है ।

5.3.10 तोको पीव मिलेंगे..... ढोल रे

तोको पीव मिलेंगे घूँघट के पट खोल रे ।
घट-घट में वही साई रमता, कटुक वचन मत बोल रे ।
धन-जोबन को गरब न कीजै, झूठा पँचरंग चोल रे ।
सुन्नमहल में दियना बार ले, आसन सों मत डोल रे ।
जोग जुगत सो रंगमहल में, पिय पाई अनमोल रे ।
कहैं कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे ।

सन्दर्भ- यह कबीर का मौखिक परम्परा में स्वीकृत बहुत लोकप्रिय पद है और 'कबीर-वाणी' में संकलित है ।

प्रसंग- कबीरदास इस पद के माध्यम से कहते हैं कि ईश्वर सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ है । उससे मिलने के लिए अपने अज्ञान का पर्दा हटाने की जरूरत है । यह पंच भौतिक शरीर नश्वर होने के कारण झूठा है । यदि ईश्वर को पाना है तो अपने भीतर ज्ञान का दीपक जलाओ, फिर देखो आनंद की कोई सीमा नहीं है ।

व्याख्या- कबीर साधु लोगों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि अपने आत्मज्ञान से इस अज्ञान के पर्दे को उलट दो तो वह प्रिय परमात्मा तुम्हें मिल जायेगा । सृष्टि के कण-कण में वह एक ही परमात्मा रम रहा है, हर प्राणी के भीतर भी वही वास करता है । इसलिए किसी को दुर्वचन मत बोलो, कारण कि तुम्हारे दुर्वचन को प्राण के भीतर बैठा हुआ परमात्मा सुन रहा है । दूसरी बात, दुर्वचन से प्राणी दुखी होगा सो ऊपर से । धन और जवानी का घमण्ड मत कीजिए, कारण कि दोनों स्थायी नहीं है, आते और चले जाते हैं । धन-जोबन क्या, यह पाँच रंगों (पंच भौतिक तत्वो) से बना हुआ शरीर भी अन्त में नष्ट हो जाता है । यदि स्थायित्व की दृष्टि से उस पर विचार करें तो वह हमेशा नहीं रहता, उसकी सत्ता नश्वरता के कारण झूठी पड जाती है । अपने हृदय के भीतर ही ज्ञान का दीपक जलाइये, आशाओं के पीछे भागते मत फिरिये । मैंने तो योग के उपाय से इस शरीर रूपी रंग महल के भीतर ही अनमोल प्रिय (ईश्वर) को पा लिया है । कबीरदास कहते है कि हे साधु, अब तो मेरे लिए आनंद ही आनंद है और प्रिय के मिलन का वही आनंद रुपी ढोल जीवन भर ऐसे ही बजता रहेगा, न तो उसका अन्त होना है और न उसमें कमी आने वाली है ।

विशेष-

1. कबीर का कहना है कि ईश्वर को पाने के लिए दर-दर बाहर भटकने की जरूरत नहीं है । वह हमारे अन्दर है और सृष्टि के कण-कण में भी । उसे पाने की पहली शर्त यह है कि आँखों पर जो अज्ञान की पट्टी बँधी है उसे खोल दो ।
2. प्रिय के मिलने के लिए विवेकपूर्ण प्रयत्न तो करना पड़ता है, लेकिन उसके मिलने के बाद जो आनंद प्राप्त होता है उसका वार-पार नहीं है । वह आनंद जीवन भर साधक को आनंदित किये रहता है । सांसारिक पदार्थो से मिलने वाले आनंद,

कारण कि वे क्षणिक होते हैं, से परमात्मा प्राप्ति के आनंद की तुलना नहीं की जा सकती है ।

5.4 शब्दावली/विचार संदर्भ

1. पंचतत = पंचतत्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर)
2. मुरीद = चेला
3. अनहद = योगियों को सुनाई पड़ने वाली एक संगीतमय आन्तरिक ध्वनि
4. साखी = साक्षी, गवाह
5. जनश्रुति = लोक में प्रचलित उक्ति
6. अमल = स्वाद, नशा
7. प्यंड = पिंड, शरीर
8. गाफिल = असावधान
9. रमैनी = कबीर की रचना, संभवत: रामायणी शब्द का अपभ्रंश रूप । तद्भव रूप ।
10. बहुश्रुत = जिसने अनेक ग्रंथों को और ज्ञान की बातों को सुना हो ।
11. कतेब = किताब, कबीर का अभिप्राय कुरान से है ।
12. पैगम्बर = मनुष्यों के पास ईश्वरीय संदेश पहुँचानी वाला दूत ।
13. एकात्मकता = अभिन्नता या एक होने का भाव
14. अजर = बुढ़ापा रहित युवा, यहां परमब्रह्म से तात्पर्य है जो न युवा होता है न वृद्ध।
15. प्रशस्त = लंबा चौड़ा, विस्तृत
16. बीजक = गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान । कबीर की (साखी, सबद और (मैनी) बणियों का संग्रह ।
17. दावानल = जंगल की आग ।
18. उलट बाँसी = कबीर की वे. रचनाएँ जिनके उल्टा-पुल्टा अर्थ है ।
19. दीदार = दर्शन देख पाना
20. मौखिक परम्परा = सुनने और कहने की प्रक्रिया में जीवित परम्परा ।

5.5 सारांश

कबीर का काव्य भक्ति और दर्शन के स्वर में लोकजागरण का आवाहन है । उनकी भक्ति कविता के माध्यम से मानवता का सन्देश है । भक्ति आन्दोलन की दिशा में कबीर निर्गुण धारा के पुरस्कर्ता कवि के रूप में सर्वमान्य हैं । इनका समय अनुमानत: सन् 1398 ई. से 1518 ई. के बीच माना गया है । इनकी जीवनगत घटनाओं के संबंध में आज भी असंदिग्ध रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । इसका कारण यह है कि समाज के बारे में विस्तृत चर्चा करते हुए भी इन्होंने अपने बारे में कुछ नहीं कहा

। उनकी एक उक्ति 'कासी में हम परगट भए रामानंद चेताएं' जैसी कुछ और उक्तियों से आलोचकों ने कुछ संकेत मात्र पाया है । कबीर साहित्य के मर्मज्ञ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है 'वे सिर से पैर तक मस्तमौला स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के सामने प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरास्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय थे ।' युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें विद्यमान थी, इसीलिए युग प्रवर्तन कर सके । ' बेशक युग प्रवर्तक संत कबीर की कविताएं सिर्फ आत्ममुक्ति तक सीमित अंतसंघर्ष के साथ लोक संघर्ष और निवृत्ति के साथ प्रवृत्ति की राह भी दिखाती है ।

धर्म की विकासशील दिशा-दर्शन है जबकि उसकी पतनशील दिशा बाह्याचार और कर्मकाण्ड । कबीर के धर्म में दर्शन का समर्थन तथा बाह्याचार का विरोध है । उन्होंने उन सभी पंडित-पुरोहितों, मुल्ला-मौलवियों को फटकारा जिनकी जीवनशैली आंतरिक पवित्रता एव आत्मशुद्धि के विपरीत बाह्याचार एवं कर्मकाण्ड पर आधारित थी ।

दरअसल कबीर की दृष्टि में ज्ञान की अनुभूति ही भक्ति है । इस भक्ति में मूलत: अद्वैतवादी दर्शन की स्वीकृति है । फिर भी कबीर कहीं लकीर के फकीर नहीं हुए । उन्होंने तद्युगिन सभी धर्मो -दर्शनों की अच्छाइयों को अपनी विचारधारा का आधार कमाया । उन्होंने कहा भी है- 'सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय ।' आज भी हमारे लिए सार और थोथा की पहचान एक गंभीर चुनौती है । यह बहुत कुछ हमारे विवेक पर निर्भर करती है । परम तत्व या ब्रह्म में विश्वास रखने वाले कबीर का मानना है कि जब सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति का मूल एक है, तो हिन्दू मुस्लिम, ब्राह्मण- शूद्र या ऊँच-नीच जैसा भेदभाव कैसा । वस्तुत: यह भेदभाव हमारी अज्ञानता की ही उपज है । अत: कबीर ने धर्म को अज्ञान के अंधकार से निकाल कर ज्ञान के प्रकाश की ओर लाने का प्रयास किया ।

कबीर ने अज्ञानता का कारण भय को माना जिसका निवारण अनुभव के बिना संभव नहीं । अत: कबीर का मानना है विचार अनुभव की आँच में तप कर ही 'साखी' (अर्थात् समस्त परिघटनाओं के चश्मदीद गवाह) लिखी जाती है । कबीर ने साखी, सबद और रमैनी लिखे जिनका संग्रह 'बीजक' नाम से किया गया है ।

5.6 अभ्यासार्थ- प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संक्षेप में कबीर के जीवन का परिचय दीजिए ।
2. कबीर की कृतियों का परिचय देते हुए उनकी प्रामाणिकता की समस्या पर विचार कीजिए ।
3. कर्मकाण्डों का विरोध करते हुए कबीर ने क्या कहा है?

4. मनुष्य-मनुष्य के भेदभाव को दूर करने के लिए कबीर के तर्कसंगत उपदेश लिखिए।
5. सच्चे गुरु। की प्रशंसा में कबीर ने क्या कहा है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. कबीर ने ईश्वर को कहाँ खोजने की बात कही है?
2. भारतीय चिन्तन परम्परा में ईश्वर के स्वरूप को लेकर क्या धारणा है?
3. कबीर बैकुंठ के बारे में क्या कहते हैं ?
4. आत्मा को जगाते हुए कबीर क्या कहते हैं?
5. सहज समाधि के विषय में कबीर के विचारों पर टिप्पणी लिखिए ।

5.7 संदर्भ ग्रंथ

1. पं. हजारी द्विवेदी- कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 1985
2. डी. माता प्रसाद गुप्त - सं. कबीर ग्रंथावली, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, प्र. सं. 1985
3. डी. पारसनाथ तिवारी - कबीर-वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद चतुर्थ संस्करण - 1970
4. डॉ. रामचन्द्र तिवारी कबीर मीमांसा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद तृतीय संस्करण - 1997
5. डॉ. धर्मवीर - कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण - 1997
6. डॉ. पुरूषोतम अग्रवाल - कबीर (साखी और सबद) नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, प्र.स. 2007

इकाई-6 कबीर का काव्य : अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कबीर का काव्य. अनुभूति पक्ष

6.2.1 कबीर काव्य की परम्परा

6.2.2 कबीर काव्य का वैचारिक पक्ष

6.2.3 कबीर काव्य का संवेदनात्मक पक्ष

6.3 कबीर का काव्य : अभिव्यंजना पक्ष

6.3.1 काव्य-रूप

6.3.2 भाषा-शैली

6.3.3 अलंकार

6.3.4 छंद

6.4 मूल्यांकन

6.5 विचार-सन्दर्भ और शब्दावली

6.6 सारांश

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.8 सन्दर्भ-ग्रंथ

6.0 उद्देश्य

इसके पहले की इकाई में आप कबीर के जीवन एवं उनकी कृतियों से परिचित हो चुके हैं । इनके अलावा कबीर-वाणी के चुनिंदा अंशों का वाचन और आस्वादन भी कर चुके हैं । यह इकाई कबीर-काव्य की अनुभूति और अभिव्यंजना पक्ष से सम्बन्धित हैं । इसे पढ़ने के बाद आप :

- कबीर-काव्य की परम्परा से परिचित हो सकेंगे ।
- कबीर-काव्य की अनुभूति के वैचारिक पक्ष की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें ।
- संवेदनात्मक पक्ष को समझ सकेंगे ।
- अभिव्यंजना के विभिन्न पहलुओं को जान सकेंगे ।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई के भीतर कबीर-काव्य की अनुभूति और अभिव्यंजना पक्ष से संबंधित विभिन्न पक्षों पर अपेक्षाकृत विस्तार से विचार किया है । सबसे पहले यह बताया गया है कि कबीर-काव्य की परम्परा क्या है, इसके स्रोत कहां मिलते हैं? अब तक हिन्दी के विद्वान उनकी काव्य-परम्परा को किन-किन रूपों में देखते रहे हैं? इनके साथ यह भी

देखा गया है कि कबीर का अपना मौलिक क्या है? कबीर काव्य की अनुभूति में उसके वैचारिक और संदेनात्मक पक्षों का विवेचन है । विचार पक्ष में कबीर की विचारधारा, विशेष रूप से दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विचारों और संवेदना पक्ष में उनकी भक्ति के स्वरूप और उसके सामाजिक सरोकारों की चर्चा की गयी है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह रेखांकित की गयी है कि इनमें कबीर की अपनी पहचान क्या है? अभिव्यंजना पक्ष में कबीर की भाषा की सर्जनात्मकता, कहने की शैली का विश्लेषण है । इसी पक्ष में कबीर के काव्य रूप की समस्या और उसके चयन पर विचार किया गया है । इसके साथ कबीर-काव्य के उपकरणों-अलंकार छंद आदि को भी समझने-समझाने की कोशिश की गयी है । इस इकाई में प्रयास यही है कि कबीर-काव्य के दोनों पक्षों को पढ़कर आपकी समझ व्यापक बने और आप यह भी जानें कि उनका काव्य हमारे लिए कहां तक उपादेय है? विद्यार्थी यह भी जानें कि उनकी अनुभूति और अभिव्यंजना पक्ष की सीमाएं क्या हैं? हमें विश्वास है कि इस इकाई को पढ़कर कबीर ' काव्य के बारे में आप की समझ और पुख्ता बनेगी।

6.2 कबीर का काव्य : अनुभूतिपक्ष

6.2.1 कबीर काव्य की, परम्परा

हर कवि एक विशेष देश-काल, युग-समाज को उपज हुआ करता है । युग और समाज परिवर्तनशील है और विकासशील भी । युग और समाज वर्तमान की ऐसी संरचनाएं है जिनका पिछला कदम भूत और इतिहास में और अगला कदम भविष्य और भावी कल्पना, स्वप्न, आकांक्षा में होता है । हर कवि अपनी अनुभूति के लिए, विचार और संवेदना के लिए खाद-पानी त्रिपदात्मक युग और समाज से लेता है । एक व्यक्ति के कारण उसका अपना कमोवेश व्यक्तित्व होता है, उसकी अपनी दृष्टि और अनुभूति होती है । व्यक्ति होने के कारण रचनाकार का सर्जनात्मक व्यक्तित्व इन्हीं दोनों तत्वों के संश्लेषण से बनता है । उसके सर्जनात्मक व्यक्तित्व में युग और समाज का अनुभूत यथार्थ तो होता ही है साथ में काफी कुछ उसका व्यक्तिगत भी होता है । सामाजिक और निजी अनुभव के मेल से हर कवि का व्यक्तित्व बनता है । जहाँ तक भाषा का सवाल है वह अपने व्यापक स्वरूप में सामाजिक होती है, लेकिन बोलचाल में, शब्द रचना में, कहने के ढंग में वह काफी व्यक्तिगत बन जाती है । कबीर का काव्य अपनी अनुभूति और अभिव्यंजना में एक साथ सामाजिक और निजी दोनों है ।

कबीर का कवि व्यक्तित्व और काव्य परम्परा दोनों गैरदरबारी हैं । उनका रचना-काल भक्ति आन्दोलन के वातावरण में बीता और भारतव्यापी भक्ति आन्दोलन से खास रूप से उसका अनिवार्य सम्बन्ध है । भक्ति आन्दोलन अपने स्वरूप में इकहरा नहीं है । इसमें कई धाराएं मिलती हैं और उसे प्रभावित करती हैं तथा स्वयं भी प्रभावित होती हैं । एक धारा नाथों की हैं जिसकी बाद की शाखाएं भक्ति आन्दोलन में फैलती हैं लेकिन जडे हठयोग, तंत्र और बौद्ध (धर्म तक जाती हैं । यह पूर्व और पश्चिमोन्तर भारत की

धारा थी । एक धारा फारस; ईरान से होते हुए पश्चिमोत्तर भारत में फैल गयी थी और वह सूफियों के रूप में भक्ति आन्दोलन से जुड़ गयी थी । एक धारा धुर दक्षिण से आयी थी । यह थी दक्षिणी आचार्यों की वैष्णव भक्ति धारा । कमोबेश इनका मिलन आगे पीछे मध्यकाल में पूरे हिन्दुस्तान में हो रहा था और सबकी अपनी पुरानी जड़ें थीं और वे उससे जुड़े थे । एक धारा और थी साधारण जनता की, विशेषकर कामगारों की, श्रम पर जीने वालों की जो अब तक अलख थी: सगुण नहीं, निर्गुण थी, लिखित नहीं, मौखिक थी । कबीर इनके मिलन बिन्दु के दौर में जन्मे- पले, बढ़े थे, इनसे यत्र-तत्र प्रभावित भी हुए थे, लेकिन वे इनमें विशुद्ध रूप से किसी एक धारा के नहीं थे । कबीर का यह रूप देखकर पं. रामचन्द्र शुक्ल ने कहा कि उनके पास साधना और काव्य के नाम पर जो कुछ है वह वैहयावाचार्या की भक्ति, सूफियों के प्रेम, नाथों की हठयोग साधना से उधार लिया है । उनकी भाषा की स्थिति भी ऐसी ही है । डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने कहा कि वे 'अद्वैतवादी हैं, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि वे अपने चिन्तन में नाथ योगियों से, भक्ति में रामानंद की वैष्णव भक्ति से विशेष प्रभावित हैं । इन सबके बावजूद रेवरेडं अहमदशाह, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, बाबू श्यामसुन्दरदास, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक स्वर से माना कि उनके विचार मौलिक चिन्तन पर आधारित हैं । वे स्वाधीन चिन्ता के पुरुष हैं, वे उन्मुक्त प्रकृति के व्यक्ति हैं । वास्तविकता यही है कि कबीर को मध्ययुग की चिन्तन धाराओं के किसी एक सांचे में पूरी तरह नहीं बैठाया जा सकता है । उनकी अनुभूति, विचार, संवेदना और भाषा शैली पर सबसे अधिक छाप उनके अपने व्यक्तित्व की है । वैष्णवाचार्यो से अलग वे इसलिए हैं कि फारसी भाषा, कुरान के कायल न थे । नाथों से अलग वे इसलिए थे कि वे उनकी हठयोग शास्त्रीय परम्परा से चिपके न थे ।

कबीर के जमाने में काव्य की दो परम्पराएं थीं । एक थी- दरबारी काव्य परम्परा । जिसमें विषय, भाषा-शैली सब रूढ़ थे । एक काव्य-परम्परा राजदरबार के बाहर थी । यह लिखित और मौखिक दो रूपों में थी । सामान्यत. लिखित काव्य परम्परा में हमारे भक्त कवि आते हैं और मौखिक परम्परा अनपढ़ श्रमशील साधारण जनता की थी । कबीर काव्य की स्थिति दोनों के बीच है । कबीर दरबार के बाहर सामन्त और पुरोहितवाद विरोधी धारा के कवि हैं । वे दरबार के बाहर के सगुण-भक्त कवियों से अपने संस्कार और सोच से काफी अलग हैं । वे सगुण भक्तों के शास्त्र और अवतारवाद के हामीदार नहीं है । एक बात में वे उनसे मिलते हैं । कबीर, सूर, तुलसी खासतौर पर जनता के लिए लिखते हैं, और उनकी भाषा शैली का आधार जनता की भाषा-शैली ही है । साधारण जन की मौखिक काव्य परम्परा कबीर, सूर, तुलसी, जायसी सभी के काव्य रूप के निर्माण में मददगार है, लेकिन कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, आख्यान, लोकगाथा के मुद्दे पर अलग हो जाते हैं और जन साधारण की भाषा शैली में लिखने के बावजूद कर्मकाण्डों, लोकविश्वासों, अंधविश्वासों के मुद्दे पर जनता से

अलग हो जाते हैं । कबीर इनके परम विरोधी हैं । कबीर एक नयी परम्परा को जन्म देते हैं । उन्होंने आशुलोक कवित्व और साहित्यिक कवित्व को मिलाकर उसे विशिष्ट रूप दिया है और इसमें उनके प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का सर्वाधिक योगदान है ।

6.2.2 कबीर काव्य का वैचारिक पक्ष

आधुनिक काल के पहले राजदरबार के बाहर रहकर रचना करने वाले सभी भक्त कवियों की मूल प्रेरणा आध्यात्मिक कही जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है । इस आध्यात्मिक प्रेरणा से भक्त कवियों की अनेक चिन्ताएं-सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्य से जुड़ी हुई हैं । इसलिए उनकी आध्यात्मिक प्रेरणा संसार से परे विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेरणा भी नहीं है । दरबारी कवियों की मूल प्रेरणा भौतिक है । वहां आध्यात्मिकता मात्र औपचारिक-मंगलाचरण से अधिक महत्व नहीं रखती है । इसलिए हमारे मध्ययुगीन भक्त कवि अपनी सोच में उनसे अलग पड़ते हैं।

कबीर एक युग और समाज में पैदा हुए थे । उनके विचारों की बनावट और संवेदना की बुनावट में सामाजिक भौतिक तत्वों का योग कम नहीं है, लेकिन उनकी सोच और संवेदना भौतिकवादी नहीं है, देहवादी और भोगवादी है । उनकी दृष्टि का मूलाधार एक खास तरह का आध्यात्मवाद है, दर्शन है । वे ईश्वर में विश्वास करते हैं और उसे ही पिण्ड-ब्रह्माण्ड, जड़-चेतन रूपा सृष्टि का सर्जनहार और मिटावनहार मानते हैं तथा उसे इनसे परे भी मानते हैं । उनकी एक ठोस और व्यवस्थित विचारधारा है, दार्शनिक सोच है । इस बात का समर्थन डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल और पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी दोनों करते हैं । कबीर मानते हैं कि यह शरीर, यह संसार स्वयं की सृष्टि नहीं हैं, धरती और धरती के परे जो कुछ है, उसका मूलकारक तत्व परमात्मा है । वह अपनी माया के जरिए यह काम सम्पन्न करता है । वह ऐसा विलक्षण कलाकार है, बाजीगर है कि एक ही साथ सब में समान रूप से अखण्ड रूप में मौजूद रहता है और उनसे परे या अतीत भी बना रहता है । दोनों के उदाहरण देखिए -

व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जागी ।
राँड़ारंक सु कहिये, कवन वैद को रोगी ।
इन मैं आप आप सबहिन मैं, आप आप सूँ खेले ।
नाना भाति घड़े सब भांडे, रूप धरे धरि में लें ।
कबीर ग्रंथावली-सं. डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पदरामकली - 33

अलख निरंजन लखैन कोई । निरभै निराकार है सोई । ।
सुनि असधूल रूप नहीं रेखा । द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यौ नहीं पेखा । ।
वरन अबरन कथ्यौ नहिं जाई । सकल अतीत घट रहयौ समाई । ।
आदि अंत ताहि नहीं मध्ये । कथ्यौ न जाई अहि अकथे । ।
अपरंपार उपजै नहिं बिनसै । जुगति नजानियै कथिये कैसे । ।
कबीर ग्रंथावली, सं. डॉ माता प्रसाद गुप्त, रमैणी उद्ध-बड़ी अष्टपदी रमैनी

कबीर अपने ईश्वर को निर्गुण, निराकार, अलख मानते हैं । पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे नाथों के 'द्वैताद्वैत विलक्षण समतत्त्ववाद' से जोड़ते हैं और डॉ. युगेश्वर उसे 'अनगढ़िया' देव मानते हैं । भारतीय 'वैष्णव परम्परा परम तत्त्व के दो रूपों को मानती रही हैं - निर्गुण और सगुण, पारमार्थिक और व्यावहारिक । सिद्धान्ततः वह निर्गुण को मानती है, लेकिन व्यवहारतः सगुण का आख्यान करती है । भारतीय पुराण और रामानुजाचार्य से लेकर रामानंदाचार्य तक इसी मान्यता के पक्षधर हैं । व्यवहारतः सगुण पर बल देने के कारण उसके साथ अवतारवाद सीधे जुड़ गया । अवतारवाद के साथ मंदिर, मूर्ति, पंडित, शास्त्र भी खिंचे चले आये । उधर इस्लामी परम्परा भी अपने खुदा को तत्वतः निर्गुण मानती है, लेकिन उनके पैगम्बर मुहम्मद साहब एक प्रकार से सगुण ही हैं । इसलिए उनके साथ मस्जिद, मुल्ला, बाँग जुड़ गये । कबीर के ब्रह्म विचार में पारमार्थिक और व्यावहारिक, निर्गुण-सगुण जैसा द्वैत नहीं है । वह एक है, अगाध है, अपार है, अनाम है, अरूप है, अलख है, जन्म-मृत्यु के परे है । इसलिए वह अवतार रूप में प्रकट नहीं होता । वह अवतार लेता नहीं है, लेकिन उसे अवतार बनाया जाता है । यह अवतार, नाम, रूप का खेल माया कृत है, कृत्रिम है । 'कृत्रिम सोजु गरभ अवतरिया । कृत्रिम सो जुनाव जिस धरिया । कबीर ने अपनी एक रमैनी में बड़े विस्तार से अवतारवाद का निषेध किया-

ना जसरथ धरि औतरि आवा । ना लंका का राम संतावा । ।
देवै कूष न अवतरि आवा । ना जसवै ले गोद खिलावा । ।
ना वे ग्वालन के संग फिरिया । गोबरधन लेन कर धरिया । ।
बांवन होय नहीं बाले छलिया । धरनी बेद ले न उधरिया । ।
गंडक सालि राम न कोला । मछ कछ हवै जलहि न संतावा । ।
द्वारामती सरीर न छाड़ा । जगनाथ ले प्यंद न गाड़ा । ।
कहै कबीर विचार करि, ये वैले ब्योहार ।
याही थै जो अगम है, सो बरति रहया संसार ।

कबीर ने अपने ईश्वर को 'बरन बिवर्जित जाति-पांति' छूआछूत 'भेदभाव, पाप-पुण्य, अन्ततः तो सगुण-निर्गुण, पिण्ड-ब्रह्माण्ड और त्रिलोक विवर्जित कहते हुए उसे 'अनूपतत्त्व सिद्ध किया है । उन्होंने अपने ईश्वर को हिन्दुओं मुसलमानों, योगियों से पृथक करते हुए सब में उसकी एकता की बात कही ।

जोखी गोरख-गोरख करे, हिन्दू रामनाम उच्चरै ।
मुसलमान को एक खुदाई, कबीर का स्वामी रहा समाइ ।

कबीर का निर्गुण निष्किय नहीं है । वही सबका कर्त्ताधर्त्ता है । वह स्थान-काल बद्ध नहीं है । वह जहां कुछ नहीं है, रिक्त स्थान है, वहां भी मौजूद है । कबीर को ईश्वर का 'आत्मरूप सबसे अधिक प्रिय है । उन्होंने सबसे अधिक बल इसी आतमराम पर विचार करने और उसी का परिचय प्राप्त करने, खोजने और उसे ही उपलब्ध करने पर

दिया है । उनका सबसे अधिक आग्रह इसी पर है कि परमात्मा को किसी मंदिर-मस्जिद, कर्मकाण्ड में मत खोजो । यदि खोजना है तो उसे अपने हृदय में खोजो । कारण कि जो घट-घट में हैं वहीं तुम्हारे अंदर रमा हुआ है । लेकिन यह आतमराम गुरु की कृपा के बिना नहीं मिलता । गुरु के परिचय से आत्मविश्वास होता है, आतमराम से परिचय और प्रतीति होती है ।

तिणकैं आल्है राम हैं, परबत में है भाइ ।
सतगुरु मिलि परचा भया तब हरि पाया घट माहि ।
थिति पाई मन थिर भया, सतगुरू त्रिभुवन राइ ।
सब घटि मेरा साइयां, सूनी सेज न कोइ ।
भाग तिन्ही का हे सखी, जिहीं घटि परगट होई ।
कबीर दुनियां दे हुरै, सीस नवॉवण जाइ ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताही सौ ल्यों लाइ । (कबीर ग्रंथावली) कबीर अपने इसी आतमराम की प्रतीति के आधार पर शरीर और मन के भीतर सारे तीर्थो, नदियों, गगन और तारों की स्थिति की बात करते हैं ।

रे मनि बैठि कितै जिनि जासी
हिरदै सरोवर है अविनासी ।
काया मधे कोटि तीरथ, काया मध्ये काशी ।
काया मधे कवलापति काया मधे बैकुंठ बासी ।
उलटि पवन षटचक्र निवासी, तीरथराज गंगातट बासी ।
मन मथुरा दिल द्वारिका काया काशी जाणि ।
दसवीं द्वारा देहुरा, ता मैं ज्योति पिछाणि ।

शरीर, मन, हृदय के भीतर की सारे तीर्थों नदियों, पहाड़ों और तारों के होने की बात सिद्ध और नाथ भी करते थे । इसका सम्बन्ध एक तो स्वानुभाव परक आत्मदृष्टि से हैं, व्यक्तिगत दृष्टि से चीजों को देखने से है । दूसरी बात इसका सम्बन्ध बहुत कुछ सामाजिक स्थिति से भी है । अनेक सिद्ध और निर्गुणिया दलित समाज से आये थे । हजारों वर्षो से समाज और धर्म व्यवस्था पर, मंदिरों-मस्जिदों, तीर्थों पर समाज के अगुआ पंडितों और मुल्लाओं का वर्चस्व रहता आया था और इनके पोषक राजा और बादशाह होते थे । समाज और धर्म दोनों से दलित निष्कासित थे । समाज में ऊँची जातियों के वर्चस्व के चलते उनकी जो स्थिति थी उनके लिए मंदिर-मस्जिद, तीर्थ क्या, गाँव, नगर क्या पूरा देश विराना और बेगाना' था । मंदिरों का परमात्मा और मस्जिद का खुदा तो समाज की गैर श्रमशील ऊँची जातियों के कब्जे में था । उस पर उन्हें भरोसा हो तो कैसे? इसके लिए पंडितों और मुल्लाओं ने मोटी मोटी धर्म की किताबें-वेद, पुराण, कुरान आदि लिख मारी थी । इसलिए वे भरोसा अपने भीतर के भगवान का करते हैं, शास्त्रों के बदले गुरु के शब्द पर विश्वास करते हैं । कबीर ने अपने मन के भीतर ही सारे तीर्थों और नदियों को मान्य किया । यह अपने मेहनत

पर भरोसा करके जीने वाले दलितों के आतम अनुभव और आत्मविश्वास की बुनियाद पर खड़ा किया हुआ आतमराम है ।

वैसे तो कबीर अपने आतमराम को अनेक नामों से पुकारते हैं । यदि उनके स्त्रोत देखें तो केशव, माधव, गोविन्द, सारंगपाणि, हरि राम आदि हिन्दू परम्परा में पड़ते हैं, नाथ, अलख, निरंजन, भावाभावविनिर्भुक्त, शून्य, सहज आदि सिद्ध (नाथ परम्परा के हैं और अल्ला, खुदा रहीम, करीम आदि मुस्लिम साम्प्रदायिक मोह अपनी-अपनी परम्परा के नामों के प्रति है कबीर में ऐसा किसी प्रकार का मोह नहीं है । कोई हिन्दू राम और खुदा, कोई मुसलमान खुदा और राम को और कोई नाथपंथी निरंजन माधव और खुदा को एक मानते हुए एक साथ उन्हें याद करने की बात सोच नही सकता ये सभी अपने-अपने सम्प्रदायों के पक्षापक्ष में उलझे हुए थे । कबीर परमात्मा को एक समझते थे, इसलिए जैसा कि पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि इन नामों से वे एक ही परमात्मा का अर्थ लेते थे । पहली बार कबीर के काव्य में अलग-अलग धर्मो के स्त्रोतों से आये हुए नामों के जोड़े दिखाई पड़ते हैं । अलहराम केशवकरीम राम रहीम को एक साथ याद करने के पीछे कबीर का आशय एक है, परमात्मा एक है उसे चाहे जिस नाम से पुकारो नामभेद से उसके एकत्व में फर्क पड़ने वाला नहीं है ।

हमारै राम रहीम करीमा कैसा, अलहराम सति सोई ।
विसमिल मेटि बिसभर एकै, और न दूजा कोई ।

- कबीर ग्रंथावली

अपने-अपने साम्प्रदायिक नामों के आग्रही हिन्दू और मुसलमान यह न समझ लें कि कबीर का ईश्वर साम्प्रदायिक बंदर बॉट वाला हमारा ईश्वर है, कबीर इस प्रकार की आशंका के लिए कोई जगह नहीं छोड़ते । ऐसी हालत में वे अपने ईश्वर को अलह-राम, वेद-कुरान, सगुण-निर्गुण के परे कह देते हैं । इसके पीछे उनका एक ही मतलब है कि लोग ईश्वर को बॉट कर न देखें, बल्कि एक ही ईश्वर के अनेक नाम मानें ।

कबीर को ईश्वर के नाम में राम नाम सर्वाधिक प्रिय है । संभव है कि उन्हें जिस गुरु ने दीक्षा दी थी, इसी नाम की दी थी । दूसरी बात कबीर का राम जन-जन, सृष्टि के कण-कण में रमा राम है। यह दशरथी राम, विष्णु का अवतारी राम नहीं है । कबीर अपने जिस राम को अप्रतिम कहते हैं । उसे उदात्त मानवीय गुणों से भी जोडते हैं । वह रूप, रंग, रेखा, गुण रहित होकर भी 'बहुगुणियाला और 'अनन्त भुजा' वाला है, पूरा रहमान है, दुरितनिकन्दन है, न्यायी है, दयालु है । जो लोग उसे जानते है, वह' उनका दुख भी जानता है ।

जन की पीर हो राजा राम भल जानै ।
कहूं काहि को मानै नैन का दुख बैन जानै, बैनका का दुख श्रवनां ।
प्यंड का दुख प्रान्न जानै, प्राण का दुख मर नां ।
आस का दुख प्लास जानैस प्यास का दुख नीर ।
भगति का दुख राम जानै, कहैं दास कबीर ।

-कबीर ग्रंथावली

कबीर ने अपने परमात्मा को अनेक ऐसे नामों से याद किया जिनका मुख्य संबंध शिल्पियों से हैं। उन्होंने उसे कुंभकार, जुलाहा, बनिया आदि नामों से पुकारा हैं । यह कबीर की अपनी बात है । वह कुंभकार इसलिए है कि उसी ने संसार के विविध रंग रूपों को बनाया है । वह जुलाहा इसलिए है क्योंकि इस शरीर को उसी ने बुना है और वह व्यापारी इसलिए है क्योंकि संसार का व्यापार करता है । इसी प्रकार वह बाजीगर, वाद्यकार और चित्रकार है । पहले बताया जा चुका है कि कबीर ने अपने व्यक्तिगत और अपने समाज के अनुभव की जमीन पर निर्गुण आतमराम को रचा और खड़ा किया था । परम्परा में स्वीकृत बात यही है कि वे जुलाहे के घर में पले-बढ़े थे और स्वयं कपड़ा बुनने और बेचने का काम करते थे । इस प्रकार उनका सीधा संबंध शिल्पियों और कामगारों के समुदाय से था । ये भारतीय समाज में रहते थे, लेकिन कुल-धन-पद-धर्म प्रतिष्ठा के अहंकार में अंधे ऊँची जातियों के लोगों को दिखाई नहीं पड़ते थे । ऊँची जातियों, कुलीनों की अवतारी परम्परा, पैगम्बरवाद की सापेक्षता में लेकिन उनसे उलट इन्होंने अपने आतमराम को अलख कहा । उनका परमात्मा मंदिर में बैठा था या मस्जिद में था वह उनके भीतर से कूच कर गया था, तो इन्होंने उसे अपने भीतर के परमात्मा का रूप दिया । इन शिल्पियों, कामगारों के गुण अनन्त थे । वे अपनी विशेष गुण दक्षता के कारण कपड़ा बुनते थे, घड़ा बनाते थे, जूता गांठते थे । मानवीय गुण सम्पन्नता भी उनमें कम न थी, लेकिन ऊँची जातियां स्वयं शारीरिक श्रम नहीं करती थीं, सर्वगुण सम्पन्न अपने को मानती थीं और इन्हें सभी गुणों से हीन और शून्य मानती थीं । इसलिए वे अपने परमात्मा को सगुण और निर्गुण दोनों मानते हैं । ऊँची जातियों ने वर्ण, जाति, कुलीनता-अकुलीनता को अपने परमात्मा की सृष्टि मानी थी, तो इन्होंने अपने परमात्मा को वर्ण जाति, मजहब, कुलीनता-अकुलीनता से परे बताया । पंडितों-मुल्लाओं के यहाँ ईश्वर जीव, माया, जगत जिस प्रकार दार्शनिक बहस की चीज थे और सिद्धांत और व्यवहार में द्वैत था, वह इन शिल्पियों और कामगारों की नजर में नहीं था । कारण कि समाज की ऊँची जातियां कहती थीं कि आत्मा के रूप में परमात्मा सबके भीतर है, खुदा सब में है, लेकिन व्यावहारिक स्तर पर दो मुँही बात करते थे । कबीर ने मनुष्य-मनुष्य के बीच के दो मुंहेपन, दोहरे व्यवहार को अमान्य किया । उनकी दृष्टि में सर्जनहार परमात्मा एक है तो मनुष्य के भीतर वही आतमराम है । इसलिए मनुष्य भी एक हैं । शरीर-शूद्र का हो या ब्राह्मण का, औरत का हो या पुरूष का, हिन्दू का हो या तुर्क का एक ही खून चाम, मलमूत्र, मांस से बना है । वह दैहिक रूप में भले भिन्न दिखे पर अपनी आन्तरिकता में एक है और उसके बीच किसी प्रकार का भेदभाव करना गुनाह है । उन्होंने लोगों को समझाते हुए कहा कि सब बराबर हैं, कोई छोटा या बड़ा नहीं है ।

लोका जांनि न भूलौ भाई
खालिक खलक खलक मैं खलिक सब रहयौ समाई ।

अला ए कै नूर निपाया ताकी कैसी निंदा ।
ता नूर थैं सब जग किया, कौन भला कौन मंदा ।
हम तो एक एक करि जाना ।
दोह कहैं तिनहीं कीं दोजग नाहिन पहिचाना ।
एकैं पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा ।
एक खाक घड़े सब भाड़े, एक ही सिरजन हारा ।
जैसें बाढ़ी कष्ट ही काटै, आगिनि न काटे कोई ।
सब घटि अंतरि तू ही व्यापक, धरै सरूपै सोई ।
ऐसा भेद बिगचनि भारी ।
बेद कितेब दीन अरू दुनियां, कौन पुरिष कौन नारी ।
एक बूद एके मलमूतर, एक चाम एक गदा ।
एक जोति थै सब उतपनां, कौन बांम्हन कौन सूदा ।
माटी काप्यंट सहजि उतपनां, नाद रू व्यंद समांना ।
रजगुन ब्रह्मा तमगुन संकर, सतगुन हरि है सोई ।
कहैं कबीर एक राम भजहु रे, हिन्दू तुरक न कोई ।

कबीर का सम्पूर्ण वैचारिक पक्ष-दार्शनिक, सामाजिक-धार्मिक, आर्थिक इसी दृष्टि पर आधारित है । जिस प्रकार उनके ईश्वर, मनुष्य सम्बन्धी विचारों को किसी पुराने दार्शनिक मत में नहीं बाँधा जा सकता उसी प्रकार उनके माया और मुक्ति सम्बन्धी विचारों को किसी वाद में बांधा नहीं जा सकता । वेदान्त के विद्या-अविद्या नाम जरूर वहां मिलते हैं, शरीर और संसार की नश्वरता की भी बात उनके यहां है, लेकिन इनके बारे में उनकी अपनी ठोस सामाजिक आधार वाली सोच है । कबीर के यहां माया में विशेष रूप से वे लोग शामिल हैं जो कनक-कामिनी, देहवाद और भोगवाद में लिप्त हैं। जाहिर सी बात है कि कनक-कामिनी, भोगवाद के शिकार सामन्त होते हैं, राजा महाराजा, बादशाह होते हैं । इसलिए माया का पक्ष उन्हीं का पक्ष है । मान, इज्जत, प्रतिष्ठा के सबसे भूखे वहीं हैं । इसलिए माया सबसे ज्यादा उन्हें ही व्यापती है । सामान्यत: लोभ, मोह, आशा, तृष्णा के रूप हर व्यक्ति में होते हैं । कबीर ने साफ कहा था कि–

रामहि थोड़ा जनिकरि दुनिया आगेदीन ।
जीवां को राजा कहै, माया के अधीन ।

यह संसार या जगत अन्तत: नहीं रहेगा । वह अपने स्वरूप में अस्थिर - 'का माँग कुछ थिर न रहाई । देखत नैन चला जग जाई' है और नश्वर है, लेकिन इसकी सत्ता माने बिना चला भी नहीं जा सकता । इसी प्रकार देह का भी यही हाल है । शरीर और संसार दोनों काल के गाल में चले जायेंगे । जिस प्रकार जगत मिथ्या है, देह महत्वहीन है, कबीर के यहां उस रूप में यह कतई नहीं है । कबीर को इस जगत पर इतना भरोसा है कि वे इससे परे दूसरा लोक नहीं मानते और इस देह पर इतना भरोसा है कि

जब तक इसमें प्राण है तभी तक इससे ईश्वर को पालने की आशा करते हैं । जगत और जीवित शरीर पर कबीर जैसी आस्था शायद ही किसी अन्य भक्त कवि की हो । उन्होंने पंडित को समझाते हुए कहा था कि 'पडिंत करसि न वाद-विवाद या देही बिन शब्द न स्वाद, । इसका कारण यह है कि उनकी दृष्टि पूरी तरह प्रत्यक्षवादी थी । वेदोंशास्त्रों का भरोसा नहीं करते थे, बल्कि ऑखन देखी का भरोसा करते थे । उन्होंने कहा भी है कि 'तू कहता कागद की लेखी । मैं कहता आँखिन की देखी । चर्मचक्षु और अन्तर्चक्षु का प्रमाण ही कबीर के लिए सबसे बड़ा प्रमाण था । कबीर की सामाजिक धार्मिक-आर्थिक सोच का गहरा सम्बन्ध उनकी आतम दार्शनिक दृष्टि से हैं । वे ईश्वर और मनुष्य को एक मानकर ईश्वर के नाम पर चलायी गयी किसी भेदभाव मूलक व्यवस्था या सोच की बनायी भेदभाव भरी समाज व्यवस्था को नही मानते । वे राजा भी मानते हैं, पर राम को एक मात्र राजा मानते हैं, वे पंडितों-मुल्लाओं द्वारा ईश्वर या खुदा के प्रतिनिधि रूप में घोषित किसी राजा, बादशाह, पैगम्बर, खलीफा को नहीं मानते । वे किसी पुस्तक को ईश्वरीय वाणी या फरमान नहीं मानते । वे राजशाही में विश्वास नहीं करते, वर्ण व्यवस्था में विश्वास नहीं करते, जन्मना जाति व्यवस्था को नहीं मानते, ईश्वर के नाम पर किये जाने वाले जनेऊ-सुन्नत कलमा आदि मनुष्यकृत सामाजिक संस्कारों को नहीं मानते । कुछ उदाहरण देखे-

जी पैं करता वरन विवारैं ।
तौ जनमत तीनि डांडी किन सारै
नहीं- तो ऊँचा नहीं को नीचा जारा प्यंड ताही का सींचा ।
जे तूं बाभन बभनी जाया । तो आन बाट हवै काहे न आया ।
जे तू तुरक तुर किनी जाया । तो भीतरि खतनां क्यूं न कराया ।
कहै कबीर मछिम नहीं कोई । सो मधिम जा मुखि रांमन न होई ।
कबीर तासौ प्रीति करि जारी ठाकुर राम ।
पंडित राजे भूपती आवहिं कौने काम ।

उनके लिए वर्ण व्यवस्था को ईश्वरकृत कहने वाला पंडित और सुन्नत, कलमा को खुदा का फरमान कहने वाला मुल्ला दोनों झूठे थे । 'पंडित बाद बंदते झूठा, कहै कबीर यह मुलनां झूठा' । चूँकि पंडित, मुल्ला दोनों झूठे थे तो इनकी बनायी किताबें भी झूठी थीं । एक वेद-पुराण को पढ़ता था तोते की तरह, लादे फिरता था गदहे की तरह, लेकिन सबके भीतर रमे हुए राम का मर्म समझता न था और दूसरे की हालत भी यही थी । वह कुरान पढ़ता और लादता था, लेकिन परमतत्त्व की गति नहीं समझता था । राजा-बादशाह इनके संरक्षक थे और ये उनके समर्थक थे । कबीर ने इन्हें भी राजा-बादशाह की तरह ही एक वर्ग में सांची प्रीति विषय मासाय चुना है । समाज-धर्म राजनीति कुलीनता-अकुलीनता, यानी मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव का सारा बखेड़ा इन्हीं लोगों ने खड़ा कर रखा था और जनता को भी भरमा रखा था । कबीर ने इनके मंदिर-मस्जिद ईश्वर का निषेध तो किया ही, ईश्वर के नाम पर चलने वाले इनके कर्मकाण्डों

और इस लोक और जीवन से परे स्वर्ग-नरक, बैकुण्ठ-मुक्ति, विहिश्त-दोजख का भी विरोध किया और निषेध करते हुए कहा कि -

पढ़ि लेकाजी बंग निवाजा । एक मसीति दसौ दरवाजा । ।
मन करि मका कबिला करि देही । बोलनहार जगत गुरू एही ।
उहॉ न दोजग भिस्त मुकांमा । इहाँ हीं राम इहां रहिमाना ।
चलन चलन सबको कहत है । ना जानौ बैकुंठ कहां है ।
जोजन 'एक परमिति नहीं जानै । बातनि ही बैकुंठ बखानै ।
जब लग है बैकुंठ की आसा । तब लग नहीं हरि के चरन निवास ।
कहै सुनै कैसे पति अइये । जब लगता हां आप नहीं जइये ।
कहैं कबीर यह कहिये काहि । साध संगति बैकुठहि आहि ।

-कबीर ग्रंथावली

इस प्रकार कबीर इस लोक के परे किसी स्वर्ग, नरक, विहिश्त, दोजख को नहीं मानते । वे मृत्यु के बाद मुक्ति की बात को भी नहीं मानते । उनका सबसे अधिक विश्वास कर्म में, पुरूषार्थ में है । वे भाग्य सिर्फ गुरु और ईश्वर की प्राप्ति में मानते हैं । जीवित रहते ही सारे प्रयत्न संभव है । मरने के बाद मुक्ति। पाने की बात उनकी नजर में झूठी है । 'जीवन कछून कीया प्रवाना । मूवा मरम को काकर जाना । 'यह समाज के अगुआ कहलाने वाले पंडितों और मुल्लाओं द्वारा किया हुआ है । इसके पीछे उनका एक मात्र उद्देश्य है लोगों को भरमाकर अपने वर्चस्व को बनाये रखना और बिना मेहनत के अपने इस झूठे ज्ञान की रोटी तोड़ना । उन्होंने अपने साधु भाइयों को आगाह करते हुए कहा था कि -

साधो जीवत ही करो आसा ।
जीवन समझे जीवन बूझे जीवत मुक्ति निवासा ।
जीवत करम की फाँस न काटी, मुये मुकिा की आसा ।
तन छूटे जिव मिलन कहत है, सो सब झूठी आसा । कबीर-वाणी

कबीर हिन्दू जन्मान्तरवाद को नहीं मानते । वैसे तो उनके नाम पर मिलने वाले पदों में कहीं कहीं ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे लगता है कि वे जन्मान्तरवाद में विश्वास करते हैं । जैसे 'जनम-जनम अनेक गया अरू आया । की बेगरि न भाड़ा पाया' लेकिन जन्मान्तर विश्वास के पदों की संख्या कम है । डॉ. धर्मवीर का कहना सही लगता है कि हिन्दुओं के कबीर पंथ में घुसपैठ के कारण इस विश्वास के पद और साखियां बाद में जोड़े गये । इसलिए वे प्रक्षिप्त हैं । कबीर की प्रकृति के आधार पर कहा जा सकता है कि वे मरने के बाद लौटकर आने में विश्वास नहीं करते । उन्होंने एक तरफ यह कहा कि 'एक जनम के कारणै, कत पूजी देव सहसौरे' तो दूसरी तरफ यह भी घोषणा की कि -

कौन मरै कौन जन मैं आई ।

श्रग सरगद्ध नक ;नरकद्ध कौने गति पाई ।
पंचतत अविगत थै अपनां, एकै किया निवासा ।
विछुरे ततफिरि सहजि समांनै, रेख रही नहीं आसा ।

-कबीर ग्रंथावली

बहुरि हम काहै को आवहिंगे ।
बिछुरे पंचतत की रचना, तब हम रांमहि पावहिंगे ।
पृथी का गुन पानी सोष्या, पानी तेज मिलांवहिंगे ।
तेज पवन मिली पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगावहिगे ।
जैसे बहुकंचन के भूषन, एकहि गलि तवांवा वहिंगे ।
ऐसें हम लोक बेद कै बिछुरें, सुनिहि मांहि समाव वहिंगे । -कबीर ग्रंथावली

कबीर आवागमन मानते थे, लेकिन ईश्वर प्राप्ति के बाद इसके मिट जाने में विश्वास रखते थे । इसी प्रकार वे कर्म की फांस मानते थे, लेकिन कर्मवाद नहीं मानते थे । जन्मान्तरवाद और कर्मवाद का अनिवार्य सम्बन्ध था और यह ब्राहमंवाद की ऐसी सृष्टि थी जिससे व्यक्ति की जन्मना, जातिगत उच्चता और निम्नता सिद्ध की जाती थी । कबीर ने इस जन्मना जातिव्यवस्था को नकारते हुए मनुष्य की उच्चता का आधार उसके कर्म को सिद्ध किया । 'ऊँचे कुल का जनमिया जो करनी ऊँच न होई' कबीर की कर्मनिष्ठा की फलश्रुति था ।

कबीर ने मनुष्य-मनुष्य के बीच सामन्तवाद और पुरोहितवाद द्वारा प्रतिपादित भेदभाव, ऊँच-नीच, छुआछूत को अमान्य कर दिया और सभी को समान घोषित किया । मध्यकाल के भीतर कबीर द्वारा देखा हुआ वह सपना है जिससे हमारे आधुनिक लोकतंत्र के आधारभूत मूल्य-स्वतंत्रता, समानता, मानवाधिकार और मौलिक अधिकार सीधे जुड़ जाते हैं । कबीर ने ईश्वर की एकता पर मनुष्य की एकता या फिर समाज में मनुष्य की एकता और समानता की आकांक्षा से ईश्वर की एकता का विचार विकसित किया । आधुनिक काल में ईश्वर का आवरण हटाकर यही लोकतंत्र और राष्ट्र बन गया । मनुष्य की भेदभाव रहित एकता और समानता का कबीर से बड़ा प्रवक्ता मध्यकाल का दूसरा भक्त कवि नहीं है । उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि -

भूलैं भरमि परै जिनि कोई । हिंदू तुरक झूठ कूल दोई ।
घर का सुत जे होई अयांनां । तकि संगि क्यूं जाइ सयाना ।
गोप भिन्न है एकै दूधा । कासूं कहिए बांम्हन सूदा । कबीर ग्रंथावली-रमैनी

कबीर ने आर्थिक विषमता को मनुष्य कृत के बजाय ईश्वर की 'माया-कला' से जोड़ा है । अतिशय भोग और धन संग्रह के त्याग की बात उन्होंने अवश्य की, माया मारने की या उसे छोड़ने की बात अवश्य कही, लेकिन सामाजिक विषमता पर उनका प्रहार जितना धारदार है उतना आर्थिक विषमता पर नहीं है ।

6.2.3 कबीर काव्य का संवेदनात्मक पक्ष

कबीर भक्त कवि हैं । पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि भक्ति उनके काव्य की केन्द्रीय वस्तु है और उसके अलावा सामाजिक सुधार या कवित्व सब दोयम दर्जे का है, फोकर है बाई प्रोडक्ट है । वह भक्ति के साथ अपने आप बन गया है । कबीर की भक्ति समाज सुधार का साधन है, हथियार है । इस विवाद में न पड़ते हुए छात्रों को यह ध्यान रखना चाहिए कि कबीर की भक्ति एक साथ निजी और सामाजिक दोनों है । सामाजिक वह इसलिए है कि उसे कोई भी अपना सकता है, सबके लिए उसका दरवाजा खुला है और व्यक्तिगत वह इसलिए है कि उसे पाना हर किसी के वश की बात नहीं है । जो अपना आत्मबलिदान करने की क्षमता रखता है उसी को भक्ति मिलती है । वह सर्वसुलभ तो है, लेकिन उस की उपलब्धि व्यक्तिगत है । इसलिए कबीर ने इसे 'विरले' का मार्ग कहा था । कबीर की भक्ति 'वीर्यवती साधना' है और वे 'वीर साधक' है । सती और शूर की तरह जो अपने तन की आस छोड़ देता है, प्राण की चिन्ता नहीं करता, वही इस मार्ग का पथिक हो सकता है । शरीर का मोह रखने वाला कायर व्यक्ति इस राह पर नहीं चल सकता । भक्त का यह रूप कबीर का अपना है, सगुण भक्तों ने भक्ति की कठिनाई - 'रघुपति भगति करत कठिनाई-' तुलसीदास- की बात अवश्य की, लेकिन वीर स्वरूपा भक्तिं के वे कायल नहीं हैं । सूर के यहाँ भक्ति का यह रूप नदारद है । इस बारे में कबीर के कुछ उदाहरण देखिए -

रांम रसाइन प्रेम रस पीवत अधिकर साल ।
कबीर पीवण दुलभ है माँगें सीस कलाल ।
कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ ।
सिर सौपों सोई पिवै, नहीं तो पिया न जादू । साखी कबीर ग्रंथावली

इसे कबीर ने तरह-तरह से अनेक साखियों और पदों में कहा है-

भगति दुहेली रांम की, नाहिं कायर का काम
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरिनाम ।
भगति दुहेली रांम की, जैसि खांडे की धार ।
जे डोलै तो कटि परैं, नहीं तो उतरै पार ।
भगति देहेली रांम की, जैसी अगनि की झाल ।
डाकि पड़े तो ऊबरै, दाधै कौतुक हार । साखी -कबीर ग्रंथावली

भक्ति के वीर्यवती रूप में शूर और सती ही उनके आदर्श हैं । साधु का संग्राम तो माया, मोह, अहंकार से तो जीवन भर का है, लेकिन सती और शूर में आत्मबलिदान का जो साहस है, कुछ घण्टे के लिए ही सही, उसका चरम निदर्शन संत में होता है-

टूटी बरत अकास थै, कोई न सकै झल झेल ।
साध सती अरू सूर का अणी ऊपरि खेल । साखी -कबीर ग्रंथावली

कबीर की भक्ति नामरूप है और प्रेमरूपा भी और अपने दोनों रूपों में आन्तरिक है । नाम विचार और नाम स्मरण को कबीर ने बहुत ज्यादा महत्व दिया है । इसे विशेष महत्व देने का मूल कारण यह है कि कबीर निर्गुण ईश्वर के उपासक हैं । भक्ति के लिए वे आधार रूप में नाम को ही ग्रहण करते हैं । उन्होंने अपनी एक रमैनी में स्वीकारा है कि -

सिरजन हार नाउं धू तेरा, भी सागर तिरबौ कूं भेरा ।
राम गुंसाई मिहिर जुकीन्हा, भेरा साजि संत को दीन्ह ।
दुख खंडन मही मंडना, भक्ति मुक्ति विश्राम ।
विधि करि भेरा साजिया धरा राम का नाम । -कबीर ग्रंथावली

कबीर के निर्गुण राम का नाम विचार सगुण भक्तों के नाम विचार से अधिक महत्व का है । राम नाम में विवेक की जितनी बड़ी भूमिका कबीर आदि निर्गुणियां मानते हैं, सूर-तुलसी आदि नहीं मानते । यहीं बात नाम स्मरण के बारे में है । नाम स्मरण के बारे में जिस कुर्बानी और साधना की अपेक्षा कबीर करते हैं, वह कबीर की भक्ति की अपनी पहचान है । कबीर के नाम विचार के दोनों पक्षों को उनकी इन साखियों में आप देख सकते हैं-

राम नाम सबको कहै, कहिने बहुत विचार ।
सोई राम सती कहैं, सोई कौतिगहार ।
आगि कहयां दाझै नहीं, जे नहीं चंपैपाइ ।
जब लग भेद न जांणिये, राम कहयौ तौ राई । साखी -कबीर ग्रंथावली
गुण गाये गुण ना करें, रटे न राम बियोग ।
अंहनिसि हरिध्यावैं नहीं, क्यूं पावें दुलभ जोग ।
कबीर कठिनाई खरी, सुमिरतां हरि-नाम ।
सूली ऊपरि नर विद्या, गिरूँ त नाही ठाम । साखी -कबीर ग्रंथावली

कबीर ने नाम स्मरण में विवेक और ध्यान को बहुत महत्व देते हुए 'दुर्लभयोग' कहा है । उन्होंने नाम स्मरण को बाह्य-जिहवा जाप, मालाजाप के बदले आन्तरिक माना है । इसको उन्होंने 'अजपाजाप' कहा है । इसमें जिहवा और माला की जरूरत नहीं पड़ती, बल्कि मन को संयमित कर राम के नाम से जोड़ने की जरूरत पड़ती है ।

जितनी लगन कबीर को नाम रूपा भक्ति में है उतनी ही भाव या प्रेम रूपा भक्ति में । अहैतुकाया निष्काम भाव, हृदय की निश्छलता, अनन्यता, शरणागति का भाव अन्य भक्तों की तरह कबीर की भक्ति में है, लेकिन इसमें कबीर का लगाव विशेषत: दाम्पत्य भाव की भक्ति से है । एक तो प्रेम वैसे भी कठिन है । कहने के लिए वह आसान है, लेकिन व्यवहार में उसका एक रस निर्वाह महा कठिन है । इसे निभाने के लिए कुल पद, प्रतिष्ठा के अहंकार को तिलांजलि देनी पड़ती है । वैसे तो सबके लिए

प्रेम का दरवाजा खुला है । लेकिन इस दरवाजे के अंदर जाने की एक मात्र शर्त यही है कि मन की गठरी उतार दो, सिर कटाने का हौसला रखो -

कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि ।
सीस उतारै हाथि करि, सौ पैसे घर मांहि ।
प्रेम न खेती नीपजे, प्रेम न हाटि बिकाइ ।
राजा परजा जिस रूचे, सिर दे सो ले जाय । साखी -कबीर ग्रंथावली

राम के इसी विरले प्रेम को कबीर दाम्पत्य और दास्यभाव से पाना चाहते हैं और दोनों में समर्पण और चाहत सबसे ऊँची होती है । वे अपने राम के लिए उनकी ब्याहता बहुरिया बनना पसंद करते हैं और उनका कुत्ता भी ।

हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहरिया ।
किया स्यंगार मिलन कै ताई, काहे न मिली राजा रांम गुसांई । -कबीर ग्रंथावली

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौ बहुगुणियाले कंत ।
जे हंसि बोलों और सौं तौ नील रँगाऊ देत ।
कबीर रेख सिंदूर की, काजल दिया न जाइ ।
नैन रमइया रमि रहया, दूजा कहाँ समाइ । साखी -कबीर ग्रंथावली

कबीर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नाउ ।
गलै राम की जेवडी, जित खैंचे तित जाऊँ ।
ज्यू हरि राखै ब्यूर है, जो दे वैसो खाउं । साखी -कबीर ग्रंथावली

कबीर की भक्ति के बारे में कुछ बातें और ध्यान रखने की है । पहली बात वह प्रधानत: आन्तरिक है । वह हर प्रकार से भक्ति सम्बन्धी कर्मकाण्डों को निषेध करती है । दूसरी बात, वह करनी-कथनी की एकता पर बल देती है । तीसरी बात-दैनिक क्रियाकलापों के विरोधी नहीं है, बल्कि उन्हें भक्ति के रंग से सराबोर कर देने में विश्वास रखती है । चौथी बात, वह भेद भक्ति के बदले अभेद भक्ति को मानती है । पांचवीं बात, उसमें ज्ञान और प्रेमानुभूति का समान महत्व है । राम नाम विचार और रामरस, ब्रह्मा विचार और रामरसायन दोनों एक ही भक्ति के दो सिरे हैं । कबीर का 'संतोभाई आई ग्यान की आंधी रे - आंधी पीछे जो जल बूंठा, प्रेम हरिजन मीनां । पद बहुत प्रसिद्ध है । उसमें पारमार्थिक-व्यावहारिक जैसा कोई भेद भी नहीं है । इसी प्रकार वह जितनी निजी है, उतनी सामाजिक भी । उसमें गुरु और सत्संग का बड़ा महत्व है।

6.3 कबीर का काव्य : अभिव्यंजना पक्ष

6.3.1 काव्य रूप

हमारे यहां काव्य की दो परम्पराएं रही हैं । एक लिखित, दो-मौखिक । मौखिक परम्परा लिखित से बहुत पुरानी है जब पढ़े-लिखे लोगों ने लिखित काव्य परम्परा अपना ली तो सामान्य अनपढ़ जनता मौखिक परम्परा के सहारे अपने आशु काव्य

रचती और गाती रही और यह काम पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा । अमीर खुसरों पहले कवि हैं जिन्होंने हिन्दी की मौखिक काव्य परम्परा को लिखित रूप देने की कोशिश की । कबीर ने भी यही काम किया लेकिन खुसरों और कबीर की काव्य संबंधी सोच में बड़ा अन्तर है । दूसरी बात काव्य रचना के लिए भाषा के प्रयोग में भी अन्तर है । अमीर खुसरों को हिन्दी से ज्यादा फारसी भाषा की लिखित काव्य परम्परा पर अधिक विश्वास था । हिन्दी काव्य उनके लिए फारसी से महत्वपूर्ण न होने के कारण दोयम है । सही बात है कबीर ही मौखिक परम्परा के पहले आशुकवि है । वैसे भी कबीर लिखित से अधिक महत्व शब्द या कहे पर जोर देते हैं ।

कबीर ने संस्कृत-प्राकृत से चली आयी काव्य परम्परा को त्याग दिया । दूसरी ओर लोक की चमत्कारों, अन्धविश्वासों, भूत प्रेतों वाली मौखिक काव्य परम्परा को भी छोड़ दिया । संस्कृत और प्राकृत काव्य दरबार के भीतर लिखे जाते रहे हो या दरबार के बाहर, उनके नायक-नायिका वर्णव्यवस्था में सबसे ऊपरी लोग होते थे । देवता, क्षत्रिय, ब्राह्मण, यही खासतौर पर नायक-प्रतिनायक होते थे । लोक में भी ऐसी मौखिक लोक गाथाएं थीं जो लोक प्रसिद्ध लोगों के जीवन को चमत्कारों, असंभव घटनाओं के सहारे चाव से गायी और सुनी जाती थीं । ये दोनों आख्यान मूलक थीं । आख्यानमूलक इसलिए थी कि इतिहास, चरित, कथा, यश लीला सब इनके हिस्से में थे । काव्य के केन्द्र में यही थे । इन्हीं का आख्यान, प्रबंध, गीत, नाटक, गाथा लोगों की जान था । वर्णव्यवस्था में सबसे निचले स्तर के लोग हाशिये पर थे । वे चरित, कथा, गाथा के मुख्य पात्र बनने के लायक नहीं समझे जाते थे । कबीर ने इस लिए सामग्री अपने वर्ग के कारीगरों और कामगारों से जुटाई और इन्हीं के जरिए अपने हृदयस्थ राजा राम की कविता लिख डाली ।

कबीर की आशु प्रतिभा का मध्यकाल में कोई कविसानी नहीं हैं । कुंभकार, सुनार, लुहार, माली, बढ़ई, अहेरी, बाजीगर, वाद्यकार, बुनकर के जरिए कविता लिखने वाले पहले कवि कबीर ही है । इनमें एक ओर आशु कवि की सहजता और अकृत्रिमता है तो दूसरी ओर एक साहित्यिक कवि की वाक् चतुराई भी है । कुछ दृष्टान्त देखिए -

सतगुरू सॉचा सूरियां, ताते लोहि लुहार ।
कसनी दे कंचन किया, ताई लिया सतसार ।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरूँत नाही ठांम ।
आहेड़ी दौलाइया, मृगा पुकारै रोइ ।
जा बन में क्रीला करी, दाण्त है बन सोइ ।
पाका कलस कुंभार का, बहुरि न चढ़हि चाकि ।
कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ ।
तंबोली के पानज्यूं, दिन दिन पीला होइ ।
माली आवत देखिके, कलियन करी पुकार ।
बाढ़ी आवत देखिके, तरूवर डोलन लाग ।

सत गुरू ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ ।
एक जु आया पार धी, ले गयो सबै उडाइ ।
जंत्र विचारा क्या करे, चले बजावण हार ।
मंछी हुआन छूटिये, झीवर मेरा काल ।
झीनी झीनी बीनी चदरिया ।

रेखांकित अंशों पर ध्यान दे तो पता चलेगा कि कबीर ने काव्य की वस्तु ही नहीं बल्कि काव्य के उपकरणों में बहुत क्रांतिकारी उलट फेर किया था । उन्हें अपना गुरू, अपना राम, काल खासतौर से किसी न किसी कारीगर के रूप में याद आता है । इनका काम भी कबीर की नजर में शूरमा काठी काम था । उन्होंने जिस सती को अपनी भक्ति का आदर्श घोषित किया था वे लोकख्यात शूर-सती न होकर इसी सामान्य वर्ग के हैं, जिनमें वीरता दृढ़ता किसी से कम नहीं होती, पर वे अनाम रहते हैं । इसी वस्तु के कारण कबीर के आख्यान प्रबंध परम्परा, आख्यान आधारित रहते हैं । परम्परा को छोड़कर उन्होंने मुक्त गीत काव्य परम्परा और काव्य रूप को अपनाया ।

6.3.2 भाषा शैली

कबीर-काव्य की मूल भाषा क्या थी, उसके बारे में निर्णायक रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता है । लेकिन कबीर-वाणी के अब तक जो पाठ मिले हैं और उनके आधार पर हिन्दी विद्वानों ने कबीर के जो संशोधित और प्रामाणिक पाठ तैयार किये है वे तीन तरह के हैं । श्याम सुंदरदास, पारसनाथ तिवारी और माता प्रसाद गुप्त द्वारा तैयार की गयी ग्रंथावली के आधार राजस्थानी प्रभावित पाठ हैं । गुरू ग्रंथ साहिब और रामकुमार वर्मा को आधार बनाकर किया गया सम्पादन, पूर्वी भाषा से प्रभावित हैं । कबीर की भाषा काशी बीच बोली जाने वाली भाषा रही होगी । कबीर घुमक्कड़ थे और सत्संगी भी । वे सूफियों और योगियों के सम्पर्क में थे, इसलिए उनकी भाषा के खडापन का रंग जरूर उनकी भाषा में रहा होगा । पाठों की तरह-तरह की भाषा ने बाबू श्याम सुंदर दास को ऐसा चक्कर में डाला कि वे कबीर की भाषा को 'टेढ़ी खीर' कह बैठे और पंडित रामचन्द्र शुक्ल 'पंचमेल खिचड़ी' कबीर का पाठ अलग-अलग भाषा क्षेत्रों के लोगों ने तैयार किया, इसलिए उनकी भाषा के मूल रूप की समस्या उठ खड़ी हुई । दूसरी बात, कबीर की भाषा देशज है, उसके ठाठ में टेढ़ापन है । वह तुलसी की अवधी से अपनी प्रकृति में अलग भी है, संस्कृत फारसी के तत्सम् का आग्रह कबीर में जायसी की तरह कम से कम है । वे संस्कृत को 'संसकीरत', ब्राह्मण को बाम्हन, शूद्र को सूद खुदा को खुदा कहते हैं । वह निखालस है और उसमें अपभ्रंश कवियों की कृत्रिमता भी नहीं है ।

भाषा पर कबीर के जबरदस्त अधिकार की बात पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्वीकारी है । भाषा पर अधिकार का प्रमाण यह है कि जैसा प्रसंग होता है वे भाषा को वैसा ही ढाल लेते हैं । योगी के सामने योगी वाली, पंडित के सामने पंडित जैसी, मुल्ला के

सामने मुल्ला जैसी, लोगों के सामने लोगों जैसी साधु के सामने साधु जैसी और यदि भक्त में प्रेम की बात हो भाषा पिघल कर बहने लगती है । इस प्रकार उनकी भाषा के अनेक स्तर मिलते हैं और शैलियां भी अनेक हैं । उनकी एक शैली तो उलट बांसी है । जैसे-ठाढ़ां सिंह चरावै गाई, चेला के गुरू लागा पाई पानी में अगिनिजरै, अंधरें को सूझे' आदि इस शैली का उपयोग पंडितों और ज्ञानियों के खिलाफ करते हैं । उनकी एक शैली आत्मकथात्मक है जिसका उपयोग वे अपना अनुभव व्यक्त करने के लिए करते हैं जैसे- 'माधो ऐसा मैं अपराधी' या 'वाल्हा आव हमारे गेह', 'हरि जननी में बालिक तेरा । 'कबीर के कहने की एक शैली वक्ता और श्रोता की है । सबसे अधिक विविधता इसी में है । इनमें से एक अनौपचारिक बातचीत की शैली है यानी बोलचाल की । जैसे 'हेरत हेरत हे सखी!' मेरावीर जुहारिया तू जिनि जाले मोहि', हौ तोहि पूछौ हे सखी, 'सती पुकारै सालि चढ़ि सुन रे मीत सुजान' आदि । उनकी एक शैली का जो रूप सबसे अधिक लोकप्रिय है - वह व्यंग्यात्मक है - पंडिया कौन कुमति तोहि लागी,' 'मियां तो हि बोलना नाहि आवौं, 'जो पै करती वरण विचारै, 'पंडित बाद बदन्तें झूठा, आदि अनेक उदाहरण ढूँढे जा सकते हैं । इनमें उनकी तर्क शक्ति सबसे प्रभावशाली है । उनकी कहने की शैली कोई भी हो, प्रभावित किये बिना नहीं रहती है ।

कबीर की भाषा शैली की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने लोगों के बीच प्रचलित अनेक कहावतों और मुहावरों को हिन्दी का बना दिया । डी. गोपी चंद नारंग ने कबीर की इस विशेषता को विशेष रूप से रेखांकित किया है -

जैसे-

कबीर गुरु गरवा मिल्या, रलि गया आरू लूंण ।
जास गुरू भी अधंला, चेला खरा निरंध ।
कर बहियां ले अपनी, त जौ बिरानी आस ।
जिहिं हरि जैसा जाणियों, तिनकूं तैसा लाभ ।
जिह घट बिरहन संचरै, सो घट जाण मसान ।
जे लोइण लोंही चुवै, तौ जाणौं हेत हियांहि ।
पोथी पढि पढि जग मुआ, पंडित भयान कोइ ।
माया मुई न मन मुआ, मरि मारि गया सरीर ।
आसा तिरना ना मुई कह गये दास कबीर
पूंछ जु पकड़ै भेड़ की, उतरया चहसि पार ।

6.3.3 अलंकार

कबीर के यहां अलंकार का सौन्दर्य अकृत्रिम, सहज है । वे सादृश्यमूलक अलंकार के बहुत प्रेमी हैं । उपमा, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, विरोधाभास, वक्रोक्ति, दृष्टान्त आदि भाव की वक्रता, आवेग से अनायास खिंचे चले आते हैं । पढ़े-लिखे कवियों में या कलाग्रही कवियों में जो अलंकार के प्रति प्रेम, मोह से लेकर प्रदर्शन की प्रवृत्ति होती है वह

कबीर में नहीं है । अपनी बात से स्पष्टीकरण के क्रम में उन्होंने अलंकारों का सहज प्रयोग किया है । कबीर के अलंकारों का आधार लोकानुभव और लोक व्यवहार है ।

ज्यू नैनु मैं पूतली, त्युं लोकानुभव और लोक व्यवहार है । - उपमा

झिरि मिरि झिरिमरि बरषिया, पॉहण ऊपरि मेह ।

माटी गलि सैजल भई, पॉहण वोही तेहा - अन्योक्ति

इस मन को मैदा करौ, नान्हॉ करि करि पीसि । - उपमा

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय । - उपमा

चलती चाकी देखिकर दिया कबीरा रोय ।

दो पाटन के बीच में बाकी बचा न कोय - रूपकातिश्योक्ति, अन्योक्ति

कबीर यह जुग अंधला, जैसी अंधी गाइ ।

बछा था सो मरि गया, ऊभी चांम चटाइ । - दृष्टान्त

संतो आई ग्यान की ऑधी । - रूपक

6.3.4 छन्द

कबीर की साखियों का आधार दोहा, पदों का आधार लोकगीत और रमैनी का आधार चौपाई का छंद है । डी. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने कबीर की रमैनी को हिन्दी चौपाई छंद का प्रथम प्रयोक्ता माना है । इसके अलावा बीजक में कहरवा, बसन्त, विरहु ली या बेलि आदि धुनों में रची जो रचनाएं कबीर की कही जाती हैं । वे सभी लोकगीतों पर आधारित हैं । ध्यान देने की बात यह है कि ये सभी मात्रिक हैं ।

6.4 मूल्यांकन

कबीर के काव्य की अनुभूति और अभिव्यंजना पक्ष पर विचार करते हु ए जो तथ्य उभरता है उससे उनका कवि रूप कहीं किसी भी दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं लगता । भले ही वे मूल रूप में भक्त, चिंतक और समाज सुधारक थे किन्तु जो कुछ सोचा, समझा और महसूस किया, उसे कविता के माध्यम में प्रस्तुत कर दिया । उन्होंने समाज सुधार का कार्य भी काव्यमयी अभिव्यक्तियों से किया । अत: उनके विभिन्न रूपों का, उनके कवित्व से गहरा संबंध है । चूंकि कबीर ने जो कुछ कहा, वह निष्प्रयोजन नहीं था । अत: उसमें सहजता है और संप्रेषणीयता भी । उनके कुछ दोहों की मूल वस्तु अवश्य विचारात्मक है जिसके कारण उसके शुष्क उपदेश में बदल जाने की गंभीर संभावना थी । लेकिन कवि की अनुभूति और कल्पना के संयोग से कविता उद्दीप्त हो गई है जो पाठक को आकर्षित, संप्रेषित एवं द्रवित किये बिना नहीं रहती ।

"विरहिन अभी पन्थ सिरि, पंथी बुझै धाइ ।

एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैंगे आइ ।।

बहु त दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम ।

जिव तरसै तुम मिलन को, मन नांही विश्राम ।।
कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ ।
विरहणि पिव पावै नहीं, जियरी तलै माइ ।।"

यहां कवि ने अपनी विरह-वेदना को सहज स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत कर दिया है । उसके इन उद्‌गारों में भावात्मक आकर्षण की उद्दीप्ति अपने उत्कृष्ट रूप में मिलती है । इस प्रकार संत कबीर के पास न केवल उदात्त विचार, पावन भावनाएं एवं गहन अनुभूतियां थीं बल्कि कल्पना की वह शक्ति भी थी जिसके बल पर वे अपने विचारों, भावों और अनुभूतियों को समन्वित कर काव्य में रूपांतरित कर सके ।

कबीर की भाषा पर विविध आरोप लगाये जाते हैं कि उनमें विभिन्न भाषाओं के अनमेल मेल, व्याकरणिक अशुद्धियां, शब्दों की तोड़-मरोड़ और स्थूल काव्य गुणों का अभाव है । दूसरी ओर उनकी इसी कमी को गुण बताते हुए हजारी प्रसाद द्‌विवेदी ने उन्हें वाणी का डिक्टेटर कहा है । कबीर की भाषा को भीतर से देखने की जरूरत है, बाहर से नहीं । कबीर के प्रिय छंद दोहा और पद हैं । इनके उपदेशों को लिपिबद्ध किया । इसलिए शब्दों की दृष्टि से पाठान्तरण भी मिलता है । अनगढ़, नैसर्गिक, भाषा में लिखा कबीर का काव्य एक महान् व्यक्ति के, महान् विचारों और भावों की सफल तथा सार्थक अभिव्यक्ति है । इस कारण वह पाठकों का क्षणिक मनोरंजन मात्र न कर उन्हें स्थायी शांति प्रदान करता है ।

6.5 विचार सन्दर्भ और शब्दावली

1. **आशुकवि-** आशुकवि उसे कहते है जो प्रतिभा सम्पन्न तो होता है, लेकिन व्युत्पत्ति और अभ्यास का भरोसा नहीं करता । इसमें कवित्व अकृत्रिम या अपने आप होता है । लोक परम्परा में ऐसे अनेक कवि होते आये हैं ।
2. **साखी-** संस्कृत के 'साक्षी' का तदभव रूप - साखी है । निर्गुणियां कवियों ने स्वयं के साक्षात्कृत अनुभव सत्य को साखियों में प्रकट किया है । इन्हें
   ज्ञात आँखें - 'साखी आँखी ज्ञान की' - कहा जाता है । सिद्ध इनका उपयोग 'उएस' ;उपरेश के रूप में और नाथयोगी 'साखी' के नाम से करते थे ।
3. **सबद-** संस्कृत के 'शब्द' से 'सबद' बना है । ब्रह्म का प्रथम विवर्त शब्द है । आतम या ब्रह्म विचार और अनुभूति की प्रधानता के कारण निर्गुणियां सन्तों ने इन्हें सबद, सबदी या गीत कहा है । 'यह जिनि जानौ गीत है, यह निज ब्रह्मा विचार' । नाथों के यहां यह इसी नाम से है, सिद्धों के यहाँ चर्यापद के नाम से ।
4. **रमैनी-** रमैनी को 'रामायण' का तदभव रूप माना जाता है । रामायणी यानी रमैनी । रामायण का सस्वर मधुर गायन करने वाले को रामायणी कहा जाता है । कबीर ने इनमें संसारोत्पत्ति और जीवों के संसार का गीत गाया है । इसमें चौपाई और दोहे का प्रयोग होता है । यह भी लोकप्रिय काव्य रूप है ।

5. **सहज समाधि-** समाधि अपने प्राथमिक चरण में यत्न साधिन होती है और क्षणिक होती है । समाधि की चरमावस्था में मन पूर्णत: राममय हो जाता है मन को निरायास ईश्वर से जोड़े रखना सहज समाधि है । इसके टूटने पर मन फिर दुनिया में लौट आता है ।
6. **सुरत-** ईश्वरोन्मुख साधक की चेतना-सुरत है ।
7. **उन्मीन रहनि-** ईश्वर से अपनी चेतना को निरंतर बनाए रख कर भी साधक द्वारा लोक व्यवहार निभाते रहने की अवस्था 'उन्मनि रहनि' है । मन की सर्वोच्च दशा उन्यूखी रहनि है ।
8. **नाद रु व्यंद-** तंत्र शास्त्र के अनुसार सृष्टि की मूल शक्ति को नाद कहते हैं । जब वह अपना विस्तार करती है तब उसे बिन्दु कहते हैं । गोरख पंथ के अनुसार नाद रूपी सृष्टि सूक्ष्म और बिन्दु रूपी सृष्टि स्थूल है । इसी नाद और बिन्दु से सारी सृष्टि आरोहित और इसी में तिरोहित होती है ।
9. **बिगूचन-** अड़चन, उलझन, मुश्किल ।
10. **सुन्न मंडल-** तंत्र और योग की पीरभाषानुसार हमारा मस्तक गगन अथवा शून्य है । हमारे कपाल के भीतर सुषुम्ना नाड़ी के ऊपरी सिरे पर एक छेद है, जिसे गगन छिद्र कहते हैं । प्रतीक की शब्दावली में यह शून्यम महल है । व्यावहारिक भाषा में यह हमारा मस्तिष्क है । मिलन-विरह, स्मृति-विस्मृति का बोध इसी से जुड़ा है।
11. **रंगमहल-** घर का भीतरी खास कर सोने का कमरा जिसमें प्रेमी या दम्पत्ति मिलते है । कबीर की दृष्टि में शरीर ही रंगमहल है जिसमें हम परमप्रिय ईश्वर से मिलते हैं । योग और तंत्र भी यही मानते हैं ।

6.6 सारांश

कबीर मध्यकाल के एक क्रांतिकारी विचार सम्पन्न और प्रतिभाशाली भक्त कवि हैं । उनको छोड़कर भक्ति काल की चर्चा पूरी नहीं हो सकती है । उनके काव्य का आधार एक व्यवस्थित सोच है और उसी से उनके दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विचार प्रेरित हैं, उसी से उनकी भक्ति संचालित है । उनकी विशेष दृष्टि से ही उनका पूरा काव्य आकार पाता है । पर वे शंकर, रामानुज आदि की तरह प्रस्थानत्रयी से चिपके दार्शनिक नहीं समाज और संसार से विरक्त एकान्त प्रिय भक्त नहीं हैं, महात्मा गांधी, स्वामी दयानंद सरस्वती, डॉ. अम्बेडर की तरह राजनीति-समाज संगठक नेता और समाज सुधारक नहीं हैं । ईश्वर माया, समाज, भक्ति के बारे में उनकी अपनी सोच है । परम्परा से अधिक अपने समसामयिक विभिन्न विचारों-नाथों, सूफियों, वैष्णवों से प्रभावित होते हुए भी वे उनके शास्त्र और व्यवस्थागत गतानुगतिक विचारों; अंधानुकरण और पिष्ट पोषण के कायल नहीं है । जैसे वे अपने जमाने के विभिन्न मतों के अगुआ बुद्धिजीवियों के कायल नहीं है उसी प्रकार साधारण जनता के

अन्धविश्वासों और कर्मकाण्डों के भी कायल नहीं है । मध्यकाल के भीतर कबीर जैसे स्वतंत्र विचारों वाला कोई दूसरा भक्त कवि नहीं है । उनकी भक्ति की अपनी पहचान है । वह अवतारवादी हिन्दू सगुण भक्ति, पैगम्बर और पीर अनुगामी मुस्लिम और सूफियाना बंदगी और काया केन्द्रित नाथ साधना से अलग निर्गुण आतम राम की भक्ति है । इस भक्ति में आतमराम की खोज-खबर, नाम साधना, जप का अपना विशिष्ट अर्थ है । यह भक्ति ईश्वर और मनुष्य की एकता और समानता के जिस रूप की पक्षधर है उसमें आधुनिक लोकतंत्र की समानता स्वतंत्रता, समानाधिकार के मौलिक मानवीय अधिकार के बीज ढूढ़े जा सकते है । लोकतंत्र के बावजूद जातियों, धर्मो, सम्प्रदायों, सामाजिक स्तरों में शतछिद्र विभाजित भारतीय समाज के लिए कबीर काव्य प्रकाश स्तंभ की भाँति मार्गदर्शक है ।

कबीर का काव्य आख्यान परम्परा; प्रबंधात्मक, गीतात्मक दोनों का काव्य नहीं है । कबीर ने इस परम्परा का पूरी तरह से निषेध किया है, कारण कि ये समाज की सवर्ण जातियों के आख्यान पर केन्द्रित हैं । मौखिक आख्यान परम्परा का भी कबीर अनुकरण नहीं करते हैं, कारण कि उसका आधार प्रसिद्ध लोक नायकों की गाथाएं रही हैं । वे हिन्दी के पहले आशुलोक और साहित्यिक कवि हैं । वे सहज प्रतिभा के सबसे धनी हैं । आशुलोक कवि की सहजता और साहित्यिक कवि के वाक़चातुर्य का संश्लेषण उनके काव्य में दिखाई पड़ता है । उन्होंने कामगरों के सामाजिक और अपने निजी निर्गुण, अलख आतम यथार्थ को ही कविता में ढाल दिया । उनकी भाषा-शैली में अद्भुत सर्जनात्मकता और आकर्षण है । भाषा के रूप और शैलियां भी कई हैं । दोहे, पद, चौपाई जैसे विभिन्न लोकमात्रिक छंदों को उन्होंने अपनी अभिव्यंजना के लिए चुना । अनुभूति और अभिव्यंजना दोनों दृष्टियों से उनका काव्य हिन्दी पाठक के लिए अपरिहार्य है ।

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. कबीर-काव्य के विचार पक्ष का संक्षेप में विवेचन कीजिए ।
2. कबीर के सामाजिक विचार की प्रगतिशीलता समझाइए ।
3. कबीर की भक्ति के सामाजिक सन्दर्भ की संक्षिप्त चर्चा कीजिए ।
4. कबीर-काव्य की विषय-वस्तु का औचित्य बताते हुए उनकी भाषा शैली की सृजनात्मकता पर विचार कीजिए ।
5. कबीर- काव्य की प्रासंगिकता पर टिप्पणी लिखिए ।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. कबीर को ईश्वर का कौनसा रूप सबसे अधिक प्रिय है?
2. कबीर की काव्य परम्परा पर टिप्पणी लिखिए।
3. कबीर के ईश्वर और मनुष्य की एकता संबंधी विचार लिखिए।

4. कबीर की भक्ति की कुछ खास विशेषताएँ लिखिए।
5. कबीर की अलंकार योजना पर संक्षेप में विचार कीजिए।

6.8 सन्दर्भ-ग्रंथ

1. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थवाल - हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, अवध पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ, संस्करण - सं. 2000
2. पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - सन् 1985
3. डॉ. माता प्रसाद गुप्त - कबीर ग्रंथावली, प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा । प्र. सं. - सन् 1969
4. डॉ. पारसनाथ तिवारी - कबीर वाणी-सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद - 2 च. सं. सन् 1978
5. डॉ. रामचन्द्र तिवारी - कबीर मीमांसा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद तृ- सं. - सन् 1989
6. डॉ दयाशंकर - कबीर और तुलसी के काव्य की अन्तर्वस्तु का तुलनात्मक अध्ययन पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद प्र. सं. सन् 1993
7. डॉ. धर्मवीर - कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र. संस्करण सन् 1997
8. पुरूषोत्तम अग्रवाल - कबीर : साखी और सबद, नेशनल बुक ट्रस्ट, इडिया नई दिल्ली, पहला सं. सन् 2007

इकाई-7 मलिक मुहम्मद जायसी का काव्य

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 कवि का जीवन परिचय

7.2.1 जन्म

7.2.2 जन्म तिथि

7.2.3 जन्म स्थान

7.2.4 विवाह

7.2.5 गुरू

7.2.6 रचनाकार - व्यक्तित्व

7.2.7 रचनाएं

7.3 काव्य वाचन तथा ससंदर्भ व्याख्या

7.3.1 नागमति चितउर पथ हेरा.....काल मोहि दीन्ह

7.3.2 पीउ बियोग.....पाँख जरा, जा भागि

7.3.3 सावन बरस मेह.....खेवक बिनु थाकी

7.3.4 मा भादों दूभर.....दे बुड़त , पिउ! टेक

7.3.5 लाग कुवार.....बाजहु होइ सदूर

7.3.6 कातिक सरद चंद.....छार सिर मेलि

7.3.7 फागुन पवन.....धरै जहँ पाव

7.3.8 रोइ गंवाए.....बूझै निसरी पंखि

7.3.9 भई पुछार.....तरिवर होइ निपात

7.3.10 कुहु कि कुहु कि.....जेहि सुनि आवै कंत

7.4 मूल्यांकन

7.5 विचार संदर्भ एवं शब्दावली

7.6 सारांश

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.8 संदर्भ ग्रंथ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ कर आप :-

- पूर्व मध्यकाल में सगुण और निर्गुण दो प्रमुख काव्यधाराएं प्रचलित थी । पुन:निर्गुण काव्यधारा में संत काव्य और सूफी काव्य नामक दो काव्यधाराएं प्रमुख थीं, का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

- सूफी काव्यधारा और सूफी सम्प्रदाय के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- मलिक मुहम्मद जायसी के जीवन से परिचित हो सकेंगे ।
- जायसी की कविता की भाषागत और शिल्पगत विशेषताओं को समझ सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

हिन्दी का सूफी काव्य फारसी सूफी काव्य तथा इस्लाम से प्रेरित होते हुए भी भारतीय था । धार्मिक दृष्टि से देखने वाले लोगों ने इसको इस्लाम का प्रचारक माना तो कुछ लोगों ने इसको अभारतीय घोषित किया । सूफी कवियों ने भारतीय प्रेमाख्यानों की परंपरा में अपने काव्यों की रचना की । प्रारम्भ में सूफी इस्लाम के प्रचारक थे परन्तु वे मुल्लावाद के विरोधी भी थे । सूफियों ने तसव्वुफ के आधार पर मुल्लावाद का विरोध किया और निश्छल ईश्वरीय प्रेम पर जोर दिया । सूफी शब्द सूफ से बना है । जिसका अर्थ पवित्र और सफेद ऊन है । सूफी संत सफेद ऊनी चोंगा पहनते थे और वैभवशाली जीवन के विरोधी थे । सूफियों के अनुसार मुहम्मद साहब को ईश्वर से दो प्रकार की वाणियाँ प्राप्त हुई थीं - 'इल्म - ए - सकीना' (ग्रन्थ ग्रथित ज्ञान), जो कुरान शरीफ में संगृहीत है । दूसरी 'इल्म - ए - सिना' जो हृदय में निहित थी । सूफियों ने इल्म-ए-सिना को अपनाया । सूफी काव्य का प्रारम्भ ईरान में 11 वीं शताब्दी में हुआ और 18 वीं शताब्दी में समाप्त हो गया । सूफी काव्य में रहस्यवादी भावना भी आई । रहस्य- भावना के माध्यम से कवियों ने मनुष्य की एकता का प्रतिपादन किया । सामंती शासन ने सूफियों का विरोध किया और मंसूर हल्लास को मौत की सजा दी । हिन्दी सूफी कवियों की जमीन भारतीय है जबकि दक्षिणी हिन्दी के सूफी कवियों की जमीन ईरानी है । हिन्दी सूफी कवियों ने भारत में लोक प्रचलित कहानियों को अपनाया जबकि दक्षिणी हिन्दी कवियों ने ईरानी लोक कथाओं को अपनाया । लौकिक प्रेम की इन कहानियों के सहारे सूफियों ने उससे अलौकिक प्रेम का आभास दिया जो सूफी साधना के मूल में है । उनका रंग इस्लामी और ढंग ईरानी है । हिन्दी सूफी कवियों ने अपने जनपद की रीति - नीति, मौसम, ऋतु वर्णन, छंद, कथानक रूढ़ियों आदि को इस तरह से अपनाया कि उनका काव्य पूर्ण रूप से भारतीय बन गया । इन कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं ।

7.2 कवि का जीवन परिचय

7.2.1 जन्म

"जायस नगर मोर अस्थानू" के अनुसार जिला रायबरेली में जायस नगर में इनका जन्म हुआ था । इसलिए ये जायसी कहलाये। डॉ. सुधाकर द्विवेदी और डॉ. ग्रियर्सन ने उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं -

"जायस नगर मोर अस्थानू , तहाँ आई कवि कीन्ह बखानू ।"

तथा

"तहाँ दिवस दस पाहुने आएऊं ।"

इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज या मलिक राजे अशरफ था । बाल्यकाल में माता - पिता की मृत्यु के कारण वे साधुओं और फकीरों की संगत में रहने लगे । किंवदन्तियों के अनुसार जायसी का विवाह भी हुआ था और इनके पुत्र मकान के नीचे दबकर मर गये थे । अन्तःसाक्ष्य के द्वारा यह स्पष्ट है कि जायसी कुरूप, एक नेत्र विहीन तथा एक कान रहित थे । शीतला के प्रकोप से उनकी यह दशा हुई थी । कहते हैं शेरशाह ने उनकी कुरूपता का उपहास किया तो इन्होंने उत्तर दिया - "मोहि का हँससि, के कोहरहि ?" अर्थात् तुम मुझ पर हँसे हो अथवा उस कुम्हार (ईश्वर) पर जिसने मुझे बनाया है ? इस पर शेरशाह अत्यन्त लज्जित हुए और इनका अत्यधिक सम्मान किया । जायसी के नागमती के बारहमासे के निम्नांकित दोहे पर अमेठी नरेश बहुत प्रसन्न हुए थे -

कंवल जो बिगसा मानसर बिन जल गएउ सुखाय ।
रूखि बेलि फिर पलुहै जो पिउ सींचे आय ।

इनका प्राणान्त अमेठी के आस - पास के जंगलों में एक शिकारी के तीर से हुआ । अमेठी नरेश ने जायसी की यहीं पर एक समाधि बनवा दी, जो अब भी मौजूद है ।

7.2.2 जन्म तिथि

जायसी की जन्म तिथि या संवत् का कोई निश्चित उल्लेख नहीं है । उन्होंने आखरी कलाम में लिखा है - "भा अवतार मोर नौ सदी । तीस बरिस ऊपर कवि बदी ।" इसके आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि उनका जन्म संभवत: 800 हिजरी और 900 हिजरी के बीच या सन् 1397 ई. और 1494 ई. के बीच हुआ होगा और उन्होंने 30 वर्ष की अवस्था के बाद काव्य रचना प्रारम्भ की थी । पद्मावत का रचनाकाल उन्होंनें 947 हिजरी ("सन् नौ से सैंतालीस अहैं" - पद्मावत) अर्थात् 1540 ई. बतलाया है । पद्मावत के अंतिम अंश के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसे लिखते समय तक वे वृद्ध हो चुके थे । पद्मावत में उन्होंने सुल्तान शेरशाहसूरी (सन् 1540 - 45 ई.) तथा आखरी कलाम में मुगल बादशाह बाबर (सन् 1526 - 30 ई.) के नाम शाहेवक्त के रूप में अवश्य दिये हैं जिससे उनका इनके समकालीन होने का पता चलता है । इस प्रकार कवि के जन्म के संबंध में केवल अनुमान ही किया गया है, निश्चित तिथि या संवत् नहीं बताया गया है ।

7.2.3 जन्म स्थान

जायसी का जन्म कहाँ हुआ इसके संबंध में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । केवल जायस में उनके रहने का पता अवश्य लगता है । शायद वे जायस में किसी दूसरे स्थान से आकर रहे थे । निम्नांकित पंक्तियों से ये तथ्य स्पष्ट है :

जायस नगर मोर अस्थानू । नगरक नाँव आदि उदियानू ।।
तहाँ दिवस दस पहुने आएऊँ । भा वैराग बहुत सुख पाएऊँ ।।

जायस में वे अतिथि के रूप में आए थे परन्तु वहीं बाद में रहने लगे ।

7.2.4 विवाह

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि जायस नगर में उनकी ससुराल थी । शायद उनका विवाह जायस में हुआ था। जायसी एक आँख से काणे थे और उन्हें एक कान से सुनाई भी नहीं देता था । वे बहुत कुरूप थे और उनके कुरूप चेहरे को देखकर लोग हँसते थे । उन्होंने इस संबंध में कहा है :

मुहम्मद बाई दिसि तजी एक सरवन एक आँखि ।
एक नैन कवि मुहमदी गुनी ! सोइ विमोहा जेइ कवि सुनी ।।

7.2.5 गुरु

पद्मावत में उन्होंने अपने गुरु की और पंथ की चर्चा करते हुए लिखा है :

सैयद असरफ पीर पियारा। जेइ मोहि पंथ दीन्ह उजियारा ।।
पा - पाएउँ गुरू मोहिदी पीता । मिला पंथ सो दरसन दीठा ।

अखरावट में उन्होंने लिखा है :

कही सरीअत चिस्ती पीरू । उघरी असरफ औ जँहगीरू ।।

अशरफ और गुरू मोहिदी सूफियों की चिश्ती परंपरा के फकीर थे । जायसी मुहम्मद निजामुददीन औलिया की शिष्य परंपरा में थे । वे महदी शेख बुरहान द्वारा विशेष प्रभावित थे । परवर्ती रचनाओं से यह स्पष्ट हो गया कि महदी केवल पद था ।

7.2.6 रचनाकार का व्यक्तित्व

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में पदमावतकार मलिक मुहम्मद जायसी का महत्व इसलिए सर्वाधिक है कि उन्होंने हिन्दू - मुस्लिम द्वंद्व के प्रश्न को विषय वस्तु के रूप में रचनात्मक स्तर पर ग्रहण किया । यह जायसी का रचनात्मक साहस ही कहा जाएगा कि उन्होंने प्रेम और नियति के समक्ष अपने धर्म में आस्था रखते हुए इस द्वंद्व की निरर्थकता को लोकभाषा में सम्प्रेषित किया । अपनी कृति 'पदमावत' में वे यह प्रतिपादित करते है कि जीवन की सार्थकता मानवीय प्रेम है । प्रेम ही सार तत्व है । संघर्ष की अंतिम परिणति तो निरर्थकता में सिद्ध होती है । वे ऐसा प्रेम चाहते है जो मनुष्य को ही बैकुंठी बना दे । प्रेम की पीर सारी कमियों के होते हुए मनुष्य में बैकुंठी हो जाने की अनुभूति जाग्रत कर सकता है । इसी प्रेम की कसौटी पर उन्होंने अपने युग को कसा और उनकी अनुभूति में वह गहरी विषाददृष्टि उत्पन्न हुई जिसमें एक तरफ आदमी बैकुंठी हो जाता है तो दूसरी तरफ एक मुट्ठी खाक रह जाता है ।

जायसी यह बात भली - भाँति देख - समझ चुके थे कि तुर्की अरबी, हिन्दुस्तानी आदि जितनी भी भाषाएँ हैं अगर उनमें प्रेम मार्ग का वर्णन है तो वे सभी रचनाएँ पाठकों - श्रोताओं के द्वारा सराही गयी हैं । 'पदमावत' प्रेम कथा की रचना का उद्देश्य यह था कि शायद यह निशानी संसार में बची रह जाए । उन्होंने कहा है - "फूल मरै , पै मरै न बासू" । जायसी ने काव्य संरचना की ऐसी पद्धति विकसित की है जो 'मुख देखी' की जगह आँखों में आँसू भर आने की विवशता उत्पन्न कर देती है - 'जेइ मुख देखा तेइ

हँसा, सुना तो आए आँसू ।'यहाँ बादशाह शेरशाह ने जब उनकी कुरूपता पर व्यंग्य किया था उस प्रसंग का संदर्भ भी है । जायसी अत्यंत कुरूप, काणे और एक कान से सुनते नहीं थे । जिसने भी उनकी कविता सुनी उसकी आँखों में आँसू आ गए । जायसी का रचनाकार के रूप में यही व्यक्तित्व है जो शताब्दियों से धूमिल नहीं हो सका है ।

7.2.7 रचनाएँ

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी के केवल तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है - पद्मावत, अखरावट, आखरी कलाम । आधुनिक शोध के द्वारा चित्ररेखा, कहरनामा और कान्हावत तीन ग्रन्थों को भी उनकी रचना माना जाता है । परन्तु उनकी ख्याति का आधार पद्मावत है जो प्रेमाख्यानक काव्य है । जो अवधी भाषा में लोक प्रचलित कथानक के आधार पर फारसी की मसनवी शैली में रचित है । जायसी की सभी रचनाएँ अभी उपलब्ध नहीं हैं । पद्मावत को आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने जायसी की अंतिम रचना कहा है ।

7.3 काव्य वाचन तथा ससंदर्भ व्याख्या

7.3.1 नागमति चितउर पथ हेरा.....काल मोहि दीन्ह

नागमति चितउर पथ हेरा । पिउ जो गए कीन्ह न फेरा ।
नागर काहु नारि बस परा । तेई मोर पिउ मोसौं हरा ।।
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ । पिउ नहिं जात, जात बरू जीऊ ।
भएंउ नरायन बाबँन करा । राज करत राजा बलि छरा ।।
करन पास लीन्हेउ कै छंदू । बिप्र रूप धरी झिलमिल इंदू ।
मानत भोग गोपिचन्द भोगी । लेइ अपसवा जलंधर जोगी ।।
लेइगा कृस्नहि गरुड़ अलोपी । कठिन बिछोह, जियहि किमि गोपी ।।
सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह ।
झुरि झुरि पींजर हौं भई, बिरह काल मोहि दीन्ह ।।

प्रसंग : प्रस्तुत पधांश मलिक मुहम्मद जायसी रचित 'पद्मावत' नामक महाकाव्य के 'नागमती' वियोग - खंड से उद्धृत है । कवि इन पंक्तियों में नागमती की विरह - उद्विग्नता की ओर संकेत कर रहा है । राजा रत्नसेन पद्मिनी को लाने के लिए सिंहल द्वीप चला गया । हीरामन तोता ने चित्तौड़ आकर राजा रत्नसेन को पदमावती की रूप - प्रशंसा सुनाई और राजा योगी का वेश बनाकर पदमावती को लाने चला गया । उसके जाने के बाद जब उसका कोई संदेश - समाचार नहीं आया तब नागमती के मन में आशंकाएं उत्पन्न होती हैं । प्रेमी हृदय पाप- शंकी होता है ।

व्याख्या : नागमती पति की प्रतीक्षा में चित्तौड़ आने वाले पथ को टकटकी लगाकर देखती रहती है क्योंकि रत्नसेन जाने के पश्चात् लौटकर नहीं आया । नागमती सोचती

है कि संभव है वह किसी चतुर स्त्री के प्रेम - पाश में बंध गया हो और उस नारी ने मेरे पति को मुझसे विमुख कर दिया हो । नागमती की यह आशंका स्वाभाविक है । वह रत्नसेन से बहुत प्रेम करती है अत: उसका मन जो पाप- शंकी है में यह आशंका उत्पन्न होती है । रत्नसेन को हीरामन तोता लेकर चला गया । अत: वह कहती है कि वह मेरा काल बनकर आया और मेरे पति को ले गया । वह मेरे पति को नहीं ले जाता ; भले ही वह मेरे प्राण ले लेता । भगवान विष्णु ने वामनावतार रूप धारण करके राजा बलि को छल लिया था; उसी प्रकार तोता मुझे भी धोखा देकर ; मेरे पति को छीन कर ले गया । इन्द्र ने ब्राह्मण का वेश धारण करके दानवीर राजा कर्ण से छल से अक्षय कवच दान में ले लिया, इसी प्रकार इस तोते ने मुझसे मेरा पति धोखे से छीन लिया । भोग - विलास में राजा गोपीचन्द मग्न थे किन्तु योगी जालंधर नाथ उन्हें फुसलाकर अपने साथ ले गए ; उसी प्रकार यह तोता मेरे पति को फुसलाकर ले गया । भगवान कृष्ण को अक्रूरजी वृन्दावन से मथुरा ले गए और गोपियाँ कृष्ण के वियोग में व्याकुल रहने लगी । वे अपने प्राण कैसे बचाएं ; उसी प्रकार अब मेरे प्राणों की रक्षा कैसे हो सकती है ।

मेरी और रत्नसेन की जोड़ी सारस के समान थी । मुझसे मेरा पति इस तोते ने अलग कर दिया । उसके मन में फिर संदेह होता है कि क्या मेरे पतिरूपी पक्षी को किसी बहेलिए ने मार डाला है । वह कहती है कि मैं पति के वियोग में सुख - सूखकर अस्थि - कंकाल मात्र रह गई हूँ । हीरामन तोते ने मुझसे मेरा पति छीनकर काल के समान भयंकर दुःख दिया है ।

शब्दार्थ

पथ हेरा = रास्ता देखती है , प्रतीक्षा करती है । पिउ = प्रिय । नागर = नायक । हरा = हर लिया, चुरा लिया, हरण कर लिया । लेइगा = ले गया । नरायन = नारायण (भगवान) । वाबँन करा = बावन करा, वामन रूप । छरा = छला, छल किया । करन = दानवीर कर्ण । छंदू = धूर्तता, छलछंद । झिलमिल = चमक । अपसवा = चल दिया । कृस्नहि = कृष्ण को । बिछोह = वियोग । झुरि = सूख सूखकर । पींजर = हड्डी का ढाँचा ।

विशेष :

1. प्रस्तुत पद में पत्नी के हृदय में आशंकाओं का जन्म स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक सत्य है ।
2. इस पद में कवि ने राजा बलि और वामन - अवतार, इन्द्र और दानवीर कर्ण जलंधर नाथ और राजा गोपीचन्द तथा अक्रूर द्वारा कृष्ण को मथुरा ले जाने के संदर्भो की अंतरकथाओं का सुन्दर संयोजन किया है ।
3. सारस की जोड़ी एक दूसरे से मरने पर ही विलग होती है ।
4. नागमती इस पधांश में तोते को कोसते हुए कहती है कि वह मेरा काल बनकर आया था ।

5. नागमती का विरहालाप मन को द्रवित करने वाला है ।
6. दृष्टांत एवं रूपक अलंकार है ।
7. मुहावरे एवं लोकविश्रुत जनश्रुति से विचार या भाव को मूर्त रूप दिया गया है ।
8. ठेठ अवधी भाषा का प्रयोग है और राजस्थानी भाषा का पुट है ।
9. दोहा - चौपाई शैली में ग्रन्थ रचना की गई है ।
10. नागमती की चिंता का उल्लेख हुआ है ।

7.3.2 पीउ बियोग..... पाँख जरा, जा भागि

पीउ बियोग अस बाउर जीऊ । पपिहा निति बोले 'पिउ - पिउ' ।
अधिक काम दाधे सो रामा । हरि लेइ सुवा गुएउ पिउ नामा ।।
बिरह बान तस लाग न डोली । रकत पसीज , भीजि गइ चोली ।।
सूखा हिया , हार भा भारी । हरे हरे प्रान तजहि सब नारी ।।
खन एक आव पेट महँ! साँसा । खनहिं जाइ जिउ , होइ निरासा ।।
पवन डोलावहिं सीचहिं चोला । पहर एक समुझहिं मुख बोला ।।
प्रान पयान होत को राखा? को सुनाव पीतम कै भाखा ?
आजि जो मारै बिरह कै , आगि उठै तेहि लागि ।
हंस जो रहा सरीर महँ , पाँख जरा, जा भागि ।

प्रसंग : प्रस्तुत पधांश में नागमती अपने पति के वियोग में तड़पती हुई प्राण त्यागने को आतुर है ।

व्याख्या : नागमती पति - वियोग में बावली हो गई है और वह रात - दिन पपीहा के समान पिउ - पिउ पुकारती रहती है । नागमती को काम ने अधिक ग्रसित किया है । हीरामन तोता उसके प्राणाधार को लेकर चला गया है । विरह बाण के प्रहार से वह हिल - डुल भी नहीं सकती । विरह में आँसुओं के स्थान पर रक्त बहने लगा है । जिसके कारण उसकी चोली भीग कर रक्तमय हो गयी है । प्राणाधार के विरह में काम अधिक सताने लगा है । उसका रससिक्त हृदय सूख गया और वह अचेत हो गई । नागमती की सखियाँ उसकी यह दशा देखकर बहुत चिंतित हो गई हैं और निराशा का अनुभव करती हैं । कितने ही लोग नागमती के आसपास इकट्ठे होकर हवा करते है और जल छिड़कते हैं जिससे वह चेतन हो जाए । नागमती कभी पल भर के लिए होश में आ जाती है और साँस लेती है और कभी वह श्वाँस उदरमय होकर वापस चली जाती है जिससे सखियों को निराशा होती है । वह कहती है कि अब मेरे प्राण जाना चाहते हैं इन्हें कौन रोक सकेगा? कौन चातक की भाषा में पिउ - पिउ बोलता हुआ मुझे मेरे प्रियतम से मिलाएगा । नागमती के मुख से विरहाग्नि निकलती है । जिसके फलस्वरूप उसके शरीर में ज्वाला जल उठती है । उसके शरीर में आत्मारूपी हंस था उसके पंख जलने लगे और वह वहाँ से उड़ना चाहता है ।

शब्दार्थ

बाउर = बावला, पागल । पपिहा = पपीहा पक्षी । निति = नित्य, हमेशा । पसीज = पसीजने से । चोली = अंगिया । हिया = हृदय, दिल । भारी = वजनी । हरे - हरे = धीरे - धीरे । सीचहिं = सींचता है । चोला = शरीर । पहर = प्रहर (तीन घंटे का एक प्रहर होता है) । पयान = प्रयाण (चलने को उद्यत है) । भाखा = भाषा , बोली । हंस = हंस , पक्षी । जरा = जल गया ।

विशेष :

1. नागमती की विरह व्याकुलता का वर्णन हैं ।
2. उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक और अतिशयोक्ति अलंकार हैं ।
3. आहि जो मारे विरह के, आगे उठै तौरि लागी" पंक्ति में चौथी विभावना है ।
4. यहाँ पर कवि ने उद्वेग, प्रलाप, व्याधि आदि विरह की दशाएँ वर्णित की हैं । खेद और स्तम्भ नामक सात्विक भाव भी व्यंजित है ।
5. हंस जो रहा सरीर में यह काव्यात्मक कल्पना है । प्रानपयान होत केइ राखा? इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार है - "शरीर के भीतर जो जीव रूपी हंस था, विरह में उसके पंख जल गये अतएव उड़ न सकने के कारण उसे उसके शरीर में ही रह जाना पड़ा ।"
6. ठेठ अवधी भाषा का प्रयोग
7. दोहा - चौपाई शैली ।

7.3.3 सावन बरस मेह.....खेवक बिनु थाकी

सावन बरस मेह अति पानी । भरनि परी , हौं बिरह झुरानी ।।
लाग पुनबरसु पीउ न देखा । भइ बाउरि , कहै कंत सरेखा ।।
रकत कै आँसु परहिं भुई टूटीं । रेंगि चलीं जस बीरबहूटी ।।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला । हरियरि भूमि , कुसुंभी चोला ।।
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा । विरह झुलाइ देइ झकझोरा ।।
बाट असूझ अथाह गँभीरी । जिउ बाउर , भा फिरै भँभीरी ।।
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी । मोरि नाव खेवक बिनु थाकी ।।
परबत समुद अगम बिच , बीहड़ वन बनढाँख ।
किमि कै भेटौं कंत तुम्ह ? ना मोहि पाँव न पाँख ।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ जायसी के 'पदमावत' के 'नागमती वियोग खण्ड' से उद्धृत है । नागमती का पति रत्नसेन उसको छोड़ गया है । वर्षा ऋतु में प्रवासी प्रियतम भी लौटकर घर आते हैं । जिनके पति घर होते हैं वे अपने पति के साथ झूला झूलती हैं । लोकगीतों में और काव्य में बारहमासा वर्णन की परंपरा रही है । जायसी स्त्रियों के द्वारा झूला झूलने का वर्णन कर रहा है क्योंकि कवि को लोक जीवन की परंपराओं का ज्ञान है । उद्दीपन रूप में प्रकृति का वर्णन है ।

व्याख्या : सावन के महीने में भंयकर वर्षा हो रही है । भरन पड़ रही है । परन्तु नागमती विरह में व्याकुल है अत: वह सुख रही है । वह कहती है कि पुनर्वसु नक्षत्र लग गया है । किन्तु अब तक मैं अपने पति के दर्शन नहीं कर सकी और मैं बावली हो गयी हूँ ; मेरा चतुर पति कहाँ है ? अर्थात् वह पति के विषय में सोच - सोचकर बावली हो गयी है । वर्षा ऋतु में वीरबहूटियाँ भूमि पर रेंगने लगती हैं ; कवि कहता है कि ये वीरबहूटियाँ वियोगिनी के रक्त के आँसू है जो पृथ्वी पर गिर रहे हैं । जिन सखियों के प्रियतम घर हैं । उन्होंने उनके साथ हिण्डोला सजाया है । पृथ्वी चारों ओर से हरी - भरी हो गयी है और कुसुंभी रंग के वस्त्र पहन लिए हैं किन्तु मेरा हृदय हिण्डोले की तरह ऊपर- नीचे हो रहा है, विरह उसको झकोरा देकर झुला रहा है । वर्षा के कारण मार्ग असूझ, अथाह और गंभीर हो गये हैं । मेरा जी उनमें बावला भम्भीरी होकर चक्कर लगा रहा है । जहाँ तक दिखाई देता है, संसार जल में डूबा हुआ हैं । मेरी नाव बिना केवट के रूकी हुई है । मेरे और मेरे प्रियतम के बीच पर्वत, अगम, समुद्र, बीहड़ वन और घने ढाक के जंगल हैं । हे प्रिय ! मैं तुमसे कैसे मिल सकती हूँ ? न मेरे पाँव हैं और न पंख जिनकी सहायता से मैं तुमसे मिल सकूँ । तात्पर्य है कि वह बिना पंखों के कैसे उड़ सकती है और उसके पांव विरह के कारण इतने अशक्त हो गये हैं कि वह चल नहीं पाती है ।

शब्दार्थ

मेह = मेघ । भरनी परी = खेतों में भरनी लगी । झुरानी = सूख गई । पुनरबसु = पुनर्वसु नामक नक्षत्र । सरेखा = चतुर । बीरबहूटी = गहरे लाल रंग का एक छोटा रेंगने वाला कीड़ा (बरसाती) जिसका शरीर बहुत कोमल मखमली होता है । हरियारि = हरे रंग की , हरीतिमा , हरियाली । भँभीरी = एक प्रकार का फतिंगा (कीड़ा) जो शाम के समय बरसात में आकाश में उड़ता दिखाई पड़ता है । खेवक = खेने वाला (नाविक) । थाकी = थक गई है , रूक गई है । वन = बीहड़ वन - दुर्गम जगंल ।

विशेष :

1. 'भरन' से आशय धान की खेती के योग्य पानी से है । 'भरणि - झुरानी' यहाँ पर विशेषोक्ति और विरोधाभास का संकर है । "लागि - देखा" में चिन्ता नामक विरहावस्था व्यंजित की गयी है । अत: स्वत: सम्भवी वस्तु से व्यंग्य है । "रक्त - वीरबहूटी" लक्ष्योपमा से विरहाधिक्य व्यंजित किया गया हैं अत: कवि की प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है । "परबत पंख" स्वत: सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है ।
2. इस अवतरण में प्रस्तुत प्रकृति विरहोददीपक के रूप में चित्रित की गयी है ।
3. पुनर्वसू - आषाढ़ शुक्ल में लगभग 5 जुलाई को यह नक्षत्र लगता है । नागमती कहती है कि पुनर्वसू लगा परन्तु प्रिय ने उसे नहीं देखा, नहीं तो मेरे पति चतुर हैं, वे उसका संकेत समझकर अवश्य लौट आते ।

4. 'भँभीरी - एक पतंगा है जो वर्षा के अन्त में प्राय: पानी के किनारे घास पर दिखाई देता है यह अपने पैरों को हिलाकर भन - भन शब्द करता है ।
5. ठेठ अवधी भाषा का प्रयोग
6. दोहा - चौपाई शैली ।
7. उत्प्रेक्षा, रूपक तथा उपमा अलंकार ।

7.3.4 भा भादों दूभर.....दे बूड़त , पिउ! टेक

भा भादों दूभर अति भारी । कैसे भरौं रैनि अँधियारी ।।
मंदिर सुन पिउ अनतै बसा । सेज नागिनी फिरि फिरि डसा ।।
रहौं अकेलि गहे एक पाटी । नैन पसारि मरों हिय फाटी ।
चमकि बीजु घन गरजि तरासा । विरह काल होइ जीउ गरासा ।।
बरसै मघा झकोरि झकोरी । मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी ।।
धनि सूखै भरे भादौ माहा । अबहुं न आएन्हि सींचेन्हि नाहा ।।
पुरबा लाग भूमि जल पूरी । आक जवास भई तस झूरी ।।
थल जल भरे अरु सब , धरति गगन मिलि एक ।
धनि जोबन अवगाह महँ , दे बूड़त , पिउ !टेक ।

प्रसंग : प्रस्तुत पधांश जायसी कृत 'पदमावत' नामक महाकाव्य के 'नागमती वियोग खंड' से उद्धृत किया गया है । बारहमासा वर्णन एक काव्य रूढ़ि है जिसके अन्तर्गत जायसी नागमती के वियोगजनित हृदय की भादों महीने में होने वाली दशा का वर्णन कर रहा है ।

व्याख्या : भादो महीना नागमती कहती है कि मेरे लिए बहुत कष्टकर हो गया है क्योंकि भादो में होने वाली निरंतर वर्षा विरहाग्नि को बढ़ा रही है और मैं अंधियारी रातें कैसे व्यतीत करूँ । इस बात की उसको चिंता है । वह कहती है कि मेरा घर प्रियतम के बिना सूना है क्योंकि मेरा प्रिय अन्यत्र बसा है । मेरी शैया मुझे नागिन की तरह डंसती है । मैं प्रिय के अभाव में शैया की एक पाटी पकड़कर अकेली पड़ी रहती हूँ । मैं नेत्र फैलाकर वियोग से फटते हुए हृदय के कारण मरने जा रही हूँ । बिजली के चमकने और बादलों के गर्जन से मेरा हृदय डरता है । विरह काल रूप बनकर मेरे प्राण लेने को आतुर है । मघा नक्षत्र लग गया है और बादल बार - बार प्रबल वेग से पानी बरसा रहे हैं । मेरे दोनों नेत्रों से भी आँसुओं की झड़ी लगी है । मानो आलवी टपक रही हो । अर्थात् जिस प्रकार वर्षा ऋतु में छप्पर की ओरी टपकती है उसी प्रकार मेरे नेत्रों से आँसू टपकते हैं । मघा नक्षत्र के बाद पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र लग गया है । धरती जल से परिपूर्ण हो गयी है । मैं ऐसे सुख गयी हूँ जैसे वर्षा ऋतु में आक और जवास के पौधे पत्रहीन होकर सुख जाते हैं । मैं भरे भादों में भी सूख रही हूँ किन्तु अभी तक मेरा स्वामी जो मुझे सींचने वाला है वह लौटकर नहीं आया है । हे स्वामी ! आप मुझे आकर सींचिए । जल से स्थल परिपूर्ण हो गया है । लगता है धरती और आकाश एक

हो गया है । नागमती कहती है कि हे प्रियतम! यौवन के अगाध जल में मैं डूब रही हूँ मुझे आकर बचाइये ।

शब्दार्थ

दुभर = कठिन । भरौं = काटूँ । मंदिर = घर । सुन = सुना । अनतै = अन्यत्र । सेज = शैया । नागिनी = नागिन , सर्पिणी । डसा = डंसना । अकेलि = एकाकी । पाटी = चारपाई । तरासा = डराता है । झकोरी = झकझोरते हुए (तीव्रता बताने के लिए प्रयुक्त हुआ है) । चुवैं = चूते हैं । ओरी = किनारा । पुरबा = पूर्वा नक्षत्र । जोबन = यौवन । अवगाह = पार करने में ।

विशेष :

1. भाद्रपद महीने में विरहाग्नि से पीड़ित नागमती का हृदय विदारक वर्णन है ।
2. प्रेम की विरहाकुलता का वर्णन है ।
3. पुनरूक्ति, विरोधाभास, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकार है ।
4. दोहा - चौपाई छन्द है ।
5. ठेठ अवधी भाषा का प्रयोग है ।
6. "सेज नागिनी - डसा" में रूपक अलंकार है । "मोरी - ओरी" में प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार है । "धनि - माहां" विशेषोक्ति और विरोधाभास है ।
7. भाद्रपद मास में कृष्ण पक्ष में मघा नक्षत्र बरसता है ।
8. पूर्वी फाल्गुनी नक्षत्र भाद्रपद शुक्ल नक्षत्र में लगता है ।
9. आक - जवास ये दोनों वर्षा ऋतु में पत्रहीन हो जाते है । "तुलसी-अर्क जवास पात बिनु भयऊँ ।"

7.3.5 लाग कुवार.....बाजहु होइ सदूर

लाग कुवार , नीर जग घटा । अबहूं आउ कंत तन लटा ।।
तोहि देखे पिउ! पलूहै कया! उतरा चीतु बहुरि करू मया ।।
चित्रा मित्र मीन कर आवा । पपिहा पीउ पुकारत पावा ।।
उआ अगस्त , हस्ति घन गाजा । तुरय पलानी चढ़े रन राजा ।।
स्वाति बूँद चातक मुख परे । समुद सीप मोती सब भरे ।।
सरवर सँवरि हंस चलि आए । सारस कुरलहिं , खंजन देखाए ।।
भा परगास , काँस बन फूले । कंत न फिरे बिदेसहिं भूले ।।
बिरह हस्ति तन सालै , घाय करै चित चूर ।
बेगि आइ , पिउ! बाजहु होइ सदूर ।।

प्रसंग : प्रस्तुत पधांश मलिक मुहम्मद जायसी के महाकाव्य 'पदमावत के 'नागमती' वियोग खण्ड से उद्धृत है । कवि ने वियोग वर्णन में बारहमासा पद्धति का अनुसरण करते हुए क्वार महीने का वर्णन किया है । क्वार - महीने में वर्षा बन्द हो जाती है । उस समय वियोगिनी 'नागमती' की मनोदशा का चित्रण किया है ।

व्याख्या : 'नागमती' कहती है कि क्वार मास लगने के साथ वर्षा का पानी चारों तरफ से कम होने लगा है । 'नागमती' अपने प्रवासी प्रियतम को याद करके कहती है कि अब आप लौट आइये क्योंकि मेरा शरीर शिथिल पड़ गया है । अब आपको देखने से ही यह पल्लवित हो सकता है । आपने मुझे अपने चित्त से उतार दिया है । अब मुझ पर दया कीजिए । अगस्त्य नक्षत्र के उदय होने पर हस्ति नक्षत्र का मेघ गरजने लगा है । अर्थात मेघ रूपी हाथी गरज रहे है । राजाओं ने घोड़ों पर पलान (चढ़कर) करके युद्ध पर जाने की तैयारी की है । चित्रा नक्षत्र का मित्र चंद्रमा मीन राशि में आ गया है । पपीहे ने पिउ - पिउ पुकारते हुए मानो अपने प्रियतम को पा लिया है इसलिए अब वह चुप हो गई है । मेरे चित्त के मित्र तुम भी घर आ जाओ । स्वाति नक्षत्र की बूंदें चातक के मुँह में गिरी हैं । और समुद्र में सीप में गिरी जिससे वे मोतियों से भर गई हैं । सरोवरों में हंस भी आ गए हैं । सारस और खंजन पक्षी भी क्रीड़ा करने लगे हैं । चारों ओर प्रकाश होने लगा है । वन में कांस फूलने लगा है । परन्तु हाय मेरे प्रियतम! अब भी नहीं लौटे वे परदेस में हैं और मुझे भूल गए हैं । विरह रूपी हाथी मेरे शरीर को कष्ट दे रहा है । वह चित्त पर प्रहार करके उसे घायल कर रहा है । हे प्रियतम! तुम शीघ्र लौट कर आओ और इस विरह रूपी हाथी के लिए सिंह बनकर गरजो ।

शब्दार्थ

कुवार = क्वार नामक माह । तन = शरीर । लटा = शिथिल हुआ । पलुहै = पनपती हैं । चीतु = चित, ध्यान । चित्रा = चित्रा नक्षत्र । तुरय = घोड़ा । पलानि = जीन कसकर । बन = कांस बन । बिदेसहिं = विदेश में ही । घाय = घाव । बेगि = शीघ्र । बाजहु = लड़ो । गाजहु = गरजो । सदूर = शार्दूल , सिंह ।

विशेष :

1. 'नागमती' की चिंता और स्मृति नामक विरह की दशाओं की अभिव्यक्ति की गई है।
2. जायसी ने प्रस्तुत पद में अपने ज्योतिष ज्ञान का परिचय देने के लिए नक्षत्रों का वर्णन किया है ।
3. प्रस्तुत पंक्तियों में शरद ऋतु के प्रारम्भ और उसके प्रतीकों का सुन्दर वर्णन किया है ।
4. "बिरह .....सदूर" में रूपक अलंकार है ।
5. 5. "उआ अगस्त्य हस्ति नक्षत्र में अगस्त्य तारा दिखाई पड़ता है । हस्ति या हथिया में चील के जितना बादल भी दिखाई पड़े तो खूब गरजता रहता है ।
6. भाषा ठेठ अवधी है और राजस्थानी का पुट है ।
7. दोहा - चौपाई छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

7.3.6 कातिक सरद चंद..... छार सिर मेलि

"कातिक सरद चंद उजियारी । जग सीतल , ही बिरहै जारी ।।

चौदह करा चाँद परगासा । जानहुँ जरै सब धरति अकासा ।।
तन मन सेज करै अगिदाहू । सब कहुं चंद ; भेएउ मोहि राहू ।।
चहूँ खंड लागै , अँधियारा । जौ घर नाही कंत पियारा ।।
अबहूँ निठुर ! आउ एहि बारा । परब देवारी होइ संसारा ।।
सखि झूमक गावै अँग मोरी । हौं झुरावँ बिछुरी मोरि जोरी ।।
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा । मो कह बिरह, सवति दुख दूजा ।।
सखि मानैं तिउहार सब, गाइ देवारी खेलि ।
हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि ।।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि जायसी कृत 'पदमावत' के 'नागमती वियोग खण्ड' से अवतरित हैं । इन पंक्तियों में कवि जायसी कार्तिक मास में नागमती की विरह- व्यथा का वर्णन कर रहा है ।

व्याख्या : कार्तिक मास में चारों तरफ शरद - चन्द्र का उज्ज्वल प्रकाश फैला हुआ है । सारा संसार शीतल है । 'नागमती' कहती है कि मैं विरह के दाह से जली जा रही हूँ चंद्रमा ने अपनी चौदह कलाओं से जो प्रकाश फैलाया है उससे लगता है धरती और आकाश सब जल रहे हैं । इस चांदनी रात में शैया , शरीर और मन का अग्नि दाह कर रही है क्योंकि जो सबके लिए चंद्रमा है वही मेरे लिए राहु हो गया है । मेरे प्रिय कंत घर पर नहीं है इसलिए मुझे चारों खण्ड अंधकार पूर्ण लगते हैं । नागमती आगे कहती है कि हे निष्ठुर ! अब भी इस दिन तो घर आ जाओ जब सारा संसार दीपावली का पर्व मना रहा है । सखियाँ झूमक गीत अंग मोड़ - मोड़कर गा रही हैं । जिसकी जोड़ी बिछुड़ गई है ; ऐसी वियोगिनी मैं सूख रही हूँ । जिसके पति घर होते हैं उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं । मुझे एक दुःख विरह का है और दूसरा सौत का । नागमती कहती है कि मेरी सभी सखियाँ गीतों और खेलों के द्वारा दीपावली का त्यौहार मना रही हैं । मैं अपने प्रियतम के अभाव में किस प्रकार दीपावली का पर्व मना सकती हूँ इसलिए अपने सिर पर राख डालकर होली मना रही हूँ ।

शब्दार्थ

कातिक = कार्तिक माह । जारी = जल रही हूँ । करा = कला (चंद्रमा की) । अगिदाहू = अग्निदाह । निठुर = निष्ठुर । परब = पर्व । झूमक = मनोरा झुमक नाम का गीत । झुरावं = सूखती हूँ । तिउहार = त्योहार । देवारी = दीपावली । छार = धूल , राख ।

विशेष :

1. "जग शीतल हौं विरहैं जारी", "रही छार सिर मेलि" में विरोधाभास अलंकार है और अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है ।
2. प्रस्तुत पंक्तियों में उद्वेग नामक विरह मनोदशा का चित्रण हुआ है ।
3. जायसी को हिन्दू त्योहारों आदि का अच्छा ज्ञान था । उन्होंने शरद् पुर्णिमा के उपरान्त दीपावली का उल्लेख किया है ।
4. उत्प्रेक्षा , उपमा , रूपक और अनुप्रास अलंकार ।

5. दोहा - चौपाई शैली ।

6. अवधी भाषा और मारवाड़ी का पुट ।

7.3.7 फागुन पवन.....धरै जहँ पाव

फागुन पवन झकोरा बहा । चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा ।।
तन जस पियर पात भा मोरा । तेहि पर बिरह देइ झकझोरा ।।
तरिवर झरहिं , झरहिं बन ढाखा । भइ ओनंत फूलि फरि साखा ।।
करहिं बनसपति हिये हुलासू । मो कहँ भा जग दून उदासू ।।
फागु करहिं सब चाँचरि जोरी । मोहिं तन लाइ दीन्ह जस होरी ।।
जी पै पीउ जरत अस पावा । जरत मरत मोहिं रोष न आवा ।।
राति दिवस बस यह जिउ मोरे । लगौं निहोर कंत अब तोरे ।।
यह तन जारौं छार कै , कहौं कि 'पवन!उड़ाव' ।
मकु तेहि मारग उड़ि परै , कंत धरै जहँ पाव ।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि जायसी कृत 'पदमावत' के 'नागमती वियोग खण्ड' से अवतरित हैं । इन पंक्तियों में कवि जायसी फाल्गुन मास में विरहिणी की दशा का वर्णन करते हैं।

व्याख्या : नागमती कहती है कि फाल्गुन मास में हवा झकझोरती हुई चल रही है । शीत चौगुना हो गया है । मैं विरहिणी इस शीत को कैसे सह सकूँगी । वह कहती है मेरा शरीर पीले पत्ते के समान हो गया है । उस पर विरह झकझोर रहा है ऐसे में मैं कैसे जीवित रह सकूँगी । विरह पवन बनकर मुझे हिला डालेगा । वृक्षों के पत्तों के साथ ढाक भी जल रहा है । फूल, फल वाली शाखाएँ पत्रविहीन हो गई हैं । अब कलियों के द्वारा वन संपत्ति उल्लास से भर गई है और उनके उल्लास के प्रतीक नव - पल्लव निकल आए हैं । परन्तु मेरे लिए ये संसार दूना उदास हो गया है । सभी लोग चांचर जोड़कर फाग गा रहे हैं । इस आनन्दोत्सव में मेरे हृदय में विरहाग्नि इस प्रकार धू - धू कर प्रज्ज्वलित हो रही है मानो मेरे शरीर के अन्दर होली जल रही हो । यदि प्रिय को इस तरह जलाना अच्छा लगता है तो मुझे जल मरने में भी कुछ रोष नहीं है । रात - दिन मेरे मन में यही रहता है कि हे प्रियतम ! मैं तुम्हारे किस प्रकार काम आ सकूँ । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि रात दिन मेरे मन में यही भाव रहता है कि हे कन्त ! तेरे हृदय से मैं किस प्रकार लग जाऊँ ?

अंतिम पंक्तियों मे कवि नागमती के माध्यम से कह रहा है कि इस शरीर को जलाकर राख कर दूँ और हे वायु, इसे उड़ा ले जा । शायद मैं उस मार्ग में जा गिरूँ जहाँ कभी मेरे प्रिय ने पाँव रखे थे ।

शब्दार्थ

फागुन = फाल्गुन नामक माह । चौगुन = चार गुना । सहा = असहनीय । पियर = पीले, पीतवर्णी । पात = पत्ते (की तरह) । ओनंत = झुकी हुई । निहोर = लगौं निहोर - तुम्हारे काम आ जाए , यह शरीर तुम्हारे निहौरे लग जाए ।

विशेष :

1. फाल्गुन माह में वियोगिनी की दशा का वर्णन हृदय विदारक है । वह अपने
2. आपको जलाकर राख करने के लिए प्रस्तुत है । कवि ने इसमें विरह जनित अभिलाषा का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है । वह स्वयं को भस्मसात करके पवन से कहती है कि वह उसकी राख उसके प्रियतम तक पहुँचा दे ।
3. उपमा, अनुप्रास, उदाहरण अलंकार ।
4. दोहा - चौपाई शैली ।
5. अवधी भाषा का प्रयोग ।

7.3.8 रोइ गंवाए.....बूझै निसरी पंखि

रोइ गंवाए बारह मासा । सहस सहस दुख एक एक सांसा ।।
तिल तिल बरख बरख पर जाई । पहर पहर जुग जुग न सेराई ।।
सो नहिं आवै रूप मुरारी । जासौं पाव सोहाग सुनारी ।।
साँझ भए झुरि झुरि पथ हेरा । कौनि सो घरी करै पिउ फेरा ?
दहि कोइला भइ कंत सनेहा । तोला माँसु रही नहिं देहा ।।
रकत न रहा बिरह तन गरा । रती रती होइ नैनन्ह ढरा ।।
पाय लागि जोरै धनि हाथा । जारा नेह, जुड़ावहु, नाथा ।।
बरस दिवस धनि रोइ कै , हारि परी चित झंखि ।
मानुस घर घर बूझि कै , बूझै निसरी पंखि ।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि जायसी कृत 'पदमावत' के 'नागमती वियोग खण्ड' से अवतरित हैं । इन पंक्तियों में कवि जायसी ने नागमती की विरह जनित वेदना का मार्मिक चित्रण किया है ।

व्याख्या : नागमती ने रो - रोकर बारह महीने व्यतीत किए वह एक - एक सांस में सहस्त्रों दुःखों की अनुभूति करती थी । उसका पल - पल (तिल - तिल) समय वर्ष के समान व्यतीत हो रहा था । नागमती को एक पल एक युग के समान प्रतीत हो रहा था । कृष्ण की भाँति उसका सुन्दर प्रियतम लौटकर नहीं आया , जिससे वह अपना सुहाग प्राप्त कर सकती । संध्या होने पर नागमती कहती है मैं रो - रो कर अपने पति का मार्ग देखती हूँ । वह कौनसी घड़ी होगी जब मेरे प्रियतम लौटकर आएँगे । पति के प्रेम में जलकर कोयला हो गई हूँ और मेरे शरीर में तोला भर माँस भी शेष नहीं है । रक्त भी नहीं रहा और विरह में तन गल गया है । नेत्रों में से रक्त रत्ती - रत्ती वह गया है । हे प्रियतम ! मैं आपके पाँव पड़ती हूँ और हाथ जोडती हूँ । अब आप टूटे हुए प्रेम के बंधन को पुन: स्थापित कीजिए । नागमती एक वर्ष तक रो - रो कर अत्यन्त दुखी हो गयी और झुंझला गयी । वह घर - घर जाकर मनुष्यों से प्रियतम कब आएँगे पूछ - पूछ कर निराश हो गयी । इसलिए वह पक्षियों से पूँछने को निकल पड़ी ।

शब्दार्थ

गंवाए = व्यतीत किया । सहस = सहस सहस - हजार - हजार । सांसा = एक - एक सांसा - एक - एक सांस । बरख = सालों साल । पहर = प्रहर - प्रहर । जुग जुग = युग । सेराई = समाप्त होता है । सोहाग = सौभाग्य, सौहाग । सुनारी = वह स्त्री , सुनारिन । झुरि = सूख - सूखकर । घरी = घड़ी (समय) । तोला = तोला (मात्रा मापने की इकाई) । देहा = देह में, शरीर में । रती = रती - रती , - थोड़ा - थोड़ा करके । जुड़ावहु = शीतल करो , शांत करो , तृप्त करो ।

विशेष :

1. चतुर्थ पंक्ति में प्रिय मिलन की अभिलाषा नामक विरह की कामदशा का चित्रण किया गया है
2. इस अवतरण में चिंता , उदवेग , अभिलाषा आदि विरह की अवस्थाओं का चित्रण किया गया है ।
3. अतिशयोक्ति , वक्रोक्ति , श्लेष , पुनरुक्ति प्रकाश अलंकारों का प्रयोग है ।
4. दोहा - चौपाई शैली और ठेठ अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है ।
5. तुलसी दास जी के (सीता हरण के पश्चात) राम ने पक्षियों , हिरणों और भँवरों से पूछा है - "हे खग , मृग ! हे मधुकर श्रेणी , तुम देखी सीता मृग नैनी ।" वस्तुत: वियोगावस्था में प्रेम का विस्तार हो जाता है । वहाँ पशु- पक्षी और मनुष्य का अंतर समाप्त हो जाता है ।

7.3.9 भई पुछार.....तरिवर होइ निपात

भई पुछार , लीन्ह बनबासू । बैरिनि सवति दीन्ह चिलबाँसू ।।
होइ खर बान बिरह तनु लागा । जौ पिउ आवै उड़हि तौ कागा ।।
हारिल भई पंथ मैं सेवा । अब तहँ पठवौं कौन परेवा ।।
धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊ । जौं चितरोख न दूसर ठाऊं ।।
जाहि बया होइ पिउ कंठ लवा । करै मेराव सोइ गौरवा ।।
कोइल भई पुकारति रही । महरि पुकारै लेइ लेइ दही ।।
पेड़ तिलोरी औट जल हंसा हिरद्य पैठि विरह करनंसा ।।
जेहि पंखी के निअर होइ , कहै विरह कै बात ।
सोई पंखी जाइ जरि , तरिवर होइ निपात ।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि जायसी कृत 'पदमावत' के 'नागमती वियोग खण्ड' से अवतरित है । इन पंक्तियों में कवि जायसी कहते हैं कि नागमती वन - वन में घूम रही है और अपनी सौत का भला - बुरा सोचती है । इस पद के दो अर्थ हैं एक अर्थ पक्षी परक है और दूसरा नागमती परक है ।

व्याख्या : पक्षीपरक अर्थ : नागमती कहती है कि मैने मोरनी बनकर प्रिय के लिए वनवास ले लिया परन्तु बैरिन सौत ने मेरे लिए फंदा लगा दिया है । विरह का तीक्ष्ण

बाण लगा हुआ है । हे काग , यदि पति आ रहे हों तो तू उड़ जा । मैं मार्ग में प्रतीक्षा करते - करते हारिल हो गयी हूँ । अब मैं वहां कौनसा पक्षी भेजूं ? हे धौरी ! पंडुक ! प्रिय का स्थान बतलाओ । यदि चितरोख पक्षी मिले तो दूसरे का नाम न लूँ । हे बया ! तू जाकर पति को ले आ । गौरैया वही है जो हमें अपने पति से मिला दे । मैं कोयल बनी हुई पुकार रही हूँ । महर बनकर दही - दही पुकार रही हूं । पेड़ पर तिलौरी और जलहंस व्याकुल हैं । हृदय में विरह का कण्ठनास बैठा है । जिस पक्षी के समीप होकर वह निकलती है और बात करती है वही पक्षी जल जाता है और वह वृक्ष पत्रविहीन हो जाता है ।

नागमती - परक अर्थ - कवि कहता है कि पूछने वाली बनकर उसने वनवास लिया अर्थात् पक्षियों से प्रिय का समाचार पूछेगी पर कोई पक्षी वहां पहुँचता ही नहीं , क्योंकि बैरिन सौत ने पक्षियों को फंसाने के लिए चिल्हबांस (फंदा) रखे हैं । इतने पर भी कोई ऐसा कौवा यदि घर पहुँच जाता है तो प्रियतम भी उसी षड्यंत्र में मिलकर तीक्ष्ण बाण चढ़ा कर उसकी ओर खींचने लगता है । अर्थात् पूछने वाली बनकर उसने वनवास लिया । बैरिन सौत ने पति को छल के फंदे में फंसा रखा है । भावार्थ यह है कि अपने चंगुल में फंसा रखा है । प्रियतम ने पहले अपनी कंचन काया को तपाकर उत्तम दान किया और उसे कसौटी पर देख रहा है अब भी वह घर लौट आये तो क्या बिगड़ा है ? उस मार्ग पर चलती - चलती मैं थक गयी हूँ । अब संदेशा लाने के लिए वहां किस पक्षी अर्थात् संदेशवाहक को भेजूँ । श्वेत और पीली पड़ी हुई हूँ । मेरे लिए अब केवल प्रिय का स्थान ही चितरोख जानता है यद्यपि चित्त में रोष है फिर भी में दूसरा नाम नहीं जानती । जो जाकर आये , प्रिय को कण्ठ पकड़कर ले आये और मुझसे मिला दे वही गौरवशाली बड़े पर वाला है । आम की गुठली की कोयल यानी पपैया जैसी बनकर मैं पुकार रही हूँ । मेरी सास जी को बुलाओ हाय मैं जली । पियरी और तिलौरी आती हैं, तो मेरा जी अर्थात् हंस जलता है । विरह हृदय में घुसकर क्यों मुझे काट और मार रहा है ? विरह की बात सुनाने जिस पक्षी के पास आती हूँ , वही जल जाता है और वे पेड़ भी नष्ट हो जाते हैं जिसके पास मैं जाती हूँ ।

विशेष :

1. यहाँ प्रलाप , व्याधि , अभिलाषा , चिंता आदि विरह - दशाएँ व्यंजित हैं ।
2. प्रस्तुत अवतरण में विरह वर्णन की ऊहात्मक पद्धति का अनुसरण किया गया
3. नागमती की विरह विहवलता का वर्णन है ।
4. श्लेष , अतिशयोक्ति , उपमा और अनुप्रास अलंकार ।
5. ठेठ अवधी भाषा का प्रयोग है और दोहा - चौपाई छन्द का प्रयोग है ।
6. 6. लोक गीतो में विभिन्न पक्षियों के साथ वियोगिनी संदेश प्रेषित करती है । कौआ आदि पक्षियों को उड़ाकर शकुन मनाए जाते हैं ।
7. जायसी को लोक प्रचलित प्रथाओं - परंपराओं का यथेष्ट ज्ञान था ।

7.3.10 कुहु कि कुहु कि.....जेहि सुनि आवै कंत

कुहु कि कुहु कि जस कोइल रोई । रकत आँसू घुँघुची बन बोई ।।
भइ करमुखी नैन तन राती । को सेराव ? बिरहा दुख ताती ।।
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बनबासी । तहँ तहँ होइ घुँघुची कै रासी ।।
बूंद बूंद महँ जानहुँ जीऊ । गुंजा गुंजि करै ' पिउ पीऊ' ।।
तेहि दुख भए परास निपाते । लोहू बुड़ि उठे होइ राते ।।
राते बिंब भीजि तेहि लोहू । परवर पाक , फाट हिय गोहूं ।।
देखौं जहाँ होइ सोइ राता । जहाँ सो रतन कहै को बाता ?
नहिं पावस ओहि देसरा , नहिं हेवंत बसंत ।
ना कोकिल न पपीहरा , जेहि सुनि आवै कंत ।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में जायसी ने 'नागमती के वियोग खण्ड' में नागमती के वियोग की चरम अवस्था का करूण वर्णन किया है ।

व्याख्या : "नागमती" कोयल की भाँति कुहु क - कुहु क कर रो रही है । उसके नेत्रों से रक्त के आँसू ऐसे बह रहे हैं जैसे वन में किसी ने घुंघुची बो दी हो । उसका मुँह काला और नेत्र तथा शरीर लाल अंगारे की भाँति दहक रहे हैं । कवि कल्पना करता है कि नागमती का सारा शरीर विरह की अग्नि में धधक कर लाल हो गया है । उसका मुख आँसुओं के कारण तथा सारा शरीर विरहाग्नि के कारण दहक रहा है इसलिए लाल है । इस परिस्थिति में इसके शरीर को कौन ठण्डा करे, शीतलता प्रदान करे क्योंकि वह विरह के दुःख से तप्त है । वह वनवासिनी है जो वन में जहाँ - जहाँ खड़ी होती है वहीं- वहीं पर उसके आँसू टपकने के कारण घुँघुचियों का ढेर लग जाता है । ऐसा प्रतीत होता है मानो उसके आँसुओं की एक - एक बूंद में प्राण हैं और प्रत्येक घुंघंची में जैसे पिउ - पिउ की ध्वनि उठ रही है उसके इस दुःख को देखकर पलाश वृक्ष पत्रहीन हो गये हैं । और आँसुओं के रक्त में डूबकर लाल हो गये हैं । अर्थात् टेसू के लाल फूलों के रूप में फूल उठे हैं । बिम्बाफल उसके उसी रक्त में भीगकर लाल हो गया है , परवल पककर पीला हो गया है और गेहूँ का हृदय फट गया है । वह जिधर भी देखती है उधर सब कुछ लाल हो जाता है । अर्थात् उसके दुःख को देखकर प्रत्येक व्यक्ति व्यथित हो उठता है । फिर जहाँ मेरा प्रिय है वहाँ तक संदेश कौन ले जाए ? अंत में नागमती कहती है कि जिस देश में मेरे प्रियतम हैं वहाँ न तो पावस ऋतु होती है , बसंत और हेमंत ऋतु भी वहाँ नहीं होती । उस देश में कोयल और पपीहा भी नहीं रहते जिनकी वाणी को सुनकर मेरे स्वामी घर लौट आयें । उस देश में कामोददिपन करने वाली वर्षा , हेमन्त और बसन्त ऋतुएँ नहीं होतीं और न विरह को उद्दीप्त करने वाली कोयल और पपीहे की वाणी सुनाई देती है जिसे सुन मेरे पति को मेरी याद सताए और वे घर लौट आएं ।

शब्दार्थ

पुछार = पूछने वाली , मयूर । चिलबाँसू = चिड़िया फँसाने का एक फंदा । कागा = कौआ । हारिल = थकी हुई , हारिल पक्षी । पठवौं = भेजूं । परेवा = पक्षी । धौरी = धवल , एक चिड़िया । पंडक = पीली , एक चिड़िया । चितरोख = हृदय में रोष , एक पक्षी । बया = जाहि बयासंदेश - लेकर जा और फिर आ । लवा = कंठ लवा - गले में लगाने वाला । गौरवा = गौरव युक्त , गौरा पक्षी । दही = दही , जलाई । तिलोरी = तेलिया मैना । कटनंसा = काटता और नष्ट करता है । निपात = पत्रहीन ।

विशेष

1. नागमती के विरह में प्रकृति भी विरहमयी हो गई है ।
2. प्रकृति का आलम्बन एवं उददीपनकारी रूप ।
3. विरह की अतिशय पीड़ा ।
4. उत्प्रेक्षा , अनुप्रास , उदाहरण अलंकार ।
5. ठेठ अवधी भाषा का प्रयोग है और दोहा - चौपाई छन्द का प्रयोग है ।

7.4 मूल्यांकन

जायसी से पूर्व भी प्रेमाख्यान लिखे गए । सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने प्रेमाख्यान लिखे और सूफी मत का प्रतिपादन किया । असाइत कृत हंसावली (1370 ई.) को हिन्दी का पहला सूफी काव्य माना जाता है । इसके बाद मुल्ला दाउद का चन्दायन (1379 ई.) दामोदर कवि कृत लखनसेन पद्मावती कथा (1459 ई.) , कुतुबन कृत मृगावती (1503ई.) गणपति कृत माधवनल कामकन्दला (1527 ई.) जायसी कृत पद्मावत (1540 ई.) , मंझन कृत मधुमालती (1545 ई.) , उसमान कृत चित्रावली (1613 ई.) आदि हिन्दी के प्रमुख प्रेमाख्यानक काव्य है । इनके अतिरिक्त दक्षिण भारत में भी अनेक प्रेमाख्यानक काव्य लिखे गये । सूफियों से पहले जैन कवियों ने भी प्रेम कथाओं के आधार पर चरित काव्य लिखे थे और जैन धर्म का प्रचार किया । प्रेमाख्यानों की परंपरा में संयोग और वियोग दोनों का चित्रण किया जाता है । किन्तु फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों में केवल वियोग का चित्रण किया जाता है । सूफी प्रेमाख्यान परंपरा ने 'पदमावत' का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यह एक सफल प्रेमाख्यान है ।

लोकवृत्त और ऐतिहासिक वृत्त का इस तर ह का आमना-सामना जायसी के अपने रचना विधान की मौलिक उपज है। संसार के महाकाव्यों में शायद ही कहीं यथार्थ के ऐसे द्विखंडी रूप का चित्रण हुआ हो। पदमावत हिन्दी-काव्य की अनुपम धरोहर के रूप में अमर है ।

7.5 विचार संदर्भ एवं शब्दावली

अनलहक - "मैं परम सत्य हूँ" (महान सूफी साधक मंसूर हल्लाज ने अनलहक अर्थात् "मैं ही (दिव्य) सत्य हूँ" का उद्घोष किया था)

आशिक	-	सूफी साधक स्वयं को परमात्मा का प्रेमी (आशिक) मानता है।
इश्क मजाजी	-	लौकिक प्रेम
इश्क हकीकी	-	आध्यात्मिक प्रेम
तरीकत	-	साधना - मार्ग की दूसरी मंजिल है । इसमें साधक पवित्रता का सहारा लेता है । सांसारिक ऊँच - नीच से ऊपर उठ जाता है और इसमें देवदूतों के गुण आ जाते हैं।
तसव्वुफ	-	सूफी मत , इस्लामी रहस्यवाद
नासूत	-	सूफी साधना मार्ग की पहली मंजिल की प्रथम अवस्था है ।
मलकूत	-	तरीकत की मंजिल में साधक की जो अवस्था होती है, उसे सूफी "मलकूत" कहते हैं।
मसनवी	-	फारसी का छंद है । इसका उपयोग प्राय: वर्णनात्मक काव्यों के लिए किया जाता था।
मरिफत	-	सूफी साधना - मार्ग की यह तीसरी मंजिल है । इस मंजिल में (ईश्वरीय ज्ञान) साधक (जीवात्मा) के परमात्मा से मिलन के रास्ते की सारी रूकावटें दूर हो जाती हैं । वह राग - विराग से मुआ हो जाता है और उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है।
माशूक	-	सूफी परमसत्ता को प्राय: प्रियतमा (माशूक) के रूप में याद करते हैं ।
लाहूत	-	अंतिम या चौथी मंजिल में साधक की जो अवस्था होती है , उसे "लाहूत" की अवस्था कहा गया है ।
शरीयत	-	सूफी मार्ग की चार मंजिलों में पहली मंजिल है । भारतीय
सूफी , सूफी	-	मार्ग की चार मंजिलें मानते हैं और उन मंजिलों की चार अवस्थाएँ स्वीकार करते हैं । "शरीयत" में साधक धर्मग्रंथ में बताए नियमों और निषेधों को मानता है । इस मंजिल में साधक प्रकृत अवस्था में होता है ।
हकीकत	-	चौथी या अंतिम मंजिल है । हकीक का अर्थ परम सत्य है ।

7.6 सारांश

हिन्दी सूफी काव्य फारसी तथा इस्लाम से प्रेरित होते हुए भी भारतीय था । सूफी कवियों ने भारतीय प्रेमाख्यानों की परंपरा में अपने काव्यों की रचना की । उन्होंने भारत में प्रचलित लोक कहानियों और लोक गाथाओं को अपनाया । इन सूफी कवियों में जायस नगर के रहने वाले महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी श्रेष्ठ कवि हुए हैं । इनके जन्म स्थान , जन्म तिथि , विवाह आदि के विषय में निश्चित रूप से कुछ ज्ञात

नहीं हो सका है । उन्होंने 'पद्मावत' के अतिरिक्त अखरावट आखरी कलाम आदि की रचना की किन्तु उनकी ख्याति 'पद्मावत' के कारण ही है ।

नागमती का वियोग वर्णन करते हुए जायसी ने नागमती की विरह वेदना का भव्य चित्रण किया है । यह वियोग वर्णन हिन्दी ही नहीं संसार की अन्य भाषाओं में भी अद्‌वितीय है । नागमती चित्तौड़ गढ़ की रानी है किन्तु वह वियोग की स्थिति में अपना आभिजात्य त्यागकर सामान्य नारी के स्तर पर वियोग वेदना में अपना दुख प्रकट करती है । पद्मिनी भी राजकुमारी नहीं बल्कि एक सामान्य परिवार की लड़की बन जाती है और वह भी योग्य वर से विवाह के लिए मनौती माँगती है ।

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. फारसी सूफी काव्य और हिन्दी सूफी काव्य का अंतर स्पष्ट कीजिए ।
2. 'पद्मावत' सूफी काव्य है अथवा प्रेम काव्य है ।
3. जायसी की भाषा पर एक निबंध लिखिए ।
4. कवि के रूप में जायसी की मूल्यांकन कीजिए ।
5. पद संख्या 8 व 10 की ससंदर्भ व्याख्या कीजिए ।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जायसी की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. जायसी के गुरु पर एक टिप्पणी लिखिए।
3. जायसी के जन्मस्थान के बारे में विद्‌वानों के मतों का उल्लेख कीजिए।
4. जायसी ने कार्तिक महीने में नागमती का वियोग वर्णन किस रूप में लिखा है।
5. नागमती के विरह में प्रकृति किस प्रकार दुःखी दिखाई गई है।

7.8 संदर्भ ग्रंथ

1. विजयदेव नारायण साही , जायसी , हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद ।
2. डॉ. परमानंद श्रीवास्तव , जायसी , साहित्य अकादमी , नई दिल्ली ।
3. रामचंद्र शुक्ल , जायसी ग्रंथावली (भूमिका) , नागरी प्रचारिणी सभा , वाराणसी ।
4. रामपूजन तिवारी, सूफी मत - साधना और साहित्य
5. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल , पद्मावत : व्याख्याकार चिरगाँव झाँसी , सम्वत् 2012
6. नागरी प्रचारिणी पत्रिका , काशी , वर्ष 57 अंक 4 सं. 2009 ।
7. जर्नल आफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी पटना , भाग 39 खण्ड 1-2 सन् 1953 ई.।
8. हिन्दी अनुशीलन - भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग , चैत्र , ज्येष्ठ 2010 और जुलाई , सितम्बर 1958 ई.

9. सम्पादक परशुराम चतुर्वेदी , सूफी काव्य संग्रह - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग , शक 1880
10. दि माडर्न रिव्यू : कलकत्ता , नवम्बर 1956 ई.
11. सं. माताप्रसाद गुप्त , जायसी ग्रंथावली : हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद सन् 1952 - 53 ।
12. सं. धीरेन्द्र वर्मा , हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 व 2 , प्र. ज्ञान मंडल लि. तृतीय संस्करण सं. 1985

इकाई-8 जायसी के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 हिन्दी प्रेमाख्यान और पद्मावत की प्रेम कथा
8.3 पद्मावत में विरह वर्णन
8.4 पद्मावत की प्रबंधात्मकता
8.5 पदमावत में लोकतत्व
8.6 जायसी की भाषा
8.7 जायसी का रहस्यवाद
8.8 जायसी का प्रकृति चित्रण
8.9 जायसी की प्रेम पद्धति
8.10 विचार संदर्भ एवं शब्दावली
8.11 सारांश
8.12 अभ्यासार्थ प्रश्न
8.13 संदर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- भारतीय काव्य परंपरा और फारसी काव्य परंपरा से परिचित हो सकेंगे और दोनों की तुलना कर सकेंगे ।
- लोक गाथा के रूप में पद्मावत में प्रयुक्त लोकतत्वों की पहचान कर सकेंगे ।
- पद्मावत की प्रबंधात्मकता पर प्रकाश डाल सकेंगे ।
- लोक कवि के रूप में जायसी और उनकी भाषा का अध्ययन कर सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना

मलिक मुहम्मद जायसी के बारे में यह स्पष्ट हो चुका है कि वे केवल सूफी कवि नहीं बल्कि सिर्फ कवि हैं और 'पद्मावत' उनका लौकिक प्रेम काव्य है । 'पद्मावत' में जायसी ने काफी तत्व भारतीय काव्य परंपरा से और काफी फारसी काव्य परंपरा से ग्रहण किये हैं । जायसी ने प्रचलित लोक गाथा और ऐतिहासिक लोक गाथा के आधार पर 'पद्मावत' की रचना की है । इतिहास की मात्रा कम है और लोकगाथा के आधार पर यह प्रबंध काव्य लिखा गया है । लोकगाथा के तत्वों के आधार पर 'पद्मावत' की समीक्षा अभीष्ट है । 'पद्मावत' की भाषा ठेठ अवधी है किन्तु कहीं - कहीं उस पर राजस्थानी का प्रभाव

भी दिखाई देता है । भारतीय सूफी कवियों ने प्रेमाख्यानों की रचना करने में फारसी भाषा की मसनवी पद्धति को अपनाया ।

8.2 हिन्दी प्रेमाख्यान और 'पद्मावत' की प्रेम कथा

सूफी कवियों ने आख्यानिक काव्यों की रचना की है और यह आख्यान भारत में लोक प्रचलित , लोक कथाओं और गाथाओं पर लिखे गए हैं । इन्होंने प्रेममूलक आख्यानो को अपने प्रबंध काव्यों का विषय बनाया है । इन प्रेम कथाओं के द्वारा सूफी कवियों ने परमात्मा के प्रति अपने हृदय के प्रेम को प्रदर्शित किया है । ये कहानियाँ कल्पित या अर्द्धकल्पित हैं । लौकिक प्रेम की कहानियों के सहारे अलौकिक प्रेम का वर्णन किया गया है जो सूफी साधना का मूल विषय है । सूफी साधना प्रेम से प्रारंभ होती है और उसकी परिणति भी प्रेम में होती है । इन सूफी साधकों के लिए परमात्मा परम प्रियतम है । जिसका प्रेम प्राप्त करने के लिए साधक विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का सामना करता है और अपने प्रेम के द्वारा सभी विघ्न - बाधाओं को पार करके अपने प्रियतम अर्थात् परमात्मा से मिलता है । हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों में ऐतिहासिक तथ्यों की ओर ध्यान न देकर भारतीय कथानक रूढ़ियों (मोटिफ) को महत्त्व दिया गया है । ईरानी कथानक रूढ़ियों का भी इनमें योग किया गया है । पद्मावत में प्रयुक्त कथानक रूढ़ियों का अलग शीर्षक के अन्तर्गत विवेचन किया गया है ।

आध्यात्मिक प्रेम की प्राप्ति में लौकिक प्रेम को सूफी कवि सहायक मानते है । इसलिए जायसी के पद्मावत में भी लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम प्राप्त करने का साधन बताया गया है ।

जायसी का पद्मावत सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और ज्वलंत कीर्तिस्तंभ है । सूफी साधकों का मूल मंत्र प्रेम है और उनके अनुसार संपूर्ण सृष्टि के कण - कण में उस परम प्रियतम का सौन्दर्य भरा हुआ है । उसे प्राप्त करने का एकमात्र साधन प्रेम है । ईश्वर को प्रियतम अथवा प्रियतमा मानकर सूफी साधक उसी प्रेमतत्व के नाम स्मरण , जिक्र और ध्यान - फिक्र में तन्मय रहते थे । सूफियों ने ईश्वर को प्रियतमा के रूप में महत्त्व दिया है । जीवात्मा पुरूष रूप में अर्थात् प्रेमी रूप में रहता है । 'इश्क - ए - मिजाजी' से 'इश्क - ए - हकीकी' तक पहुँचना इन सूफी साधकों का लक्ष्य था ।

जायसी सूफी संत हैं इसलिए उन्होंने सूफियों के प्रेम तत्व और उसकी सौन्दर्यमयी कल्पना को पूर्ण रूप से प्रतिपादित किया है । पद्मावत में जिस प्रेम भावना की अभिव्यक्ति की गयी है वह बाहय रूप में नायक - नायिका के प्रेम की लौकिक कथा मात्र है । जायसी के पद्मावत में लौकिक प्रेम कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की गई है । जायसी के पद्मावत की सूक्ष्मता, व्यापकता, अलौकिकता, गंभीरता का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है वह जीवात्मा - परमात्मा के पारस्परिक प्रेम और मिलन की गाथा है । पद्मावती सौन्दर्य वर्णन खण्ड में उन्होंने प्रेम दर्शन और सौन्दर्य के मौलिक तत्व का निरूपण किया है ।

पद्मावती के प्रेम में राजा रत्नसेन योगी बनकर चित्तौड़ छोड़ देता है और सिंहलद्वीप की यात्रा पर निकल जाता है । मार्ग में समुद्र यात्रा के समय अनेक विघ्न
बाधाएं आती हैं परंतु वह अपने गंतव्य स्थान सिंहलद्वीप पहुँच जाता है । वहाँ राजा गंधर्व सेन उसको सूली पर चढ़ाना चाहते है परंतु अंत में वह पद्मावती का अनन्य प्रेम के कारण प्राप्त कर लेता है और अनेक बाधाओं को पार करते हुए वह चित्तौड पहुँच जाता है । राघवचेतन की दुष्टता के कारण अलाउद्दीन पद्मावती को पाने के लिए चित्तौड़ पर चढ़ाई करता है । वह रत्नसेन को बंदी बनाकर दिल्ली ले जाता है । किन्तु वह मुक्त होकर चित्तौड़ लौट आता है । वीर पाल के साथ युद्ध में रत्नसेन मारा जाता है और रत्नसेन की दोनों रानियाँ उसके साथ सती हो जाती हैं । इस प्रकार रत्नसेन रूपी आत्मा 'फना' होकर 'अनहलक' की अधिकारिणी होती हुई 'आलमें लाहूत माधुर्य लोक में जाकर पद्मावती रूपी हक या परमात्मा के साथ तदाकार हो जाती है । उसे अनहलक की सिद्धि हो जाती है ।

सूफी प्रेम पद्धति का अनुसरण करते हुए जायसी ने पद्मावती के रूप सौन्दर्य का अनुपम और अद्वितीय वर्णन किया है । उनका कहना है - "जेहि दिन दसन जोति निरमई , बहु तन्ह जोति जोति ओहि भई ।" कहकर जायसी ने पद्मावती को अनुपम ज्योति स्वरूप सिद्ध किया है । यह सौन्दर्य अलौकिक है - "रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती" कहकर उसकी ज्योति से सूर्य - चन्द्र आदि को प्रकाश ग्रहण करते हुए बताया है ।'

जायसी ने फारसी प्रेम पद्धति का अनुसरण करने के कारण पद्मावत में प्रेम तत्व की गहन विवेचना की है । प्रेम के निरूपण में कवि कहता है - "प्रेम अहिष्टि गगन ते ऊंचा तथा ध्रुव अवा" आदि कहकर प्रेम को आकाश से ऊंचा तथा ध्रुव से भी अटल बताया है । इस प्रेम में अपूर्व प्रकाश है । इसके जाग्रत होते ही जीव को तीन लोक तथा चौदह खण्ड दिखाई देने लगते हैं । यथा -

"तीन लोक चौदह खण्ड , सबै परे मोहि सूझि ।
प्रेम छाडि नहिं लौन किछू जौ देखी मन बूझि ।।"

इस प्रेम में प्रेम की पीर भी दुःसह है । प्रेम में व्याप्त विरह का जायसी ने अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है ।

8.3 पद्मावत में विरह वर्णन

जायसी के पद्मावत में प्रेम के वियोग पक्ष को विशेष महत्त्व प्राप्त है । नागमती का विरह परिणीता का विरह है । वह हिन्दू संस्कारों में पोषित एक आदर्श नारी है जो प्रोषितपतिका है । पदमावत में रत्नसेन और पद्मावती के विरह का भी वर्णन है किन्तु नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है । डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के शब्दों में "नागमती के विरह-निरूपण में जितनी गहनता, आकुलता, मार्मिकता, प्रौढ़ता, प्रांजलता, प्रभावमयता, सजीवता, स्वाभाविकता और सुकुमारता दिखाई देती है,

उतनी किसी के भी विरह-वर्णन में दृष्टिगोचर नहीं होती । इस कारण नागमती का विरह-वर्णन विश्व की अनुपम कृति है ।"

जायसी का भावुक हृदय प्रेम की पीर और वियोग - वेदना मे पूर्णत: निमज्जित है । मानो कवि के हृदय में विरह व्यथा स्वयं साकार हो उठी है । पद्मावत एक विरह प्रधान काव्य है । इसमें रत्नसेन की विरह दशा का 6 स्थलों पर चित्रण

किया गया है । प्रथम - प्रेम खण्ड में हीरामनसुआ के मुख से पद्मावती का अलौकिक रूप सौन्दर्य सुनकर राजा मूर्छित हो जाता है और विरह में लीन हो जाता है । दूसरा - राजा गजपति खण्ड में गजपति से वार्तालाप में रत्नसेन की वियोग दशा का चित्रण है । तीसरा - राजा रत्नसेन सती खण्ड में पद्मावती के चले जाने पर राजा की वियोग व्यथा का चित्रण है । चौथा पार्वती महेश खण्ड में महादेव की से वार्तालाप करते समय राजा रत्नसेन की प्रेम विहवल दशा का वर्णन है । पांचवा - राजा गढ़ छेखा खण्ड में तोते के गले में प्रेम पत्र बांधते समय रत्नसेन की विरह दशा का चित्रण है । छठे - लक्ष्मी समुद्र खण्ड में पद्मावती से समुद्र में बिछुड़ जाने पर राजा रत्नसेन के विरह की व्याकुल स्थिति का चित्रण है । पद्मावती की. वियोग व्यथा का चित्रण पद्मावती वियोग खण्ड , गंदर्भ मैत्री खण्ड , लक्ष्मी समुद्र खण्ड , पद्मावती - नागमती वियोग खण्ड तथा पद्मावती - गोरा बादल संवाद खण्ड में राजा रत्नसेन के वियोग में पद्मावती वियोग व्यथित दिखाई देती है ।

रानी नागमती के वियोग का वर्णन तीन स्थलों पर हुआ है - नागमती वियोग खण्ड, नागमती संदेश खण्ड तथा पद्मावती - नागमती मिलाप खण्ड । जायसी के पद्मावत में निम्नांकित विशेषताएं हैं -

रूदन का प्राधान्य - पद्मावत के स्त्री एवं पुरूष पात्र वियोग में अत्यधिक अश्रु बहाते हुए अपनी वेदना व्यक्त करते हैं । उनके आंसुओ के प्रवाह में कहीं - कहीं पर्वत शिखर डूब जाते हैं । समुद्र मर्यादा को लांघ जाता है , सारी सृष्टि विरही के आंसुओ में डूब जाती है ;

"पदिक पदारथ कर हुंत खोवा । टूटहिं रतन , रतन तस रोवा ।
गगन मेघ जस बरसै भला , पुहुमी पूरि सलिल बहि चला ।
सायर छ सिखरगा पाटा । सूझ न बार पार कहूँ घाटा ।।"

विरह ताप की अतिशयता - जायसी के विरह की तीव्रता इतनी अधिक हो जाती है कि उसमें सारी सृष्टि विरहाग्नि में प्रज्ज्वलित होती दिखाई देती है ।

"अस परजरा विरह कर गठा , मेघ साम भए धूम जो उठा ।
दाढा राहु केतु गा दाधा , सूरज जरा चांद जरि आधा ।।'

विरह का मर्मस्पर्शी चित्रण - नागमती के हृदय में व्याप्त विरह - वेदना के कारण उसकी दयनीय स्थिति का वर्णन देखिए -

"बिरह बान तस लाग न डोली , रकत पसीज भीजि गई चोली ।

सूखहिं हिया , हार भा भारी , हरि हेरे - प्रान तजहिं सब नारी ।।"

प्रकृति की संवेदना - पद्मावत में पशु - पक्षी , पेड़ - पत्ते , पौधे - पुष्प, लता आदि प्राकृतिक पदार्थ विरही जनों के निकट संबंधी बन गये है; यथा-

"जेहि पंखी के निअर होइ कहै विरह की बात ।
सोई पंखी जाइ जरि तरिवर होइ निपात ।।"

विरही जनों की अत्यधिक कृशता - जायसी ने विरह वेदना का व्यापक और हृदय विदारक चित्रण किया है और उनकी कृशता को बढ़ा - चढ़ाकर दिखाया है । फारसी की ऊहात्मक शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है -

"दहि कोइला भई कंत सनेहा , तोला मांसु रही नहीं देहा ।।
रकत न रहा , विरह तन गए , रती रती होइ नैनन ढरा ।।"

ऋतुओं एवं तीज त्यौहारों पर विरह का आधिक्य - जायसी ने षटऋतु वर्णन और बारहमासा पद्धति द्वारा विरही पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । नागमती की विरह व्यथा तथा विषम वेदना का चित्रण इस प्रकार किया है-

"अबहुँ निठुर आउ ऐहि बारा , परब दिवारी होइ संसारा ।।"

अथवा

"सखि थक गावहिं अंग मोरी । हौं झुरावै बिछुरी मोरी जोरी ।।"

वर्षा ऋतु के प्रारंभ में नागमती को एक सामान्य नारी की भांति यह चिंता सताने लगती है कि उसका छप्पर पुराना हो गया है उसको कौन छाएगा ; यथा -

तपै लागि अब जेठ असाडी , मोहि पिउ बिनु छाजति भई गाढ़ी ।"

+ + +

"कोरौं कहां ठाट नव साजा , तुम बिनु कंत न छाजनि छाजा ।।"

विरह में सात्विकता का प्राधान्य - जायसी के विरह वर्णन में जिन पात्रों का अंकन हुआ है उनमें भोग विलास नहीं है । अपितु सात्विकता का प्राधान्य है । जायसी के विरही पात्र वियोगाग्नि में जलकर विनम्र , शुद्ध एवं सात्विक हो जाते है और उनके हृदय में किंचित भी गर्व नहीं रहता । वे आग में तपे हुए कुन्दन के समान हो जाते हैं जिनमें रजोगुण और तमोगुण वियोगाग्नि में जलकर भस्म हो जाता है और केवल सात्विक भाव बच जाता है -

"मोहि भोग सो काज न बारी । सौंहदीठि की चाहनहारी ।।"

वह अपने शरीर को जलाकर भस्म कर देना चाहती है और पवन से कहती है कि मेरी भस्म को उस मार्ग पर डाल देना जिस पर मेरे प्रियतम के पाँव पड़े ।

"यह तन जारौं छार कै , कहौं कि पवन उड़ाव ।
मकु तेहि मारग उडि पड़े , कंत धरै जहँ पाँव ।।"

फारसी वर्णन पद्धति का प्रभाव - जायसी के विरह वर्णन में फारसी विरह वर्णन की पद्धति का प्रभाव परिलक्षित होता है । जायसी के पात्रों के विरह में अतिशयता का वर्णन इतना है कि विरहियों की आँखों से अश्रुओं के स्थान पर रक्त की धारा बहने का वर्णन है । नागमती विरह - विदग्ध होकर रोती है तो उसकी आँखों से रक्त के अश्रु गिरते हैं जिसके कारण घुंघुची या गुंजा के ढेर लग जाते है ; यथा -

"कुहु क कुहु क जस कोइल रोई । रक्त आंस घुंघची बन बोई ।।
जहं जहं ठाढ़ होय बनवासी , तहं तहं होय घुंघची के रासी ।।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता हैं कि जायसी द्वारा विरह - वर्णन हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है । उसका मूल्यांकन करते हुये डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ कहते हैं -"व्यथा अपनी सारी मधुरता, विरह अपनी सारी मिठास, प्रणय अपने सारे स्थायित्व और नारी चरम भावुकता के साथ इन शब्दों में साकार होकर बोल रही है ।" वेदना का जितना निरीह , निरावरण , मार्मिक , गम्भीर , निर्मल एवं पावन स्वरूप इस विरह वर्णन में मिलता है , उतना अन्यत्र दुर्लभ है ।

8.3.1 पद्मावत समासोक्ति अथवा अन्योक्ति

मध्य युग में संत कवि और सूफी कवियों ने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया । सूफी संस्कृति को आधार बनाकर जायसी ने भारतीय जीवन , धर्म संस्कृति और दर्शन की विचार धाराओं के आधार पर अपने काव्य की रचना की । पद्मावत के संबंध में एक विवाद प्रचलित है कि क्या यह समासोक्ति है अथवा अन्योक्ति है । प्रश्न उठता है कि इसके कुछ प्रसंग आध्यात्मिक अर्थ देते है अत: क्या इसको समासोक्ति मान लिया जाए । कवि इस काव्य को लौकिक अर्थ के साथ - साथ आलौकिक अर्थ भी देना चाहता था । जायसी ने इस काव्य के अंत में कुछ ऐसी पंक्तियाँ लिख दी है जो इसको अन्योक्ति सिद्ध करती हैं -

"तन चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा ।
गुरू जुआ जेहि पंथ दिखाया । बिनु गुरू जगत को निरगुन पावा ।
नागमती यह दुनियां धंधा । बाँचा सोई न रगई चित बंधा ।
राघवदूत सोई सैतानू । माया अलादीन सुलतानू ।
प्रेमकथा इहि भांति विचारहु । बूझि लेहु जौ बूझै पारहु ।
तुरकी अरबी हिन्दुई , भाषा लेती आहिं ।
जेहि मह मारग प्रेम कर सबै सराहैं ताहिं ।।"

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस काव्य को समासोक्ति ही स्वीकार किया था । उन्होंने कहा था कि वस्तु वर्णन के प्रसंग में कवि ने प्राय: इस प्रकार के विशेषणों का प्रयोग किया है जिससे प्रस्तुत के साथ परोक्ष का अर्थ भी पाठक के चित्त में अनायास उदभाषित हो सके । जैसे सिंहलगढ़ के वर्णन के प्रसंग में नौ पौरी और उसके बाद में दसवें दरवाजे वाले नगर का संकेत उपस्थित करते है । कवि आदि से अंत तक दो

अर्थो के निर्वाह के लिए प्रतिज्ञाबद्ध नहीं है । जहाँ भी अवसर मिला है वह कुछ विशेषणों का ऐसा प्रयोग करता है जिससे पाठक के हृदय में उसका अभिप्रेत अप्रस्तुत अर्थ भी उपस्थित होता है । पद्मावत के कुछ अंशों में अन्योक्ति भी है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पद्मावत के कुछ अंशों को अन्योक्ति के निकट मानकर भी इसे समासोक्ति मानने की अनुशंसा की थी ।

श्री ए. जी. शिरेफ और डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने कहा है कि कवि ने जो कुंजी दी है वह ठीक नहीं है । नागमती की अवहेलना करके पद्मावती को प्राप्त करने के प्रयत्न को पतन माना है उत्थान नहीं । नागमती का प्रेम जितना दिव्य है, उतना पद्मावती का नहीं । निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि पद्मावत अन्योक्ति काव्य नहीं है ।

8.4 'पद्मावत' में प्रबंधात्मकता

प्रबंध काव्य में विद्वानों ने कुछ विशेषताएँ मानी हैं और उन विशेषताओं का समावेश प्रबंध काव्य में होना चाहिए । आनंदवर्धनाचार्य ने 'ध्वन्यालोक' में इन विशेषताओं पर प्रकाश डाला है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि "यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है । उन्होंने यह भी कहा है कि प्रबंध काव्य में मानव जीवन का पूर्ण दृश्य होता है । उसमें घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला और स्वाभाविक रूप के ठीक - ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पष्ट करने वाले नाना भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए । शुक्ल जी ने इतिवृत्तात्मकता और रसात्मकता को इसके आवश्यक तत्व माने हैं । इतिवृत्तात्मकता से उनका अभिप्राय ऐसी कथा से है जो आदि से अंत तक चलती रहे और रसात्मकता से अभिप्राय उन प्रासंगिक वस्तु वर्णनों से है जिनमें जीवन दशा के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं और वे हृदय को रंजित करने की सामर्थ्य रखते हैं ।

आचार्यो ने कथा की सानुबन्धता और श्रृंखलाबन्धता को प्रबंध काव्य का प्रमुख तत्व माना है । 'पद्मावती' और राजा रत्नसेन के विरह एवं मिलन की पद्मावत में सुसम्बद्ध कथा है जिसमें रत्नसेन योगी बनकर सिंहलद्वीप की यात्रा करता है । 'पद्मावती' को वह चित्तौड़ ले आता है । यह कथा कल्पित है । चित्तौड़ में राजा रत्नसेन राघव चेतन को निकाल देता है । 'पद्मावती' के जन्म से लेकर राजा रत्नसेन के द्वारा सिंहल गढ़ को घेरने की घटनाओं को कथा का आदिभाग कहा जा सकता है । 'पद्मावती' और रत्नसेन के विवाह से लेकर सिंहल द्वीप से चित्तौड़ लौटने की घटनाओं को कथा का मध्य भाग कहा जा सकता है । राघव चेतन को चित्तौड़ से निकाले जाने से लेकर 'पद्मावती' और 'नागमती' के सती होने तक की घटनाओं को कथा का अवसान कहा जा सकता है । 'पद्मावत' की कथाएं आदि, मध्य और अवसान से जुड़ी हुई हैं । सम्पूर्ण कथा शृंखलाबद्ध है ।

'पद्मावत' में आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं का नियोजन हुआ है । हीरामन तोता, ब्राह्मण का वृत्तान्त, महादेव - पार्वती का आगमन, समुद्र और लक्ष्मी का, राघव

चेतन, अलाउदीन के चित्तौड़ पर आक्रमण का वृतान्त , गोरा - बादल की कथा, राजा देवपाल और उसकी दूती की कथा ये सब आधिकारिक कथाओं से सुसम्बद्ध हैं ।

जायसी ने 'पद्मावत' में अपनी प्रतिभा के बल पर वस्तु वर्णन का कौशल दिखाया है । सिंहल द्वीप वर्णन 'पद्मावती' का रूप वर्णन , जल क्रीड़ा वर्णन , सिंहल द्वीप यात्रा वर्णन , 'पद्मावती' और रत्नसेन के विवाह का वर्णन , चित्तौड़ गढ़ वर्णन , षडऋतु और बारहमासे के साथ नागमती का विरह वर्णन , बादशाह के भोज और गोरा बादल के युद्ध का वर्णन तथा नागमती व पद्मावती के सती होने का वर्णन । 'पद्मावत' में ये रमणीय स्थल हैं जिनमें प्राकृतिक छटा के साथ मानव की सौन्दर्यानुभूति के दर्शन होते हैं और जिसको पढ़कर पाठक की रागात्मक वृति झंकृत हो जाती है । पदमावती का सौन्दर्य अद्भुत एवं अलौकिक है । उसके काले केशों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है -

"भंवर केस वह मालति रानी , विसहर लुहिर लेहि अरधानी ।
बेनी छोरि झारू जो बारा , सरग पतार होइ अंधियारा ।।"

ऐसी ही कवि ने उसकी माँग के सौन्दर्य का वर्णन किया है -

'बिनु सेंदूर अस जानहु दिया , उजिअर पंथ रैनि मंह किया ।
कंचन रेण कसौटी कसी , जनु घन मँह दामिनी परगसी ।।"

प्रबंध काव्य में प्रासंगिक कथाओं और वस्तु वर्णन का संबंध आधिकारिक कथा से होना चाहिए । 'पद्मावत' की प्रासंगिक कथाएं और ऋतु वर्णन आधिकारिक कथा को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं । हीरामन तोता की कथा में कवि ने उसके पांडित्य और पथ-प्रदर्शक कार्य की महता को स्पष्ट किया है । महादेव और पार्वती के आगमन के द्वारा भारतीय काव्य रूढ़ि का प्रयोग किया है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सभी प्रासंगिक कथाएं मुख्य कथा प्रवाह को आगे बढ़ाती हैं ।

'पद्मावत' का कार्य है - राजा रत्नसेन की मृत्यु होने पर पद्मावती और नागमती का सती होना दिखलाकर लौकिक प्रेम को उस अलौकिक जगत की वस्तु बना देना , जहाँ अनन्त शान्ति व चिर मिलन के अलावा और कुछ नहीं है । जायसी ने अपने इसी कार्य के आधार पर सम्पूर्ण प्रबंधकाव्य की योजना की है । सारी प्रासंगिक कथनों एवं रसात्मक वर्णनों के द्वारा इसी महान् उद्देश्य की पूर्ति करके अपने काव्य की इति की है । जायसी के 'पद्मावत' में घटनाओं की विविधता होते हुए भी उनमें सुसम्बद्धता है । रोमांचक और साहसिक कार्यों का उल्लेख होने पर भी स्वाभाविकता है । अलौकिक एवं अतिमानवीय तत्वों का समावेश होने पर भी सरलता और मार्मिकता है , भौतिकता होते हुए भी आध्यात्मिकता है और सूफी पद्धति का अनुसरण करते हुए भी भारतीय प्रेम , वीरता एवं वैराग्य का सामंजस्य है । इसीलिए 'पद्मावत' की प्रबंध कला उच्च कोटि की है । डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने कहा है - "जो भी हो उनकी प्रबंध सुगुंफन कला किसी प्रकार से हेय नहीं कही जा सकती । पूर्वार्द्ध का प्रबंधत्व सभी दृष्टियों से सफल ही नहीं बल्कि मध्यकालीन साहित्य में बेजोड़ है ।"

8.5 जायसी के 'पद्मावत' में लोकतत्व

जायसी का 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य का प्रथम सफल महाकाव्य है जिसमें सूफी दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए सूफी सिद्धान्त , फारसी साहित्य , भारतीय साहित्य , जीवन दर्शन , इतिहास तथा लोक जीवन का समावेश करते हुए इस प्रेम गाथा की रचना की गई है 'पद्मावत' में इतिहास तथा कल्पना का मणिकांचन संयोग है । कवि ने इसमें पौराणिक आख्यान तथा लोक - कथाओं का भी संयोजन किया है । इसीलिए 'पदमावत' का जनमानस से निकट संबंध स्थापित हो सका है । भारतीय कवि अपनी कथा को इच्छित दिशा की ओर मोड़ने के लिए प्राचीन काल से सामान्य घटना पर विशेषताओं और विषयपरक विश्वासों का आश्रय लेता रहा है । भारत के कथा काव्यों अथवा लोक कथाओं में इनका व्यवहार होता रहा है ।

'पद्मावत' में कथानक रूढियों का जायसी ने बहुत सुन्दर नियोजन किया है ।

अंग्रेजी साहित्य में इन्हें मोटिफ कहा जाता है । हिन्दी में इन्हें कथानक रूढ़ि या कथानक अभिप्राय भी कहते हैं । कथानक रूढ़ियों के प्रयोग से कथा को विस्तार दिया जाता है । वस्तुत: कथानक रूढ़ियां कथावस्तु के मूल तन्तु है जिनसे कथा का विस्तार होता है । भारतीय ही नहीं अपितु यूनानी , फारसी तथा पाश्चात्य साहित्य ने भी इनके प्रयोग का बाहुल्य रहा है । ए. बी. कीथ ने इस संबंध में लिखा है - "हमें भारतीय तथा यूनानी दोनों रोमांसों में प्रथम दर्शन के प्रेम के सिद्धान्त की , स्वप्न में प्रेमियों का एक - दूसरे के लिए हृदय खोजने की, अच्छाई से बुराई की और त्वरित गति से भाग्य परिवर्तन की बात पुन: सौभाग्य प्रत्यावर्तन , अदम्य साहस , सागर में जहाज का ध्वंस , अलौकिक सौन्दर्य - सम्पन्न नायक और नायिकाएँ , प्रकृति और प्रेम का मुक्त और सविस्तार वर्णन आदि की प्राप्ति होती है ।"

जायसी ने पूर्ववर्ती साहित्य में प्रचलित कथानक रूढ़ियों का सफल प्रयोग किया है । पदमावत की कथा समाज के अभिजात्य वर्ग या राज वर्ग से संबंधित है । रत्नसेन चित्तौड़ का राजा है तो पदमावती सिंहल द्वीप की राजकुमारी है । नागमती चित्तौड़ की रानी है । जिसको रत्न सेन चित्तौड़ में छोड़कर सिंहल द्वीप में पदमावती को पाने चला जाता है । राज परिवार के ये पात्र राज महलों की चार दीवारी में बन्द नहीं रहते । जायसी उन्हें सामान्य व्यक्ति की धरती पर उतार लाता है । राजा रत्नसेन अपना राज - पाट छोड़कर योगी का वेष धारण कर लेता है । नागमती रानी होते हुए भी रत्नसेन के चले जाने के बाद एक साधारण वियोगिनी बन जाती है । 'पद्मावत' में जायसी ने अवधी भाषा का प्रयोग किया है । उसने शब्दों और भावों का चयन गाँव के निर्धन लोगों के छप्परों , झोंपड़ियों , उत्सवों, त्यौहारों , सामान्य स्त्री - पुरूषों के वार्तालाप से किया है । जायसी के 'पदमावत' में निम्नांकित कथानक रूढ़ियों का सफल संयोजन हुआ है । जायसी से पूर्व प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश के चरित काव्यों ने इनकी परम्परा चली आ रही है ।

पद्मावती की कथा

भारतीय साहित्य और लोक साहित्य में 'पद्मावती की प्रेम कथा का वर्णन अनेक कवियों के द्वारा किया गया है । संस्कृत में 'स्वप्नवासवदत्ता' , 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावत' समय आदि की कथा 'पदमावत' से मिली हुई है । डॉ. सत्येन्द्र ने 'पदमावत' के कथा सूत्र के संबंध में लिखा है - "इस प्रेमकथा का मूल स्त्रोत वस्तुत: नलकथा में भी उपलब्ध है , जहाँ नल के पास हंस आकर दमयंती के प्रति प्रेम और उसे प्राप्त करने की चेष्टा उत्पन्न कर देता है । 'पद्मावत' में जायसी ने भारत की इसी प्राचीन कथा को विकास का सौन्दर्य प्रदान किया है ।"

जायसी से पूर्व कबीर ने हिन्दू - मुसलमान दोनों के कट्टरपन की निन्दा की थी और उससे साधारण जनता राम और रहीम की एकता को मानने लगी थी । हिन्दू - मुसलमानों की दास्तान हमजा और हिन्दुओं की रामकहानी मुसलमान सुनने को लालायित हो चुके थे । दोनों परस्पर सलाह - मशविरा करते थे । अमीर खुसरो जायसी से पहले इन दोनो जातियों के हृदय में योग करवाने के लिए बहुत कुछ काम कर चुके थे । जायसी ने 'पदमावत' प्रेम कहानी के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया कि जैसे एक मनुष्य को दुख या सुख होता है वैसे ही दूसरों को भी होता है । जायसी ने इस प्रेम कहानी के द्वारा प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाया । रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि जायसी ने दोनों धर्मो के हृदय को आमने - सामने रखकर अजनबी पन को मिटाने का प्रयास किया है । प्रेम कथाओं का समय बाबर से लेकर मुगल साम्राज्य के अंत तक रहा । पदमावत उस युग की साधना ही सिद्ध हुई और उसके प्रतिनिधि जायसी थे । उनका यह उद्घोष उस समय सर्वत्र गूँज उठा था-

"बिरछि एक लागी दुई डारा , एकहिं ते नाना परकारा ।
माता के रकत पिता के बिन्दू उपजै दुवौ तुरक और हिन्दू ।"

'पद्मावत' में लोक कथाओं के तत्व भरे हैं । और लोक जीवन का सुन्दर चित्रण भी हुआ है । सिंहल द्वीप की पनिहारिनों के चित्रण में जायसी ने मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है । पनिहारिनों के सिर पर सोने के घड़े हैं । यह कोई अत्युक्ति पूर्ण वर्णन नहीं है क्योंकि लोक गीतों की सामान्य स्त्री भी सोने की थाली में ही अपने प्रिय को भोजन परोसती है और रेशम की डोरी पर ही झूला झूलती हैं । पनिहारिनों की सुन्दरता का वर्णन करके जायसी कहते हैं कि जिस स्थान की पनिहारिने ही इतनी सुन्दर हैं उस देश की राजकुमारी कितनी सुन्दर होगी-

"माथे कनक गागरी आवहिं रूप अनूप ।
जेहि के उस पनिहारी सो रानी केहि रूप ?"

विवाह के समय वधू को हल्दी लगाई जाती है । राजकुमारी के हल्दी के स्थान पर कुमकुम - चंदन आदि लगाये जाते हैं । बारात के आगमन पर नगर की स्त्रियां अटारियों पर चढ़कर दूल्हे को देखती हैं । आज भी भारतीय नारियाँ बारात को देखने के

लिए अटारियों पर चढ़ जाती हैं । पदमावती जब दूल्हे के संबंध में जिज्ञासा करती है तो उसकी सखी उत्तर देती है-

“जस रबि , देखु , उठै परभाता । उठा छत्र तस बीच बराता ।
ओहि मांझ भा दूलह सोई । और बरात संग सब कोई ।“

‘पदमावत’ के सभी खण्डों में लोकतत्वों की बहुतायत है । भारतीय कन्या जब अपने माता - पिता के घर से विदा होती है तो उस समय विदाई के करूण रस पूर्ण गीत गाये जाते हैं । मायके के प्रति यह प्रेम स्वाभाविक है ; यथा -

“नैहर आइ काह सुख देखा । जनु होइगा सपने कर लेखा ।
मिलहु सखी हम तहँवा जाहीं । जहाँ आइ पुनि आदब नाहीं ।
हम तुम मिलि एकै संग खेला । अंत बिछोह आनि गिउ मेला ।।“

बादल की नवविवाहिता वधू जब बादल युद्ध में जाने लगते हैं तो लज्जित होती है । राजस्थानी लोकगीतों में नारी संकोच और लज्जा के अनेक चित्र मिलते हैं । पति के आगमन पर नायिका स्पष्ट रूप से उनका स्वागत भी नहीं कर सकती है । अत: वह पति को “जुहार” करने के लिए अपने गले का मोतियों का हार तोड़ डालती है । कहती है लोग तो समझते हैं कि मैं मोती चुन रही हूँ पर वह मोती चुनने के बहाने झुक - झुक कर नमस्कार कर रही है -

"साजन आयो हे सखी टुटयो मोतियन गलहार
लोग जाने मोति चुगे ; लुळ -- लुळ करूँ 'जुहार' ।"

बादल की स्त्री भी युद्ध में जाते हुए पति को रुकने के लिए कैसे कहे? अत: वह कहती है तुम युद्ध में जाने का साहस करो और मैं सती होने का वेष बनाती हूँ । अगर तुम युद्ध में पीठ दिखाकर आये तो मैं तुमसे नहीं मिलूँगी । बादल की स्त्री के माध्यम से राजस्थानी क्षत्रिय नारी का आदर्श चित्रण किया है; जो बहुत स्वाभाविक है और लोक जीवन से सम्पृक्त है । यथावसर जायसी ने 'पद्मावत’ में लोकजीवन का सही चित्रण किया हैं किन्तु जहाँ अवकाश नहीं था वहाँ भी लोक तत्वों का प्रयोग किया हैं । 'पद्मावत' में लोक विश्वासों का भी चित्रण हुआ है क्योंकि जायसी की लोक जीवन में गहरी रुचि थी । नागमती की सारी चिंताएं एक अभावग्रस्त सामान्य भारतीय स्त्री की चिंताए बन गई हैं । वह कहती है "पुष्प नखत सिर ऊपर आवा । हौं बिनु नाह मंदिर को छावा ?” नागमती राजरानी है किन्तु वह एक सामान्य स्त्री के समान अपने घर की मरम्मत के लिए चिंतित है । नागमती कहती है कि मुझे भोग से कोई काम नहीं है मैं तो केवल अपने प्रियतम को देखना चाहती हूँ - “मोहि भोग सौं काज न बारी । सौंह दिस्टि कै चाहनहारी ।।“ लोकगीतों में भी प्रियतम को देखने की लालसा ही व्यक्त की गई है -

"कागा सब तन खाइयो चुन - चुन खाइयो माँस
दो नैना मत खाइयो , पिया मिलन की आस ।“

'पद्मावत' की संरचना लोकगीतात्मक है इसलिए इसमें कथानक रूढ़ियाँ , लोकविश्वास आदि लोकतत्वों का समावेश हुआ है । जिससे 'पदमावत' सरस - मार्मिक महाकाव्य बन गया है ।

8.6 जायसी की भाषा

जायसी ने पद्मावत की रचना ठेठ अवधी भाषा में की है । उनकी भाषा में तत्सम शब्दों के प्रति कोई आग्रह नहीं है । सारी बातें सीधे - साधे ढंग से कही गई हैं और गूढ़ - से - गूढ़ विषयों का प्रतिपादन सरलता के साथ किया गया है । यह कहा जा सकता है कि अवधी भाषा का 16 वीं शताब्दी का रूप पद्मावत में सुरक्षित है । इसकी भाषा में प्रचलित सूक्तियों , लोकोक्तियों , मुहावरों का बहुत सुन्दर ढंग से प्रयोग किया गया है । इनके प्रयोग के कारण ही पद्मावत समृद्ध और सशक्त रचना बन गई है । देशज और तद्भव शब्दों का भी कवि ने प्रयोग किया है । जायसी की भाषा तत्कालीन लोक भाषा के अत्यधिक निकट थी । डॉ. श्रीनिवास बत्रा के अनुसार - "ठेठ तथा तद्भव शब्द रूपों , लोक प्रचलित उक्तियों एवं मुहावरों आदि की दृष्टियों से सूफियों के प्रेमाख्यान लोकभाषा के महाकोश हैं ।" हिन्दी के प्रेमाख्यानों में केवल अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है । जायसी ही नहीं अन्य सूफी कवियों का भी लोक से घनिष्ठ संबंध था । इसलिए उनकी भाषा लोक जीवन की भाषा है । परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है - "जायसी की सफलता उनकी सादी एवं आलंकरिक भाषा के व्यवहार में भी पायी जाती है । कहीं - कहीं उसमें यदि अनजान का अल्हड़पन आ जाता है तो अन्यत्र एक मंजी हुई लेखनी द्वारा निकले हुए प्रौढ़ उद्गारों की बहार भी देखने को मिलती है ।" जायसी ने अवधी के व्याकरण के अनुकूल अवधी भाषा के कारक चिन्हों का सफल प्रयोग किया है । उन्होंने अवधी के पुरानी अप्रचलित शब्दावली का भी प्रयोग किया है । जायसी ने बोलचाल की अवधी के अलावा बीच - बीच में नये - पुराने , पूर्वी - पश्चिमी कई प्रकार के भाषा रूपों को अपनाया है । अवधी की अपनी विशेषता है कि उसमें मिठास है । जायसी की भाषा बहता नीर है जिसमें ताजगी है और जो लोक जीवन से जुड़ी हुई है । यद्यपि जायसी का अवधी प्रयोग असंस्कृत है किन्तु भाषा की स्वाभाविकता , सरसता और मनोगत भावों की प्रकाशन - सामग्री ने जायसी को अवधी साहित्य में सम्मान दिलवाया है । जायसी की अवधी भाषा में तुलसीदास जी के समान साहित्यिकता और पांडित्य नहीं है । इससे इनकी भाषा का स्वाभाविक रूप यथावत रहा और वह क्लिष्ट नहीं बन पाई । उनकी भाषा प्रसाद और माधुर्य गुण से परिपूर्ण है । उनकी भाषा में च्युत संस्कृति दोष है फिर भी जायसी ने अवधी को साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने का स्तुत्य प्रयास किया है ।

जायसी के काव्य में अत्यधिक पुनरुक्तियाँ हैं , उसमें पांडित्य प्रदर्शन भी है , अत्युक्तियों की भरमार है । हिन्दू - संस्कृति का उन्हें अपूर्ण ज्ञान है , फिर भी जायसी का भारतीय साहित्य और संस्कृति में एक विशिष्ट स्थान है । जायसी कवि के नाते हिन्दी - साहित्य में अत्यन्त उच्च हैं और इनको हिन्दू - मुस्लिम हृदयों के सांस्कृतिक

समन्वय का श्रेय दिया जाता है । बाबू गुलाबराय ने लिखा है - "जायसी महान कवि हैं । उसमें कवि के समस्त सहज गुण विद्यमान हैं । उसने सामयिक समस्या के लिए प्रेम की पीर की देन दी । उस पीर को अपने शक्तिशाली महाकाव्य के द्वारा उपस्थित किया । वे अमर कवि है ।"

8.7 जायसी का रहस्यवाद

रहस्यवाद आत्मा की वह स्थिति है जब वह बाह्य वस्तुओं से संबंध तोड़कर भावनामय लोक में पहुँच जाती है , जहाँ वह अपने और परमात्मा के बीच एकरूपता का अनुभव करने लगती है और उसे अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है । जायसी में सूफी रहस्यवाद पाया जाता है किन्तु वे भारतीय कवि थे इसलिए उनपर अद्वैतवाद की भावना का यथेष्ट प्रभाव है । सूफी कवियों ने प्रेमाख्यानकों की प्रेमिका को परमात्मा का प्रतीक माना है और प्रेमी को आत्मा का । जायसी ने 'पद्मावत' में 'पद्मावती' को परमात्मा और रत्नसेन को आत्मा के रूप में कल्पित करके लौकिक प्रसंगों में अलौकिक पक्ष का संकेत किया है । जायसी ने संसार के समस्त पदार्थों को ईश्वरीय छाया से उद्भासित कहा है । समस्त प्रकृति उस प्रियतम के समागम के लिए उत्कंठित दिखाई देती है । 'पद्मावत' के प्रेम खण्ड में रहस्यवाद का सुन्दर निदर्शन है । नख - शिख वर्णन आदि कुछ वर्णन भी रहस्यवादी हैं ।

हीरामन तोते से 'पद्मावती' के नख - सिख वर्णन को सुनकर रत्नसेन बेसुध हो जाता है और उसको परम ज्योति के आनन्द की अनुभूति होती है । परन्तु उसके भंग होने पर उसको लगता है जैसे कोई बावला जाग्रत अवस्था को प्राप्त हो गया है । रत्नसेन नवजात शिशु के समान रोता हुआ कहता है -

"जब भा चैत उठा बैरागा । बाउर जनों सोई उठि जागा ।
आवत जग बालक जस रोवा । उठा रोइ हा ज्ञान को खोवा ।
हों तो रहा अमरपुर जहां । इहां मरनपुर आय हुं कहाँ ।"

उसको प्रकृति के कण - कण में परोक्ष ज्योति और सौन्दर्य की झलक दिखाई देती है -

"रवि , ससि , नखत दिपहिं ओहि जोती । रतन पदारथ मानिक मोती ।
जहं जहं बिहंसि सुभावहिं हंसी । तंह तंह छिटकि जोति परगसी ।"

जायसी की मान्यता है कि परमात्मा हृदय में निहित है किन्तु उसके साक्षात्कार कराने वाले की आवश्यकता है -"पिउ हृदय में भेंट न होई । कोरे मिलाव कहों कहीं रोइ ।" जिस दिन आत्मा को उस रहस्य का ज्ञान होता है उसी दिन वह विरह ज्वाला में दग्ध होने लगती है । उसे समस्त जगत प्रियतम के विरह बाणों से बिद्ध दिखाई देता है -

"उन्ह बानन अस को जा न मारां ? बेधि रहा सगरो संसारा ।
गगन नखत जो जाहिं न गनै । वै सब बान ओहि कै हनै ।"

जायसी की सी तीव्र विरह - अनुभूति बहुत कम कवियों में पाई जाती है । उनका विश्वास है कि प्रेम में ही प्रियतम निवास करता है -

"प्रेमहि माह विरह सरसा । मेन के घर बधु अमृत बरसा ।"

इस विरह की चरम अनुभूति ही मानस में प्रियतम के सामीप्य को दृष्टिगोचर कराती है और उससे जो आनन्द प्राप्त होता है , वह विश्व में व्याप्त दिखाई देता है -

"देख मानसर रूप सोहावा । हिय हुलास पुरइनि होइ छाया ।
भा अंधियार रैन मसि छूटि । भा भिनुसार किरन रवि फूटी ।
कंवल विगस तज बिहंसि देहि । भंवर दसन होई के रस लेहि ।"

जायसी के रहस्यवाद में उच्च कोटि के साधक भक्त कवि की साधनात्मक रहस्यवाद के भावुक तत्व की प्रधानता है । इनके रहस्यवाद में हठयोग , तंत्र और रसायन का उल्लेख हुआ है । जायसी की प्रेमानुभूति एवं प्रेम की तन्मयता उच्च कोटि की है । लौकिक प्रेम को अलौकिक एवं आध्यात्मिक प्रेम में परिणत करने की क्षमता है । आत्मा और परमात्मा के मिलन में उन्होंने माया को बाधक कहा है- "माया अलादीन सुल्लानु ।" आत्मा को परमात्मा के मिलन के लिए वियोग में पागल एवं विहवल दिखाया है । मिलन में अनेक बाधाओं का वर्णन है परन्तु एकाग्रता, अनन्यता के कारण आत्मा विघ्नों पर विजय प्राप्त करके परमात्मा से मिल जाती है । दाम्पत्य भाव द्वारा आत्मा परमात्मा से मिलन की अभिव्यंजना हुई है । उस रहस्यमयी सत्ता को सर्वव्यापी, सर्वान्तरयामी, सार्वभौम सत्तामयी सिद्ध किया है । 'अहं ब्रह्मास्मि' का अनुसरण करते हुए अपने ही भीतर उस परम सत्ता के दर्शन किये है । हृदय में ही आत्मा - परमात्मा का मिलन संजोया है । इस रूप में इनके रहस्यवाद में अद्वैतवाद का प्रभाव है । आत्मा और परमात्मा के मिलन में गुरू का महत्त्व स्वीकार किया गया है । दार्शनिक दृष्टि से विचार करने पर जायसी के रहस्यवाद में सर्वात्मवाद , अद्वैतवाद , प्रतिबिम्बवाद का सम्मिश्रण है ।

8.8 जायसी का प्रकृति चित्रण

जायसी ने 'पद्मावत' में प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन किया है । भावाभिव्यंजना की चरमोत्कर्ष स्थिति के लिए प्रकृति की भाव भूमि पर कवि ने सौन्दर्य के प्रगाढ एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं । शरच्चन्द्रिका में देदीप्यमान चन्द्रमा में प्रिय को रमणी का मुखमण्डल दिखाई देने लगता है तो कभी सावन की कजरारी घटाएं उसे किसी रूपसी के केशगुच्छों के रूप में लहराती दिखाई देती हैं । कभी रूपसी के अधरों की ललाई में बिम्बाफल की छवि अंकित की जाती है तो कभी उरोजों की ऊँचाई में और वर्तुलता में भी फलों की स्मृति कराई जाती है । कहीं नाभि की गहराई में सरोवर की गहराई का एहसास दिया जाता है तो कभी उदर की रोमावली सर्पिणी बन प्रेमी को डंसने को प्रस्तुत हो जाती है । जघनोरू कदली मूल से प्रतियोगिता करने लगते है तो कोमल बाहुयुग्म स्निग्धता में कमलश्री से प्रतिस्पर्धा करता दिखाई देता है । जायसी ने 'पद्मावत' में शास्त्र - प्रचलित उपमानों को ग्रहण किया है और साथ - साथ उसने जनजीवन में प्रचलित प्राकृतिक उपमानों को भी ग्रहण किया है । नागमती के वियोग वर्णन में कवि ने नागमती की हृदय की तुलना सूखे सरोवर की मिट्टी से की है -

"सरवर हिया घटत नित जाई । टूक - टूक हवै कै विहराई ।

विहरत हिया करहु पिउ टेका । दीठि दवंगरा मेरवहु एका ।"

जायसी ने वातावरण निर्माण के लिए भी प्रकृति चित्रण किया है । चित्तौड़ में विरहिणी नागमती के अश्रु - प्रवाह के साथ जल आप्लावन के दृश्य का चित्र प्रस्तुत किया है -

"जलथल भरे अपूर सब धरती गगन मिलि एक ।
धनि जोबन अवगाह मह दे बूड़त पिउ टेक ।"

जायसी ने 'पद्मावत' के प्रारंभ में सृष्टि एवं प्रकृति स्रष्टा करतार का स्मरण किया है -

"सुमिरौं आदि एक करतारू । जेहि जिउ दीन्ही कीन्ह संसारू ।।
कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा । हिन्देसि वन खण्ड और जरि मूरि ।"

'पद्मावत' में कहीं - कहीं नीति तथा उपदेश के रूप में प्रकृति - निरूपण किया गया है :

"सुखी निचिंत जोरि धन करना । यह न चिंत आगे है मरना ।
भूले हमहुँ गरब तेहि माहां । सो बिसरा पावा जेहि पाहाँ ।"

मानवीय हर्ष - विषाद के रूप में प्रकृति चित्रण हुआ है ; यथा -

"चकई बिछुरि निशि लखि कहां मिलौ हो नाह ।
एक चांद निसि सरग मेह दिन दूसर जल मांह ।।"

जायसी ने 'पद्मावत' में अपने पात्रों की मनोदशा के अनुरूप प्रकृति व्यापारों की योजना की है । नागमती वियोग खण्ड में प्रकृति के उद्दीपन रूप का सुन्दर चित्रण किया है -

"सखिन रचा पिउ संग हिंडोला, हरियर भुंइ कुसमि तन चोला ।
हिय हिंडोल जय डोलै मोरा , विरह भुलावै देइ झकोरा ।"

जायसी ने मानवीय भावों की व्यंजना हेतु उपमान के रूप में प्रकृति वर्णन किया है ; यथा -

"कंवल जो बिगसा मानसर , बिनु जल गएउ सुखाइ,
कबहुं बेलि फिर पलुहै , जो पिउ सींचे आई ।"

जायसी ने युद्ध वर्णन में बाणों की वर्षा का कैसा समस्त भाव व्यंजित किया है -

"ओनई घटा चहूं दिसि आई , छुटहिं बान मेघ झरि लाई ।"

संक्षेप में जायसी ने 'पद्मावत' में विविध शैलियों में प्रकृति चित्रण किया है । विभिन्न प्रतीकों से प्रकृति मानव के सुख - दुख की चिरसंगिनी है पर विप्रलम्भ वर्णित चित्रों में अनेक स्थल बहुत मार्मिक हैं ।

8.9 जायसी की प्रेम पद्धति

जायसी का 'पद्मावत' सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और ज्वलंत कीर्तिस्तंभ है । सूफी भावना का चर्मोत्कर्ष 'पद्मावत' में हुआ है जिसका उदय अंधविश्वास प्रधान इस्लाम की प्रतिक्रिया में हुआ था । सूफी साधकों का मूल मंत्र प्रेम है और सम्पूर्ण सृष्टि के कण - कण में उन्हें उस परम प्रियतम के सौन्दर्य का आभास होता है और उसको प्राप्त करने का एकमात्र साधन वे प्रेम को मानते हैं । ईश्वर को प्रियतम अथवा प्रियतमा मानकर सूफी साधक उसी प्रेम तत्व के नाम स्मरण में तन्मय

रहते थे । 'इश्क - ए - मिजाजी' से 'इश्क - ए - हकीकी' तक पहुँचना इन सूफी साधकों का लक्ष्य था । सूफियों के प्रेम तत्व का विवेचन करते हुए चन्द्रबली पाण्डे ने लिखा है - "सूफियों का परम प्रिय से प्रेम मीरा और अन्दाल की भांति है । मीरा को गिरधर गोपाल के प्रेम में लोक - लाज खोनी पड़ी और सन्तमत में आ जाने के कारण कुछ अधिक स्वच्छन्द होना पड़ा । देवदासी अन्दाल माधव मूर्ति पर आसक्त थीं । कहा जाता है कि अन्त में वह उसी में समा गई । भगवान कृष्ण ने उसके प्रेम को स्वीकार किया । सूफी साफ कह देते हैं कि इश्क - ए - मिजाजी , इश्क - ए - हकीकी की सीढ़ी है और इसी के द्वारा इन्सान खुदी को मिटा कर खुदा बन जाता है ।"

जायसी सूफी संत कवि हैं, सूफी भावना के अनुयायी हैं । इसीलिए उन्होंने सूफियों के प्रेम तत्व और उसकी सौन्दर्यमयी कल्पना को पूर्ण रूप से प्रतिपादित किया है । पद्मावत में जिस प्रेम - भावना की अभिव्यक्ति की गई है वह बाहय रूप से तो नायक - नायिका के प्रेम की लौकिक कथा मात्र है । राजा रत्नसेन और राजकुमारी पद्मावती के प्रेम की कथा शुद्ध रूप से लौकिक कथा प्रतीत होती है । परन्तु सत्य यह नहीं है । सूफी कवियों ने लौकिक प्रेमकथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है । पद्मावत की कथा में हीरामन तोता राजा रत्नसेन के अंतर में पद्मावती के अनुपम और अद्वितीय सौन्दर्य के प्रति प्रेम भाव जाग्रत करता है -

"तीन लोक चौदह खण्ड सबै रहे मोहि सूझि ।
प्रेम छाडि किछु और न लोना जौ देखौ मन बूझि ।।"

प्रेम का पंथ अत्यंत कठिन है इसलिए जायसी ने कहा है -

"प्रेम सुनत मन भूल न राजा , कठिन प्रेम सिर देइ तौ छाजा ।
प्रेम फन्द जौ परा न छुटा , जीउ दीन्ह बहु फांद न टूटा ।
गिर गिर छन्द धरै दुःख तेता , खिन खित रात पीत खिन सेवा ।"

राजा रत्नसेन पद्मावती के प्रेम में योगी होकर चित्तौड़ से निकल पड़ता है और अनेक विध्न बाधाओं को पार करता हुआ सिंहल द्वीप पहुँच जाता है । सिंहल द्वीप के राजा गन्धर्व सेन उसको शूली पर चढ़ाने की आज्ञा देते हैं किन्तु अनन्य प्रेम के कारण राजा को पद्मावती प्राप्त हो जाती है । चित्तौड़ लौटने के बाद राजा वीरपाल से युद्ध करते समय राजा रत्नसेन वीरगति प्राप्त करता है । उसकी दोनों रानियाँ उसके साथ सती हो जाती हैं । इस प्रकार रत्नसेन रूपी आत्मा 'फना' होकर 'अनलहक' की अधिकारिणी होकर 'आलमें लाहूत माधुर्य लोक में जाकर पद्मावती रूपी हक या परमात्मा के साथ तदाकार हो जाती है ।

सूफी प्रेम पद्धति का अनुसरण करते हुए कवि ने पद्मावती के सौन्दर्य को अनुपम सिद्ध किया है । फारसी प्रेम पद्धति का अनुसरण करने के कारण कवि ने प्रेम तत्व की गम्भीर एवं सूक्ष्म विवेचना की है । जायसी ने - "प्रेम अहिष्टि गगन ते ऊंचा" तथा "ध्रुव ते ऊंच प्रेम ध्रुव अवा" कहकर प्रेम को आकाश से ऊंचा और ध्रुव से अटल बताया है । जायसी ने फारसी प्रेम पद्धति का अनुसरण करते हुए सारी कथा के बीच - बीच में

आध्यात्मिक संकेतों की भरमार कर दी है । निष्कर्षत: जायसी का पद्मावत एक प्रेम प्रधान काव्य है जिसमें चित्रित प्रेम दिव्य, पवित्र , अलौकिक , महान , गंभीर , त्यागपूर्ण और खाँडे की धार है । वह एक निष्काम साधना है यद्यपि इसके मार्ग में अनेक विघ्न हैं किन्तु इसकी प्राप्ति सर्वोत्तम आनन्ददायी और उद्धारक है । यहाँ लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गई है ।

8.10 विचार संदर्भ एवं शब्दावली

अनलहक - का अर्थ मैं ही ब्रह्म हूँ, है । मंसूर बिन अल - हल्लाज को 'अनलहक' कहने के लिए सूलीपर चढ़ा दिया गया था । मंसूर (9 वीं शताब्दी) ईरान का सुप्रसिद्ध सूफी था । परमात्मा और मनुष्य के एकत्व की बात इस्लाम स्वीकार नहीं करता ।

फना - 'फना' का अर्थ लय हो जाना है । इस शब्द को लेकर सूफी साधकों में मतभेद है । 'फना का साधारण अर्थ यह है कि साधक सतत चेष्टा के द्वारा अपने आप को मिटाकर परमात्मा में लय हो जाता है और स्वज्ञान से परे हो जाता है । सूफियों के अनुसार 'फना' की अवस्था में आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है ।

जिक्र - जिक्र का अर्थ है स्मरण करना । परमात्मा के नाम का स्मरण ही सूफीयों का जिक्र है । परमात्मा के सतत स्मरण से साधक एक ऐसी अवस्था को प्राप्त होना चाहता है जिसमें परमात्मा के सिवा अन्य सभी वस्तुओं का ज्ञान उसके भीतर से तिरोहित हो जाए ।

मसनवी - मसनवी शब्द का शाब्दिक अर्थ 'दो' होता है । मसनवी के लिए सात बहरें नियत है । इन्हीं सात बहरों में मसनवी लिखी जा सकती है । मसनवी में शेरों की संख्या की सीमा नहीं होती है । इसमें विषय की भी कोई सीमा नहीं है । मसनवी की खूबी यह है कि जिस घटना या वृतान्त का वर्णन किया जाए उसे सरलता तथा विस्तार के साथ इस प्रकार वर्णित किया जाए कि वह घटना आँखों के सामने आ जाए ।

अंतर कथाएं - राजा बलि एक दैत्य राज के रूप में प्रसिद्ध है । बलि ने कठोर तपस्या करके तीनों लोकों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और अंत में अश्वमेध यज्ञ करके दान देना आरम्भ किया । इन्द्र को बलि के द्वारा उसका पद हस्तगत करने का संदेह हो गया । अत: उसकी प्रार्थना पर भगवान विष्णु वामन रूप में बलि के सामने उपस्थित हुए और उससे तीन पग भूमि देने की प्रार्थना की । दान देने के समय वामन रूपधारी विष्णु ने अपना अनन्त विस्तार किया, एक पग में समस्त भूमण्डल, दूसरे पग में स्वर्ग को नाप लिया और तीसरा पग उठाने पर बलि से कहा इसे कहाँ रखूँ । बलि ने उसके लिए अपना सिर भगवान के सम्मुख रख दिया और उसे भगवान ने भूतल में रहने की आज्ञा दी ।

इन्द्र - कर्ण - इन्द्र वैदिक काल के सर्वप्रमुख देवता है । कर्ण महाभारत का मुख्य पात्र है और दानवीर के नाम से प्रसिद्ध है । इन्द्र जब महाभारत युद्ध के दौरान उनसे कुण्डल और कवच माँगने गया तो उन्होंने उन्हें दोनों वस्तुएं दे दी । इसी कारण कर्ण महाभारत युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए ।

जलंधर नाथ - राजा गोपीचन्द - जलंधर नाथ , नाथ सम्प्रदाय के आदिनाथ के रूप में स्मरण किये जाते हैं । ऐसा कहा जाता है कि वे गोपीचन्द राजा की माँ नैनावती के गुरू थे । गोपीचन्द ने अपनी माँ के उपदेश से अपनी दो रानियों उदयनी और पद्मिनी को त्यागकर वैराग्य धारण कर लिया । वे जलंधर नाथ के साथ योगी बनकर चले गए।

अक्रूर - कृष्ण - अक्रूर जी राजा कंस के दरबार में रहते थे । कंस ने उन्हें धनुष यज्ञ के बहाने बलराम और कृष्ण को मथुरा लाने के लिए गोकुल भेजा । अक्रूर जी दोनो भाइयों को मथुरा ले गए और उनके वियोग में गोपियाँ रोती रही ।

8.11 सारांश

जायसी सूफी काव्य परंपरा के प्रेमाख्यानक काव्य रचने वाले कवियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि हैं । अन्य सूफी कवियों के समान आपने भी भारतीय लोकजीवन में प्रचलित पद्मिनी और राजा रत्नसेन की प्रेमकथा को अपने महाकाव्य 'पद्मावत' का आधार बनाया । जायसी ने फारसी और भारतीय काव्य परंपराओं का समन्वय किया । फारसी से उन्होंने मसनवी शैली को अपनाया और ठेठ अवधी भाषा में 'पद्मावत' की रचना की । अवधी के साथ इनकी भाषा में तत्कालीन राजस्थानी और ब्रज भाषा का भी प्रभाव दिखाई देता है । फारसी भाषा के शब्दों का रूप जायसी ने प्रयोग किया है । जायसी के मन में हिन्दू और मुसलमान धर्मो के मध्य सद्भाव उत्पन्न करने की इच्छा थी । इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने 'पद्मावत' की रचना की । हिन्दू जीवन पद्धति का उन्होंने अपने महाकाव्य में यथास्थान वर्णन किया है । भारतीय लोकगाथाओं और लोककथाओं में प्रचलित काव्य रूढ़ियों और कथानक रूढियों का प्रयोग किया है । हिन्दुओं के त्योहारों और धार्मिक मान्यताओं का भी 'पद्मावत' में सुन्दर वर्णन उपलब्ध है । जायसी का 'पद्मावत' प्रबंध काव्य है जिसको हम महाकाव्य की संज्ञा दे सकते हैं । 'पदमावत' में सभी रसों का वर्णन है किन्तु श्रृंगार रस के संयोग एवं वियोग पक्ष में से वियोग श्रृंगार अद्भुत है । नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य का ही नहीं विश्व साहित्य की अमूल्य धरोहर है । वियोग वर्णन में जायसी ने कहीं - कहीं ऊहात्मक चित्रण किया है । जिसका कारण फारसी साहित्य का प्रभाव है । जायसी की यह रचना हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखती है और साहित्यिक महत्त्व के अतिरिक्त हिन्दू - मुस्लिम एकता के लिए भी इसका महत्त्व रहा है , आज भी है और वर्तमान परिस्थितियों में भविष्य में भी रहेगा । संप्रति देश में हिन्दू - मुस्लिम दंगे - फसाद हो रहे हैं; ऐसे समय में जायसी के 'पद्मावत' की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है ।

8.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. सप्रमाण सिद्ध कीजिए कि 'पदमावत' में इतिवृत्तात्मकता और रसात्मकता का मणिकाचंन योग है ।

2. सूफी काव्य धारा की विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए और सूफी शब्द की व्युत्पत्ति व अर्थ को स्पष्ट कीजिए ।
3. प्रबंध - सौष्ठव की दृष्टि से जायसी के 'पद्मावत' की समीक्षा कीजिए ।
4. 'पद्मावत' के आधार पर जायसी के काव्य सौन्दर्य का मूल्यांकन कीजिए ।
5. जायसी के 'पद्मावत' में वियोग वर्णन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए ।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. पदमावत में समासोक्ति है अथवा अन्योक्ति स्पष्ट कीजिए ।
2. पदमावत की वर्णन पद्धति पर फारसी का प्रमाण सिद्ध कीजिए ।
3. जायसी के प्रकृति चित्रण पर टिप्पणी लिखिए ।
4. उदाहरण देते हुए बताइये जायसी के विरह वर्णन में सात्विकता की प्रधानता है ।
5. पदमावत के लोक तत्व पर एक टिप्पणी लिखिए ।

8.13 संदर्भ ग्रंथ

1. विजयदेव नारायण साही, जायसी , हिन्दुस्तानी अकादमी , इलाहाबाद ।
2. डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, जायसी , साहित्य अकादमी , नई दिल्ली ।
3. रामचंद्र शुक्ल, ग्रंथावली (भूमिका) , जायसी , नागरी प्रचारिणी सभा , वाराणसी ।
4. रामपूजन तिवारी , सूफी मत - साधना और साहित्य , ज्ञान मण्डल लि. वाराणसी सं. 2013
5. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पद्मावत : व्याख्याकार, चिरगाँव झाँसी , सम्वत् 2012
6. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी , वर्ष 57 अंक 4 सं. 2009 ।
7. जर्नल आफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी पटना , भाग 39 खण्ड 1 -2 सन् 1953 ई. ।
8. हिन्दी अनुशीलन - भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग , चैत्र , ज्येष्ठ 2010 और जुलाई , सितम्बर 1958 ई.
9. सम्पादक परशुराम चतुर्वेदी, सूफी काव्य संग्रह - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग , शक 1886
10. दि माडर्न रिव्यू : कलकत्ता , नवम्बर 1956 ई.
11. सं. माताप्रसाद गुप्त, जायसी ग्रंथावली : हिन्दुस्तानी आकदमी , इलाहाबाद सन् 1952 - 53 ।
12. डॉ. माता प्रसाद गुप्त, 'पद्मावत' : व्याख्या सहित , लीडर प्रेस , प्रयाग 1963 ।
13. सं. रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, का. ना. प्र. सभा , काशी , द्वितीय संस्करण ।
14. पं. चंद्रबली पांडे, तसव्वुफ़ अथवा सूफी मत - सरस्वती मंदिर , बनारस 1945
15. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास का. ना. प्र. स. , काशी सं. 1997

16. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, लीडर प्रेस सं. 2007
17. रामपूजन तिवारी, भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा , रामकमल प्र. दिल्ली
18. परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा , रामकमल प्र. दिल्ली
19. रामपूजन तिवारी, हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका , ग्रंथ विज्ञान , पटना 1960 ई.
20. परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान , हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर , बम्बई 1962 ई.
21. शिवसहाय पाठक, पद्मावत का काव्य सौन्दर्य , हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर बम्बई 1956 ई.
22. इन्द्र चन्द नारंग, पद्मावत का ऐतिहासिक आधार , हिन्दी भवन जालंधर 1952

ISBN-13/978-81-8496-114-0